

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

ISSN NUMBER : 2455-9717

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 43, अक्टूबर-दिसम्बर 2026

मूल्य 50 रुपये

दीपावली

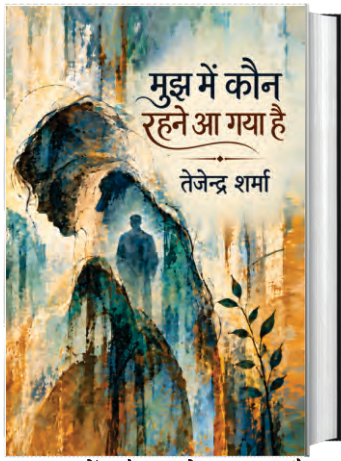
नज़ीर बनारसी

मेरी साँसों को गीत और आत्मा को साज़ देती है
ये दीवाली है सब को जीने का अंदाज़ देती है
हृदय के द्वार पर रह-रह के देता है कोई दस्तक
बराबर ज़िंदगी आवाज़ पर आवाज़ देती है
सिमटता है अँधेरा पाँव फैलाती है दीवाली
हँसाए जाती है रजनी हँसे जाती है दीवाली

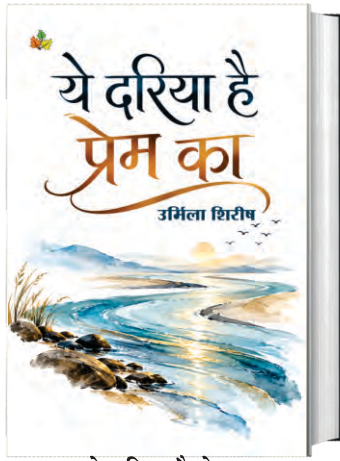


..... शुभ दीपावली :.....

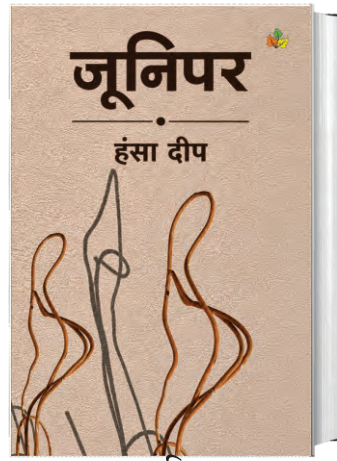
शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें



मुझ में कौन रहने आ गया है
कहानी संग्रह
तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 320 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-031-1



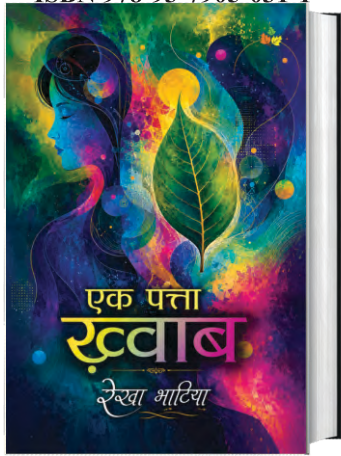
ये दरिया है प्रेम का
कहानी संग्रह
उर्मिला शिरीष
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-030-4



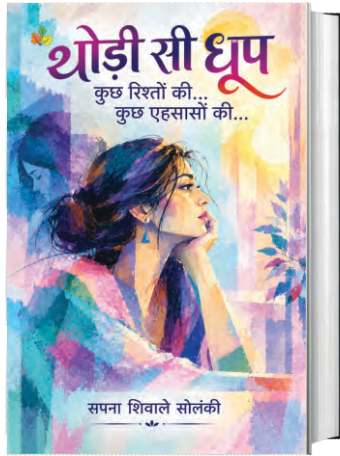
जूनिपर
कहानी संग्रह
हंसा दीप
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-017-5



अस्मि
उपन्यास
शिखा वाष्णीय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-021-2



एक पत्ता ख़्वाब
कविता संग्रह
रेखा भाटिया
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-019-9



थोड़ी सी धूप
कहानी संग्रह
सपना शिवाले सोलंकी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-024-3



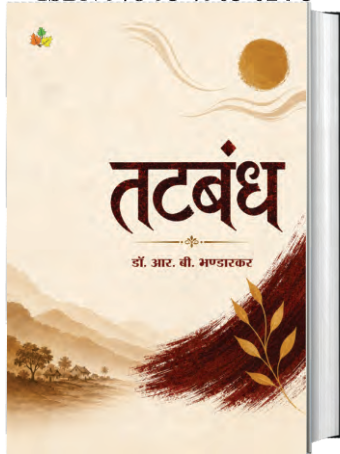
घूरना मना है
व्यंग्य संग्रह
ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-025-0



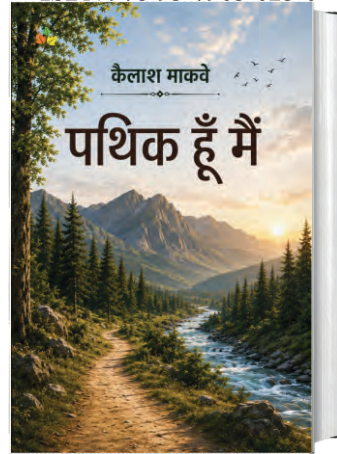
धुआँ और अन्य कहानियाँ
अनुवाद- सुजाता शिवेन
मूल ओड़िया- इंदुलता महाति
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-016-8



और चाँद काला हो गया
कहानी संग्रह
डॉ. हर्षबाला शर्मा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-010-6



तटबंध
कहानी संग्रह
डॉ. आर. बी. भंडारकर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-005-2



पथिक हूँ मैं
कविता संग्रह
कैलाश माकवे
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-018-2



वो महकती सी लड़की
कविता संग्रह
अनीता वर्मा
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-028-1

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शाँप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेंसमेट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372

मोबाइल +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580

ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com

+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac

https://www.facebook.com/shivna.prakashan

https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations

amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JYJGSM2CEV



संरक्षक एवं सलाहकार संपादक

सुधा ओम ढींगरा

संपादक

पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं कानूनी सलाहकार

शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक

शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिजायनिंग

सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं प्रकाशकीय कार्यालय

पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

दूरभाष : +91-7562405545

मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)

ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'

<http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html>

फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'

<https://www.facebook.com/shivnasahityiki>



एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर \$5)

सदस्यता शुल्क

3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)

11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-

Name: Shivna Sahityiki

Bank Name: Bank Of Baroda,

Branch: Sehore (M.P.)

Account Number: 30010200000313

IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यावसायिक।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।

शिवना साहित्यिकी अक्टूबर-दिसम्बर 2026 1

शिवना प्रकाशन शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

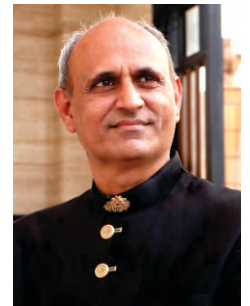
वर्ष : 11, अंक : 43, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2026

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

ISSN : 2455-9717



**आवरण कविता
नज़ीर बनारसी**



**आवरण चित्र
पंकज सुबीर**



शिवना
साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना
की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 11, अंक : 43,
त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2026

आवरण कविता

दीपावली / नजीर बनारसी

संपादकीय / शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 5

शोध आलोचना

हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी

समीक्षक : राजेश कुमार सिन्हा

संपादक : अभि मनोज / 6

विदेश में हिन्दी

समीक्षक : सुनील कुमार सिंह

संपादक : डॉ. कुबेर कुमावत / 10

धुआँ और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : डॉ. मधु संधु

लेखक : इंदुलता मोहंति

अनुवाद : सुजाता शिवेन / 13

डॉ. राजेंद्र प्रसाद :

देशरत्न से भारत रत्न बनने की दास्तान

समीक्षक : राजेश कुमार सिन्हा

लेखक : भगवान सिंह / 16

मेरी प्रिय कहानियाँ

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी

लेखक : अनिता रश्मि / 19

केंद्र में पुस्तक

एक पत्ता ख्वाब

समीक्षक : घनश्याम मैथिल 'अमृत',

सुधा आदेश, वेदप्रकाश अमिताभ

लेखक : रेखा भाटिया / 22

जूनपर

समीक्षक : एस. पी. सिंह,

मधुर कुलश्रेष्ठ, मुकेश दुबे

लेखक : डॉ. हंसा दीप / 28

औरत के भीतर की औरत

समीक्षक : डॉ. मधु संधु,

दीपक गिरकर, डॉ. भारती मिश्रा

लेखक : सुधा जुगरान / 32

तीसरा रंग और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : जसविन्दर कौर बिन्दा,

दीपक गिरकर

लेखक : रेखा राजवंशी / 39

सीपियाँ

समीक्षक : डॉ. मधु संधु, दीपक गिरकर

संपादक : मनीषा कुलश्रेष्ठ / 44

केंद्र में कहानी

मौसम बेचनेवाला

समीक्षक : रेखा भाटिया

लेखक : पंकज सुबीर / 50

पुस्तक समीक्षा

स्टेलमेट

समीक्षक : रेखा राजवंशी

लेखक : दीपक गिरकर / 52

लालित्यं शरणं ब्रज

समीक्षक : गौरव गौतम

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे / 54

हथेली पर कर्ण

समीक्षक : हीरालाल नागर

लेखक : नरेन्द्र नागदेव / 56

अछूत नहीं हूँ मैं

समीक्षक : डॉ. कुमारी उर्वशी

लेखक : प्रणव प्रियदर्शी / 58

गुज़रना ठहरे हुए पलों का

समीक्षक : अंजु शर्मा

लेखक : डॉ. रमाकांत शर्मा / 60

गठरी और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : जसविन्दर कौर बिन्दा

लेखक : हरभजन सिंह मेहरोत्रा / 62

भारत का स्वाधीनता संग्राम

समीक्षक : चंद्रमौलि चन्द्रकांत

लेखक : शैलेन्द्र चौहान / 64

सुलगती औरत का शौर्यनामा

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : सूर्यकांत नागर / 66

बीज और आकाश

समीक्षक : उर्मिला शिरीष

लेखक : ममता सिंह / 68

विचार और समय 2

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : सुधा ओम ढींगरा / 69

पर छवि कहाँ समाय

समीक्षक : कोमल रामचंदानी

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे / 70

गुनगुनी धूप

समीक्षक : प्रकाश कान्त

लेखक : तनुजा चौबे / 71

घर बैठे घुमक्कड़ी

समीक्षक : प्रकाश कांत

लेखक : ब्रजेश कानूनगो / 72

कोई लेखक कितने पानी में है, यह एक प्रकाशक से बेहतर कोई नहीं जानता



शहरयार

शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.

466001,

मोबाइल- 9806162184

ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

"सितारों से आगे जहाँ और भी हैं, अभी इश्क़ के इम्तिहाँ और भी हैं।" अल्लामा इक़बाल का यह शेर हर उस नए कलमकार के लिए एक आईना है जो साहित्य की दुनिया में पहला क़दम रख रहा है। जब एक नया लेखक अपनी पहली पांडुलिपि पूरी करता है, तो उसके भीतर एक रचनाकार से ज़्यादा एक उतावले माता-पिता का जन्म होता है। वह अपनी इस संतान यानी किताब को रातों-रात दुनिया की नज़रों में सिरमौर बनते देखना चाहता है। उसे लगता है कि यह किताब उसे रातों-रात स्टार बना देगी। लेकिन हकीक़त यह है कि कोई भी लेखक रातों-रात स्टार नहीं बनता; उस सफलता के पीछे उसकी बरसों की मेहनत, ईमानदारी और लगन होती है, जो वह अपनी रचना पर न्यौछावर करता है। वह अपनी कृति को समय देता है, न कि उसे किसी पार्ट-टाइम काम की तरह निपटाता है। पार्ट-टाइम लिखने वाला इंसान 'साहित्यकार' की श्रेणी में तो आ सकता है, पर वह असली 'लेखक' नहीं बन पाता। असली लेखक वह है जो अपनी रचना के प्रति सजग हो- न कि वह, जिसे बस कुछ भी लिख देने और किसी तरह प्रकाशित करवा लेने से मतलब हो।

जो लोग केवल मशहूर होने के लिए लिख रहे हैं, वे चाहते हैं कि जितनी तेज़ी से उन्होंने लिखा है, उतनी ही तेज़ी से उनकी किताब प्रकाशित भी हो जाए और बिक भी जाए। वे चाहते हैं कि वे रातों-रात प्रेमचंद या फणीश्वर नाथ 'रेणु' जैसे कालजयी रचनाकार बन जाएँ, लेकिन वास्तव में ऐसा होता नहीं। कोई लेखक कितने पानी में है, यह एक प्रकाशक से बेहतर कोई नहीं जानता। लेकिन आजकल एक नया चलन और देखने में आ रहा है। कई ऐसे नए लेखक हैं जो उम्र में काफ़ी वरिष्ठ हैं और सरकारी या निजी महकमों में ऊँचे ओहदों पर रहे हैं। उन्हें लगता है कि पैसा तो बहुत कमा लिया, अब थोड़ी इज़्ज़त कमाना भी ज़रूरी है। इसके लिए वे अपने समय की बीस-तीस साल पुरानी थिसिस को इधर-उधर थोड़ा फेरबदल करके प्रकाशित करवा लेते हैं और फिर उम्मीद करते हैं कि इस पर एक-दो बड़े अवॉर्ड भी मिल जाएँ ताकि नाम चमक जाए।

किताब छपने के महज़ पंद्रह-बीस दिनों बाद से ही वे प्रकाशक से पूछना शुरू कर देते हैं कि उनकी उस 'कालजयी' किताब की कितनी प्रतियाँ बिकीं और उसका अगला संस्करण कब आ रहा है। प्रकाशक पहले तो सोचता है कि चलिए, अभी इस बात का कोई जवाब न दिया जाए, लेकिन जब लेखक का बार-बार परेशान करना असहनीय हो जाता है, तो प्रकाशक उसे

संपादकीय

दीपावली / नजीर बनारसी

मिरी साँसों को गीत और आत्मा को साज देती है
ये दीवाली है सब को जीने का अंदाज़ देती है
हृदय के द्वार पर रह रह के देता है कोई दस्तक
बराबर ज़िंदगी आवाज़ पर आवाज़ देती है
सिमटता है अंधेरा पाँव फैलाती है दीवाली
हँसाए जाती है रजनी हँसे जाती है दीवाली

क्रतारें देखता हूँ चलते-फिरते माह-पारों की
घटाएँ आँचलों की और बरखा है सितारों की
वो काले काले गेसू सुख होंट और फूल से आरिज
नगर में हर तरफ़ परियाँ टहलती हैं बहारों की
निगाहों का मुकद्दर आ के चमकाती है दीवाली
पहन कर दीप-माला नाज़ फ़रमाती है दीवाली

उजाले का ज़माना है उजाले की जवानी है
ये हँसती जगमगाती रात सब रातों की रानी है
वही दुनिया है लेकिन हुस्न देखो आज दुनिया का
है जब तक रात बाक़ी कह नहीं सकते कि फ़ानी है
वो जीवन आज की रात आ के बरसाती है दीवाली
पसीना मौत के माथे पे छलकाती है दीवाली

सभी के दीप सुंदर हैं हमारे क्या तुम्हारे क्या
उजाला हर तरफ़ है इस किनारे उस किनारे क्या
गगन की जगमगाहट पड़ गई है आज मद्धम क्यूँ
मुँदरों और छज्जों पर उतर आए हैं तारे क्या
हजारों साल गुज़रे फिर भी जब आती है दीवाली
महल हो चाहे कुटिया सब पे छा जाती है दीवाली

इसी दिन द्रौपदी ने कृष्ण को भाई बनाया था
वचन के देने वाले ने वचन अपना निभाया था
जनमदिन लक्ष्मी का है भला इसदिन का क्या कहना
यही वो दिन है जिस ने राम को राजा बनाया था
कई इतिहास को एक साथ दोहराती है दीवाली
मोहब्बत पर विजय के फूल बरसाती है दीवाली

गले में हार फूलों का चरण में दीप-मालाएँ
मुकुट सर पर है मुख पर ज़िंदगी की रूप-रेखाएँ
लिए हैं कर में मंगल-घट न क्यूँ घट घट पे छा जाएँ
अगर परतव पड़े मुर्दा-दिलों पर वो भी जी जाएँ
अजब अंदाज़ से रह रह के मस्काती है दीवाली
मोहब्बत की लहर नस नस में दौड़ाती है दीवाली

तुम्हारा हूँ तुम अपनी बात मुझ से क्यूँ छुपाते हो
मुझे मालूम है जिस के लिए चक्कर लगाते हो
बनारस के हो तुम को चाहिए त्योंहार घर करना
बुतों को छोड़ कर तुम क्यूँ इलाहाबाद जाते हो
न जाओ ऐसे में बाहर 'नजीर' आती है दीवाली
ये काशी है यहीं तो रंग दिखलाती है दीवाली

हक़ीक़त बताने पर मजबूर हो जाता है। जब ऑनलाइन स्टोर की बिक्री का विवरण निकाला जाता है, तो उस कालजयी किताब की कुल बिक्री केवल छह प्रतियाँ आती हैं- और कई बार तो एक भी नहीं! हृद तो तब हो जाती है जब उन छह प्रतियों में से भी दो ख़रीदार किताब वापस कर देते हैं। जब यह बिक्री विवरण लेखक के पास पहुँचता है, तो वह गुस्से से तमतमा जाता है। फिर आरोप लगने शुरू होते हैं कि प्रकाशक ने प्रमोशन नहीं किया, समीक्षा के लिए प्रतियाँ नहीं भेजीं और इस लापरवाही से किताब की बिक्री पर असर पड़ रहा है। इस तरह की तमाम बातें कहकर प्रकाशक को ही शक के घेरे में खड़ा कर दिया जाता है।

इन सब के बावजूद, बेचारा प्रकाशक धैर्य बनाए रखता है और यही कहता है कि पहली किताब थी, इसलिए थोड़ी समस्या आई है, अगली किताब पर ज़रूर अच्छा रिस्पॉन्स आएगा। पर उस भोले प्रकाशक को क्या पता कि हमारे कालजयी लेखक महोदय के पास तो बस वही एक पुरानी थिसिस थी, जिसे उन्होंने कुछ किताबों में उलट-फेर करके लिखा था। इसके बाद लेखक का एक नया सवाल सामने आता है कि इंस्टाग्राम पर तो लाखों व्यूज़ और हजारों लाइक्स हैं, फिर भी किताब बिकी क्यों नहीं? इतनी तमाम खींचतान और झंझटों के बाद भी, एक प्रकाशक हमेशा मुस्कराकर नई किताब और नए लेखक का गर्मजोशी से स्वागत करता है तथा विश्वास दिलाता है कि यह किताब ख़ूब बिकेगी और सफलता के नए आयाम गढ़ेगी।

नए लेखकों को मेरी एक छोटी-सी सलाह है कि किताब पूरी लिखने के बाद उसे तुरंत छपने मत भेजिए। कुछ दिनों के लिए उसे अपने पास रख छोड़िए और उस विषय से जुड़ी कुछ और बेहतरीन किताबें पढ़िए। कुछ समय बाद जब आप अपनी ही पांडुलिपि को दोबारा उठाकर देखेंगे, तो आपको उसमें सुधार करने के कई मौक़े मिलेंगे, जिससे आपकी किताब और भी परिपक्व तथा मज़बूत बनेगी। अच्छे संपादक से किताब को लेकर चर्चा करें उनके बताए सुझाव पर काम करें। और प्रकाशक को किताब ट्रेडिशनल तरीक़े से प्रकाशित करने दीजिए। न कि अपने हिसाब से जैसे किताब में फोटो लगा दो, समर्पण में फोटो लगा दो, भूमिका लिखने वाले महोदय का फोटो, फूल बेल आदि तरह के चोचलों से अच्छा है किताब को सिंपल बनने दें प्रकाशक के हिसाब से, क्योंकि वो जानता है पाठक को ये सब चोंचले पसंद नहीं आते। और रही बात हमारे थिसिस वाले भाई साहबों की- तो उनके बारे में भला मैं क्या ही कहूँ! वे मेरी सलाह मानेंगे नहीं, क्योंकि वे उम्र में भी मुझसे बड़े हैं और अनुभव में भी। और अंत में बशीर बद्र साहब का यह शेर-

शोहरत की बुलंदी भी पल भर का तमाशा है,
जिस डाल पे बैठे हो वो टूट भी सकती है।

आपका ही


शहराचार

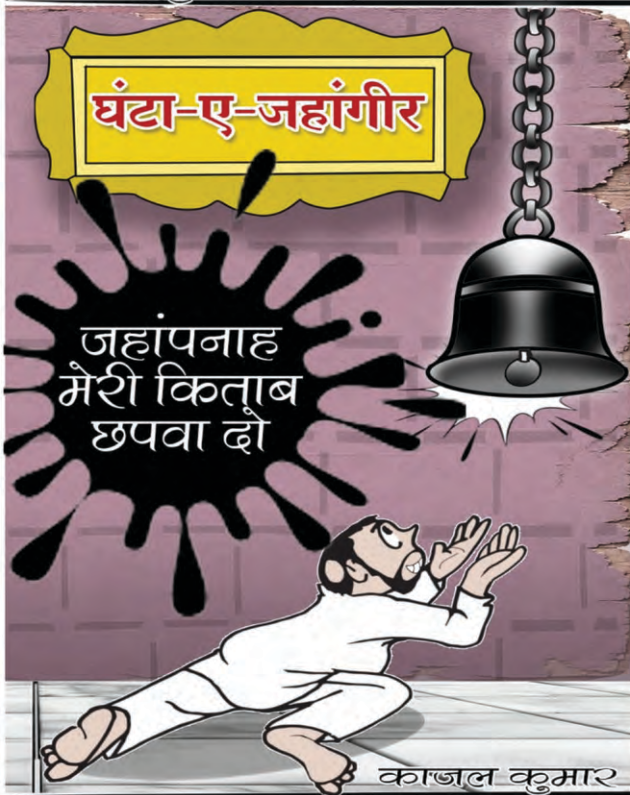


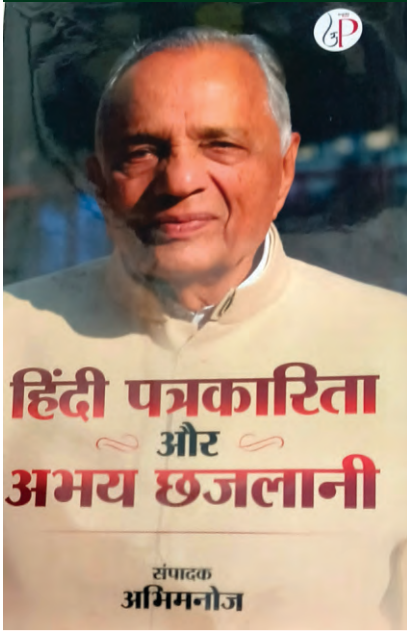
'विभोम-स्वर' तथा 'शिवना साहित्यिकी' के सभी पाठकों तथा लेखकों को प्रकाश पर्व दीपावली की बहुत बहुत मंगल कामनाएँ। रोशनी का पर्व आपके जीवन में सुख, शांति, समृद्धि और आरोग्य का प्रकाश फैलाए। आपकी रचनाशीलता नए वर्ष में यूँ ही बनी रहे, आपकी रचनाओं का प्रकाश क्रायम रहे।

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com





(आलेख संग्रह)

हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी

समीक्षक : राजेश कुमार सिन्हा

संपादक : अभि मनोज

प्रकाशक : अनंत प्रेस, बिलासपुर

राजेश कुमार सिन्हा

फ्लैट नंबर 503/बी विंग, सरला गार्डन,

जवाहर लाल नेहरू रोड, वाकोला,

सांताक्रुज (पूर्व), मुंबई, 400055

मोबाइल- 7506345031

ईमेल- sinharajeshmumbai@gmail.com

हिन्दी पत्रकारिता के विकासक्रम में पद्मश्री अभय छजलानी ऐसा नाम हैं, जिनका उल्लेख केवल 'नई दुनिया' के संपादक या सफल मीडिया प्रबंधक के रूप में नहीं किया जा सकता। उन्होंने पत्रकारिता को जिस गरिमा, अनुशासन, भाषा-संस्कार और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा, वह आज भी हिन्दी पत्रकारिता के लिए आदर्श माना जाता है। वरिष्ठ पत्रकार, लेखक और साइबर कानून के अध्येता अभिमनोज के संपादन में प्रकाशित पुस्तक 'हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी' इसी अर्थ में एक साधारण स्मृति-ग्रंथ नहीं, बल्कि हिन्दी पत्रकारिता के एक पूरे दौर का जीवंत दस्तावेज बनकर सामने आती है। यह पुस्तक केवल अभय छजलानी के व्यक्तित्व को याद नहीं करती, बल्कि उस पत्रकारिता-दृष्टि को भी पुनः स्मरण कराती है, जिसने समाचार को व्यवसाय नहीं, बल्कि सामाजिक दायित्व माना।

आज जब पत्रकारिता अभूतपूर्व तकनीकी परिवर्तनों, बाजारवादी दबावों और सूचना की अंधाधुंध गति के बीच अपनी विश्वसनीयता की परीक्षा दे रही है, तब ऐसी पुस्तकों का महत्व और बढ़ जाता है। यह पुस्तक अतीत का गुणगान भर नहीं करती, बल्कि वर्तमान को आईना दिखाती है और भविष्य के लिए मूल्यगत संकेत भी छोड़ती है। यही कारण है कि इसे पढ़ते हुए पाठक केवल एक संपादक के जीवन से परिचित नहीं होता, बल्कि हिन्दी पत्रकारिता की उस संस्कृति को समझता है जिसने समाचार को लोकतंत्र की आत्मा माना था। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अवधारणा है। सामान्यतः किसी बड़े पत्रकार पर प्रकाशित पुस्तकें या तो जीवनी होती हैं अथवा स्मृति-ग्रंथ। लेकिन 'हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी' इन दोनों सीमाओं का अतिक्रमण करती है। इसमें इकतालीस लेखकों के संस्मरण, आलेख और विचार संकलित हैं। ये सभी लेखक अलग-अलग पीढ़ियों, अलग-अलग अनुभवों और अलग-अलग दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परिणामस्वरूप अभय छजलानी का व्यक्तित्व किसी एक रंग में नहीं, बल्कि अनेक रंगों और अनेक परतों में सामने आता है। कोई उन्हें भाषा का कठोर प्रहरी मानता है, कोई अनुशासनप्रिय संपादक, कोई प्रेरणादायी गुरु, कोई दूरदर्शी संस्थान-निर्माता और कोई अत्यंत संवेदनशील मनुष्य। यही विविधता इस पुस्तक को विशिष्ट बनाती है। एक व्यक्ति के बारे में अनेक लोगों की स्मृतियाँ मिलकर जिस सामूहिक व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं, वह किसी औपचारिक जीवनी से कहीं अधिक विश्वसनीय और जीवंत प्रतीत होता है।

इस पुस्तक के संपादक अभिमनोज स्वयं लंबे समय तक सक्रिय पत्रकार रहे हैं और यही कारण है कि वे केवल संपादक की भूमिका नहीं निभाते, बल्कि उस पत्रकारिता-परंपरा के सहभागी भी हैं जिसकी चर्चा पुस्तक में बार-बार होती है। बिहार से मध्यप्रदेश तक की उनकी पत्रकारिता-यात्रा और 'नई दुनिया' में अभय छजलानी के साथ काम करने का अनुभव इस पुस्तक की आत्मा को गढ़ता है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि पत्रकारिता के संस्कार उन्हें अभय छजलानी से मिले। यह स्वीकारोक्ति केवल व्यक्तिगत कृतज्ञता नहीं, बल्कि उस गुरु-शिष्य परंपरा का प्रमाण है जो कभी हिन्दी पत्रकारिता की बड़ी पहचान हुआ करती थी। पुस्तक में उल्लिखित वह प्रसंग अत्यंत मार्मिक है, जब 'नई दुनिया' छोड़कर दूसरे समाचारपत्र (फ्री प्रेस) में जाते समय अभय छजलानी ने उनसे कहा कि इस संस्था के संपादकीय सहयोगी देश के हर अखबार में 'नई दुनिया' की परंपरा और संस्कार को लेकर जाएँ, और जब मैं किसी समाचार संस्थान में जाऊँगा तो वहाँ अखबार संस्कृति के सुसंस्कारित लोग चर्चा के लिए मिलेंगे। इस एक वाक्य में उनकी पूरी पत्रकारिता-दृष्टि समाहित है। वे समाचारपत्र को केवल संस्था नहीं, बल्कि विचार और मूल्यों की पाठशाला मानते थे। यही कारण है कि उनके साथ काम करने वाले अनेक पत्रकार बाद में देश के विभिन्न प्रतिष्ठित समाचार संस्थानों में पहुँचे, किंतु अपने भीतर 'नई दुनिया' की संस्कृति को जीवित रख सके।

पुस्तक का संपादन अत्यंत संतुलित और परिपक्व है। इकतालीस लेखकों की भाषा, शैली और दृष्टि में स्वाभाविक विविधता है, किंतु संपादकीय संयोजन ऐसा है कि पूरी पुस्तक बिखरी हुई नहीं लगती। एक संस्मरण समाप्त होते ही दूसरा संस्मरण उसी भावभूमि को आगे बढ़ाता है।

पाठक को कहीं भी ऐसा अनुभव नहीं होता कि वह अलग-अलग लेख पढ़ रहा है। पूरी पुस्तक एक सतत प्रवाह की तरह आगे बढ़ती है। यह किसी भी संपादक की बड़ी सफलता मानी जाएगी कि वह इतने भिन्न स्वरों को एक साझा संवेदना में रूपांतरित कर सके।

अभय छजलानी के व्यक्तित्व का सबसे प्रभावशाली पक्ष उनकी संपादकीय दृष्टि है। पुस्तक में शामिल अनेक संस्मरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि उनके लिए पत्रकारिता केवल समाचारों का संकलन नहीं थी। वे समाचार को समाज के प्रति उत्तरदायित्व की तरह देखते थे। भाषा की शुद्धता, तथ्यों की प्रामाणिकता और प्रस्तुति की स्पष्टता उनके लिए अनिवार्य तत्व थे। उनके सहयोगी बताते हैं कि किसी समाचार में छोटी-सी तथ्यात्मक त्रुटि या भाषा की असावधानी भी उनकी दृष्टि से बच नहीं सकती थी। वे मानते थे कि अखबार की सबसे बड़ी पूँजी उसका विश्वास है और विश्वास की नींव सत्य पर ही टिक सकती है। आज जब अनेक माध्यमों में बिना पुष्टि के सूचनाएँ प्रसारित हो जाती हैं और बाद में उनका खंडन प्रकाशित होता है, तब अभय छजलानी की यह संपादकीय दृढ़ता और अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। समीक्षित पुस्तक पढ़ते हुए बार-बार यह अनुभव होता है कि अभय छजलानी केवल संपादक नहीं थे, बल्कि संस्था-निर्माता थे। किसी भी संस्थान की पहचान केवल उसकी प्रसार संख्या या आर्थिक सफलता से नहीं होती। उसकी वास्तविक पहचान उन मनुष्यों से होती है जिन्हें वह तैयार करता है। 'नई दुनिया' ने जिस बड़ी संख्या में सक्षम पत्रकार देश को दिए, वह अभय छजलानी की दूरदृष्टि का प्रमाण है। उन्होंने पत्रकारों को केवल रिपोर्टिंग या संपादन की तकनीक नहीं सिखाई, बल्कि पत्रकारिता की नैतिकता भी सिखाई। उनके लिए पत्रकार पहले सजग नागरिक था और बाद में प्रोफेशनल। यही कारण है कि पुस्तक में शामिल अधिकांश लेखक केवल उनके पेशेवर कौशल की चर्चा नहीं करते, बल्कि उनके व्यक्तित्व के नैतिक पक्ष को भी बराबर महत्व देते हैं।

इस पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह अभय छजलानी को देवत्व प्रदान नहीं करती। संस्मरणों में गहरी श्रद्धा अवश्य है, किंतु अधिकांश लेखक उन्हें एक सहज, विनम्र और कर्मनिष्ठ मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके भीतर अनुशासन था, किंतु अहंकार नहीं। निर्णय लेने की क्षमता थी, किंतु संवाद की संस्कृति भी थी। वे कठोर थे, पर कठोरता के पीछे व्यक्ति-विरोध नहीं, बल्कि काम के प्रति ईमानदारी थी। यही संतुलन उनके व्यक्तित्व को विशिष्ट बनाता है। आज जब नेतृत्व प्रायः अधिकार के प्रदर्शन तक सीमित दिखाई देता है, तब अभय छजलानी का नेतृत्व सहयोग, विश्वास और प्रेरणा पर आधारित दिखाई देता है साथ ही सबसे अधिक प्रभावित करने वाला पक्ष उनका मानवीय व्यवहार है। अनेक संस्मरण बताते हैं कि वे अपने सहयोगियों के व्यक्तिगत सुख-दुख में भी सहभागी बनते थे। किसी युवा पत्रकार की समस्या हो, किसी परिवार की कठिन परिस्थिति या किसी कर्मचारी का मनोबल टूट रहा हो, वे केवल अधिकारी की तरह नहीं, बल्कि परिवार के वरिष्ठ सदस्य की तरह सामने आते थे। यही कारण है कि पुस्तक में व्यक्त सम्मान औपचारिक नहीं लगता। उसमें आत्मीयता है, अनुभव है और जीवन की सच्चाई है। यह किसी स्मारकीय भाषा से नहीं, बल्कि जीवित संबंधों की भाषा से निर्मित सम्मान है।

इस पुस्तक का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि यह अभय छजलानी को समझने में सहायता करती है, बल्कि इसलिए भी है कि यह 'नई दुनिया' के स्वर्णिम काल का दस्तावेज बन जाती है। पुस्तक के अनेक संस्मरण उस समय की संपादकीय बैठकों, समाचार चयन की प्रक्रिया, भाषा की शुद्धता को लेकर बरती जाने वाली सावधानी और संस्थागत अनुशासन का ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं जो आज की पीढ़ी के लिए लगभग अप्रत्याशित लगता है। यह पढ़ते हुए सहज ही यह प्रश्न मन में उठता है कि क्या आज की पत्रकारिता में भी समाचार को लेकर वैसी ही तैयारी, वैसा ही धैर्य और वैसी ही जिम्मेदारी

बची है? यही प्रश्न इस पुस्तक को केवल स्मृति का दस्तावेज नहीं रहने देता, बल्कि उसे समकालीन विमर्श का हिस्सा बना देता है।

हमारे देश में पत्रकारिता का इतिहास वस्तुतः उन मूल्यों का इतिहास है जिनके सहारे समाज अपने समय को समझता है। यही कारण है कि जब किसी बड़े संपादक या पत्रकार पर कोई पुस्तक प्रकाशित होती है तो उसका मूल्यांकन केवल उस व्यक्ति के जीवन-वृत्त के आधार पर नहीं किया जाता, बल्कि यह भी देखा जाता है कि वह पुस्तक अपने समय, अपनी पत्रकारिता और अपनी सांस्कृतिक विरासत को किस सीमा तक अभिव्यक्त कर पाती है। 'हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी' इस कसौटी पर उल्लेखनीय रूप से खरी उतरती है। यह पुस्तक जितनी अभय छजलानी के व्यक्तित्व की कथा है, उतनी ही हिन्दी पत्रकारिता की उस वैचारिक परंपरा की भी कथा है, जिसने समाचार को केवल सूचना नहीं, बल्कि समाज के विवेक का माध्यम माना। इस पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह पत्रकारिता को व्यक्ति-केंद्रित उपलब्धियों की बजाय संस्थागत संस्कृति के रूप में देखने का आग्रह करती है। अभय छजलानी के संदर्भ में बार-बार यह बात सामने आती है कि उन्होंने केवल संपादकीय नेतृत्व नहीं किया, बल्कि एक ऐसी कार्य-संस्कृति विकसित की जिसमें भाषा, तथ्य, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व चारों समान रूप से महत्वपूर्ण थे। आज के समय में, जब मीडिया संस्थानों की पहचान प्रायः उनके मालिकों, प्रसार संख्या, टीआरपी या डिजिटल पहुँच से तय की जाती है, तब यह पुस्तक याद दिलाती है कि किसी समाचारपत्र की वास्तविक प्रतिष्ठा उसके मूल्यों और उसकी विश्वसनीयता से बनती है।

पुस्तक के अधिकांश संस्मरणों में एक समान सूत्र दिखाई देता है, अभय छजलानी का विश्वास था कि अखबार केवल घटनाओं का संकलन नहीं है, बल्कि समाज की बौद्धिक चेतना का निर्माण करने वाला माध्यम है। यही कारण है कि वे भाषा के प्रति

असाधारण रूप से सजग थे। उनके लिए भाषा केवल अभिव्यक्ति का उपकरण नहीं थी; वह अखबार की विश्वसनीयता का आधार भी थी। संस्मरणों में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जहाँ छोटी-सी भाषिक त्रुटि पर भी उनका ध्यान जाता था। आज यह बात मामूली लग सकती है, किंतु उस दौर में भाषा की शुद्धता को अखबार की प्रतिष्ठा से जोड़कर देखा जाता था। यह पुस्तक उस परंपरा की स्मृति को सहेजती है।

पुस्तक का एक और उल्लेखनीय गुण यह है कि इसमें संस्मरणों के माध्यम से पत्रकारिता की अनौपचारिक दुनिया भी दर्ज हुई है। इतिहास प्रायः बड़ी घटनाओं को याद रखता है, लेकिन संस्थानों का वास्तविक चरित्र उन छोटे-छोटे प्रसंगों में छिपा होता है जिन्हें केवल साथ काम करने वाले लोग ही जानते हैं। किसी युवा पत्रकार की पहली रिपोर्ट पर संपादक की टिप्पणी, किसी कठिन परिस्थिति में दिया गया नैतिक संबल, किसी समाचार के चयन को लेकर हुई लंबी बहस, या किसी शब्द के प्रयोग पर चली गंभीर चर्चा आदि सभी बातें सामान्य इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलतीं। यही कारण है कि यह पुस्तक मौखिक इतिहास की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाती है। यह उन अनुभवों को दर्ज करती है जो अन्यथा समय के साथ लुप्त हो जाते।

इस पुस्तक को पढ़ते समय यह अनुभव बार-बार होता है कि संपादक अभिमनोज जी ने केवल सामग्री का संकलन नहीं किया, बल्कि एक संपादकीय दृष्टि के साथ उसका संयोजन भी किया है। उन्होंने संस्मरणों को इस प्रकार व्यवस्थित किया है कि पाठक धीरे-धीरे अभय छजलानी के व्यक्तित्व की विभिन्न परतों से परिचित होता चलता है। कहीं वे संपादक हैं, कहीं शिक्षक, कहीं मार्गदर्शक, कहीं मित्र और कहीं संस्थान के मुखिया। यह क्रम पाठक को किसी निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए बाध्य नहीं करता, बल्कि उसे स्वयं अपनी समझ विकसित करने का अवसर देता है। यही किसी अच्छे संपादन की पहचान होती है।

इस पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण

सामाजिक पक्ष यह है कि यह पत्रकारिता को लोकतंत्र की नैतिक शक्ति के रूप में स्थापित करती है। पिछले कुछ दशकों में मीडिया के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। समाचारपत्रों के साथ-साथ टीवी चैनलों, डिजिटल प्लेटफॉर्मों और सोशल मीडिया ने सूचना के प्रवाह को अभूतपूर्व गति दी है। लेकिन इसी गति ने कई बार गहराई, तथ्य-जाँच और संतुलन को पीछे भी धकेला है। ऐसे समय में अभय छजलानी जैसे संपादकों की कार्यशैली को याद करना केवल अतीत का स्मरण नहीं, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता भी है। यह पुस्तक पाठक को बिना उपदेश दिए यह समझाती है कि पत्रकारिता की वास्तविक शक्ति उसकी विश्वसनीयता में निहित होती है, न कि उसकी तात्कालिक लोकप्रियता में।

यद्यपि पुस्तक का समग्र प्रभाव अत्यंत सकारात्मक है, फिर भी एक समीक्षक के रूप में कुछ प्रश्न उठाना आवश्यक है। पुस्तक का स्वर मुख्यतः श्रद्धांजलि का है, इसमें स्वाभाविक आत्मीयता है और अधिकांश लेखक अपने अनुभवों के आधार पर अभय छजलानी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं। किंतु यही आत्मीयता कई बार आलोचनात्मक दृष्टि को सीमित भी कर देती है। यदि पुस्तक में उनके संपादकीय निर्णयों, वैचारिक दृष्टि, समकालीन पत्रकारिता से उनके मतभेदों अथवा उनके समय की चुनौतियों पर अधिक विश्लेषणात्मक लेख भी शामिल होते, तो यह पुस्तक केवल संस्मरण-संकलन न रहकर पत्रकारिता के गंभीर अध्ययन का और भी महत्वपूर्ण स्रोत बन सकती थी। फिर भी यह कमी पुस्तक के महत्व को कम नहीं करती, बल्कि भविष्य के शोध के लिए नए द्वार खोलती है। वास्तव में यह पुस्तक शोधार्थियों को प्रेरित करती है कि वे अभय छजलानी और 'नई दुनिया' की संपादकीय परंपरा पर अधिक गहन अध्ययन करें। इस दृष्टि से यह पुस्तक एक समापन नहीं, बल्कि एक आरंभ है। भाषा की दृष्टि से भी पुस्तक उल्लेखनीय है। अलग-अलग लेखकों की शैली भिन्न होने के बावजूद कहीं कृत्रिमता नहीं आती। कुछ

संस्मरण अत्यंत साहित्यिक हैं, कुछ पत्रकारिता की सीधी-सादी भाषा में लिखे गए हैं और कुछ विश्लेषणात्मक हैं। लेकिन इस विविधता के भीतर एक साझा भावधारा निरंतर प्रवाहित होती रहती है। यही कारण है कि पुस्तक पाठक को अंत तक बाँधे रखती है। इसमें न तो अनावश्यक अलंकरण हैं और न ही विद्वत्ता का प्रदर्शन साथ ही भाषा गरिमापूर्ण होते हुए भी सहज है। यह विशेषता इसे व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाने में सहायक बनती है।

इस पुस्तक का एक बड़ा योगदान यह भी है कि यह हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास को केवल दिल्ली-केंद्रित दृष्टि से नहीं देखती। लंबे समय तक हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास-लेखन में महानगरों को अधिक महत्व मिला, जबकि इंदौर, भोपाल, जबलपुर, रायपुर, पटना, लखनऊ और अन्य केंद्रों की भूमिका अपेक्षाकृत कम रेखांकित हुई। 'नई दुनिया' और अभय छजलानी के माध्यम से यह पुस्तक उस क्षेत्रीय पत्रकारिता की ताकत को भी सामने लाती है जिसने हिन्दी समाज के बौद्धिक विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पुस्तक का अध्ययन करते हुए यह अनुभव भी होता है कि पत्रकारिता केवल पेशा नहीं, बल्कि निरंतर सीखने की प्रक्रिया है। अभय छजलानी स्वयं सीखते रहे और दूसरों को सीखने के अवसर देते रहे, वे संपादक कम और शिक्षक अधिक दिखाई देते हैं। यही कारण है कि उनके सहयोगी उन्हें याद करते समय केवल उनके पद का नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व के प्रभाव का उल्लेख करते हैं। किसी भी व्यक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि यही होती है कि उसके जाने के बाद भी उसके विचार और उसके संस्कार लोगों के भीतर जीवित रहें। इस दृष्टि से यह पुस्तक अभय छजलानी के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि का प्रमाण भी है। आज जब पत्रकारिता के सामने विश्वसनीयता का संकट सबसे बड़ी चुनौती बनकर खड़ा है, तब 'हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी' जैसी पुस्तकें केवल स्मृति का पुनर्पाठ नहीं करतीं, बल्कि वर्तमान

के लिए नैतिक दिशा भी निर्धारित करती हैं। सूचना-प्रौद्योगिकी ने समाचारों की दुनिया को पूरी तरह बदल दिया है। अब समाचारों का प्रवाह चौबीसों घंटे चलता है। प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र है कि अनेक बार सबसे पहले खबर देने की होड़ में उसकी सत्यता, संदर्भ और सामाजिक प्रभाव पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसे समय में यह पुस्तक बार-बार उस पत्रकारिता की याद दिलाती है जहाँ समाचार प्रकाशित होने से पहले उसकी विश्वसनीयता सबसे बड़ी कसौटी होती थी। अभय छजलानी का संपूर्ण व्यक्तित्व इसी मूल्य-बोध का प्रतिनिधित्व करता है। उनके लिए पत्रकारिता का अर्थ केवल सूचना देना नहीं, बल्कि समाज के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व निभाना था। यही कारण है कि यह पुस्तक अतीत के गौरव का गुणगान नहीं करती, बल्कि वर्तमान की चुनौतियों के बीच मूल्यों की पुनर्स्थापना का आग्रह करती है।

इस पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह पत्रकारिता को केवल संपादकीय कक्ष तक सीमित नहीं रखती। इसमें बार-बार यह संकेत मिलता है कि एक अच्छा समाचारपत्र अपने समाज की सांस्कृतिक चेतना का भी वाहक होता है। 'नई दुनिया' ने साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, सामाजिक सरोकारों और जनजीवन के प्रश्नों को जिस गंभीरता से स्थान दिया, उसकी झलक पुस्तक के अनेक संस्मरणों में मिलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अभय छजलानी समाचारपत्र को केवल राजनीतिक घटनाओं का दस्तावेज नहीं मानते थे। उनके लिए पत्रकारिता का दायरा समाज के संपूर्ण जीवन तक फैला हुआ था। यही व्यापक दृष्टि उन्हें अपने समय के अनेक संपादकों से अलग पहचान देती है।

पुस्तक पढ़ते हुए यह अनुभव भी होता है कि किसी महान् संपादक की सबसे बड़ी पहचान उसके लिखे हुए संपादकीय नहीं, बल्कि उसके द्वारा तैयार किए गए पत्रकार होते हैं। किसी संस्थान की वास्तविक पूँजी उसके प्रशिक्षित और संस्कारित लोग होते हैं। इस दृष्टि से अभय छजलानी का योगदान

अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने केवल समाचारपत्र नहीं चलाया, बल्कि पत्रकारिता की ऐसी पीढ़ी तैयार की जिसने आगे चलकर देश के अनेक प्रतिष्ठित समाचार संस्थानों में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं। यह पुस्तक उन सभी के अनुभवों का सामूहिक दस्तावेज है। इसमें दर्ज स्मृतियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि नेतृत्व का सर्वोच्च रूप वही है जो अपने बाद भी अपने मूल्यों को जीवित रख सके।

संपादक अभिमनोज का कार्य यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है। किसी स्मृति-ग्रंथ का संपादन केवल सामग्री एकत्र कर देना नहीं होता। सबसे बड़ी चुनौती होती है अनेक स्वयं को एक साझा संवेदना में रूपांतरित करना। इसमें कोई दो राय नहीं कि अभिमनोज ने यह कार्य उल्लेखनीय दक्षता के साथ किया है, उन्होंने न तो पुस्तक को अनावश्यक भावुकता का शिकार होने दिया और न ही उसे केवल तथ्य-संग्रह बनाकर छोड़ दिया। संस्मरणों, विश्लेषणों और व्यक्तिगत अनुभवों के बीच उन्होंने ऐसा संतुलन स्थापित किया है कि पूरी पुस्तक एक जीवंत संवाद का रूप ले लेती है। पाठक को कहीं भी संपादकीय असंगति का अनुभव नहीं होता। यह उनकी परिपक्व संपादकीय दृष्टि का प्रमाण है।

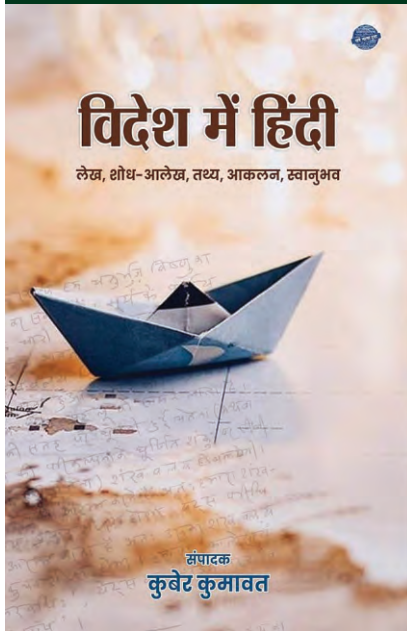
निश्चित रूप से पुस्तक की कुछ सीमाएँ भी हैं। अधिकांश लेख श्रद्धांजलि की भावना से लिखे गए हैं, इसलिए आलोचनात्मक विमर्श अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। यदि अभय छजलानी के संपादकीय निर्णयों, उनके वैचारिक मतभेदों, उनके समय के मीडिया-परिदृश्य तथा समकालीन संपादकों के साथ उनके तुलनात्मक अध्ययन को भी कुछ विस्तार मिलता तो पुस्तक का शोध-मूल्य और अधिक बढ़ जाता। इसी प्रकार कुछ संस्मरणों में समान घटनाओं और समान गुणों का उल्लेख दोहराया गया है। संपादकीय स्तर पर इन पुनरावृत्तियों को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता था। किंतु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि संस्मरण साहित्य की अपनी प्रकृति होती है। अलग-अलग लोगों की स्मृतियों में यदि कुछ घटनाएँ समान रूप से उपस्थित हैं तो वह उस व्यक्तित्व के प्रभाव

का भी प्रमाण है, इसलिए इन पुनरावृत्तियों को केवल संपादकीय कमी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक विशेष महत्व रखती है। आज पत्रकारिता की शिक्षा में तकनीकी दक्षता पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया जाता है, जबकि नैतिक मूल्यों, भाषा-संस्कार और संपादकीय अनुशासन पर चर्चा सीमित होती जा रही है। यह पुस्तक इन सभी पक्षों को जीवंत उदाहरणों के माध्यम से सामने लाती है। इसलिए यह किसी सैद्धांतिक पाठ्यपुस्तक से अधिक प्रभावी सिद्ध होती है। मीडिया अध्ययन के शोधार्थियों के लिए भी यह पुस्तक महत्वपूर्ण स्रोत है, क्योंकि इसमें औपचारिक इतिहास के साथ-साथ संस्थागत संस्कृति और कार्यशैली के अनेक ऐसे पक्ष दर्ज हैं जो सामान्यतः दस्तावेजों में उपलब्ध नहीं होते। पत्रकारों के लिए यह आत्ममंथन का अवसर प्रदान करती है और सामान्य पाठकों के लिए हिन्दी पत्रकारिता के स्वर्णिम दौर से परिचय कराने वाली अत्यंत उपयोगी कृति बन जाती है।

इस पुस्तक का एक अप्रत्यक्ष किंतु महत्वपूर्ण योगदान यह भी है कि यह हमें पत्रकारिता और व्यक्तित्व-निर्माण के संबंध पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करती है। आज मीडिया की चर्चा प्रायः तकनीक, पूँजी, प्रसार और प्रभाव तक सीमित रह जाती है। किंतु यह पुस्तक याद दिलाती है कि किसी समाचारपत्र की वास्तविक शक्ति उसके नैतिक चरित्र में निहित होती है। यदि संपादक स्वयं मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध हो तो वही प्रतिबद्धता पूरी संस्था की कार्य-संस्कृति में दिखाई देती है। अभय छजलानी का व्यक्तित्व इसी सत्य का प्रमाण है। उन्होंने सिद्ध किया कि पत्रकारिता की प्रतिष्ठा केवल संसाधनों से नहीं, बल्कि विश्वास से निर्मित होती है।

समग्र रूप से कहा जाए तो 'हिन्दी पत्रकारिता और अभय छजलानी' हिन्दी पत्रकारिता की मूल्यपरक परंपरा का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। प्रत्येक गंभीर पाठक के पुस्तकालय में स्थान पाने की अधिकारी है।



(शोध आलेख संग्रह)

विदेश में हिंदी

समीक्षक : सुनील कुमार सिंह
संपादक : डॉ. कुबेर कुमावत
प्रकाशक : सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली

सुनील कुमार सिंह,
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद,
विदेश मंत्रालय, 15/307, वसुंधरा,
गाज़ियाबाद, उप्र 201012
मोबाइल- 9953234234

'विदेश में हिंदी' पुस्तक में भारतीय एवं विदेशी हिन्दी अध्यापकों, प्राध्यापकों के जो स्वानुभवपरक एवं शोधपरक आलेख प्रकाशित हुए हैं। इस पुस्तक में सम्मिलित लेख इसलिए भी स्तरीय एवं महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं कि वे केवल शोधपरक नहीं हैं बल्कि तमाम लेखकों ने विदेशों में हिन्दी की स्थिति को लेकर अपने स्वानुभवों के द्वारा अपने विचारों एवं आकलनों को अधिक प्रामाणिक एवं तथ्यपरक बनाने का प्रयास किया है। इस पुस्तक में कुल मिलाकर 50 लेख हैं जिनमें 23 विदेशी एवं 27 भारतीय लेखकों के हैं।

विदेश में हिन्दी की स्थिति, भारतवांशियों की स्थिति और उनका भारत की भाषाओं और संस्कृति के प्रति लगाव भी इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर व्यक्त हुआ है। कई लेखकों ने यह खुलकर कहा है कि उनके देश में जहाँ वे रह रहे हैं हिन्दी की कितनी प्रासंगिकता है और उसके विकास के मार्ग में आनेवाली चुनौतियाँ क्या और कितनी हैं? यह पुस्तक विदेश में हिन्दी की कहानी ही नहीं कहती बल्कि उसके अतीत एवं वर्तमान स्थिति का सटीक आकलन प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में जितने भी लेख संकलित हैं वे अधिकांश दो देशों के बीच मित्रता, सद्भावना, वैश्विक समझ एवं साझा सांस्कृतिक संबंधों को प्रगाढ़ करते हैं। यह पुस्तक हिन्दी के प्रति एक नई अंतराष्ट्रीय सोच को निर्माण करने में जहाँ सहायक है वहीं हिन्दी के प्रति अनुराग एवं उचित दृष्टिकोण को पैदा करने में सहायक होगी जो विदेश में हिन्दी की प्रगति का ज्ञातक है। एक तरफ़ यह पुस्तक विदेशी हिन्दी प्रेमी लेखकों के लिए एक सशक्त मंच प्रदान तो करती ही है तो दूसरी तरफ़ विदेशों में हिन्दी को परस्पर संवाद एवं सूचनाओं के प्रचार-प्रसार के माध्यम एवं विचार विनिमय के साधन के रूप में भी स्थापित करती है। इसके अतिरिक्त यह पुस्तक हिन्दी भाषा को भारत के साथ मधुर संबंध बनाने, विश्वपटल पर लोगों को भारतीय कला, संस्कृति, सभ्यता एवं परंपराओं के द्वारा जोड़ने की भी वकालत करती है।

पुस्तक का पहला लेख भाषा वैज्ञानिक डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा के लेख 'विदेश में हिन्दी : स्थिति और संभावनाएँ' से हुआ है। अपने इस लेख में हिन्दी भाषा के प्रति आकर्षित विदेशी विद्वानों एवं उनके हिन्दी भाषा विषयक कार्यों का स्मरण लेखक द्वारा किया गया है। इस लेख में यह स्थापना भी की गई है कि विदेश में आज तक हिन्दी का प्रचार-प्रसार जहाँ एक ओर विदेशी विद्वानों के प्रयास से उनके अध्ययन एवं अनुसंधान से हो रहा है, वहीं दूसरी ओर विदेश में बसे प्रवासी भारतीयों के प्रयास से भी हिन्दी की स्थिति सुदृढ़ हुई है और उसे नए क्षितिज मिले हैं। पुस्तक का दूसरा लेख हिन्दी विद्वान् पद्मश्री तोमियो मिजोकामी का जापान में हिन्दी शिक्षण की स्थिति एवं उसके सिंहावलोकन पर केंद्रित है। इस लेख में जापान में हिन्दी शिक्षण की पृष्ठभूमि को ओसाका विश्वविद्यालय में हिन्दी शिक्षण के प्रारंभ से जोड़कर अपने हिन्दी शिक्षण विषयक अनुभवों को लेखक ने जहाँ काफी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है वहीं हिन्दी की वर्तनी, व्याकरण, अनुवाद, शब्दयोजना आदि पर भी कटाक्ष किया है। पुस्तक का तीसरा लेख अमेरिका में हिन्दी भाषा और साहित्य की वास्तविक स्थिति पर केंद्रित काफी तथ्यपरक एवं विचारोत्तेजक लेख कहा जा सकता है। अपने इस लेख में वेदप्रकाश वटुक ने सत्तर के दशक से लेकर लंबे समय तक यानी लगभग चार दशकों तक की अमेरिका में हिन्दी भाषा, शिक्षण एवं साहित्य की वास्तविक स्थिति का ताना-बाना प्रस्तुत किया है। अमेरिका में हिन्दी प्रचार-प्रसार का बड़ा काम तो हुआ पर उसका अपेक्षित परिणाम नहीं मिला। लेखक का कहना है कि अमेरिका में हिन्दी की दशा-दिशा कुछ अंशों में वही है, जो भारत में है। वह उपेक्षित भी है और अपेक्षित भी। एक स्थान पर लिखते हैं, 'फिर भी सातवाँ दशक अमेरिका में हिन्दी के लिए स्वर्णयुग था। करोड़ों रुपये का अनुदान पाठ्यपुस्तकों के लिए दिया गया। पी.एल.480 के अंतर्गत सैंकड़ों शोधवृत्तियाँ भारत में 'फील्डवर्क' के लिए दी गईं। अनेक ग्रंथों के अनुवादों की व्यवस्था हुई और हिन्दी की पुस्तकें इन बीस विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए प्रचुर मात्रा में खरीदी गईं। भारत में किसी भी विश्वविद्यालय से अधिक हिन्दी लेखकों की रचनाएँ इन पुस्तकालयों में मिल जाएगी। इन पुस्तकालयों के कारण दिल्ली के पुस्तक विक्रेता, जिन्हें हर अच्छी पुस्तक के चयन और विक्रय

का पाँच वर्ष का ठेका मिला, धनाढ्य हो गए। बर्कले के दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र के अर्धवार्षिक मुखपत्र के अनुसार 'कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के पुस्तकालय में अनेक भाषाओं में भारत संबंधी साढ़े चार लाख पुस्तकें हैं। भारतीय भाषाओं की सैंकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। ...दर्जनों शोधार्थियों ने हिन्दी में पीएच.डी. की है।' इस पुस्तक में अमेरिका में हिन्दी भाषा की स्थिति पर केंद्रित लेखों में इला प्रसाद का 'अमेरिका में हिन्दी शिक्षण', सुधीर ओखदे का 'अमेरिका में बसा छोटा भारत-न्यूजर्सी', डॉ. कुसुम नैपसिक का 'अमेरिका में हिन्दी की वर्तमान स्थिति एवं संभावनाएँ', डॉ. अंजना संधीर का 'अमेरिका में हिन्दी', डॉ. वसुधा गाडगिल का 'अमेरिका-ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी जो देखी-सुनी' काफी ज्ञानवर्धन, शोधपरक एवं सूचनात्मक लेख कहे जा सकते हैं।

इस पुस्तक में अमेरिका और गिरमीटिया देशों के साथ-साथ विश्व के अधिकतर भूभागों, उपमहाद्वीपों सहित ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, चीन, जापान, रूस, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, दक्षिण कोरिया, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका, नेपाल, मॉरीशस, कनाडा, उज्बेकिस्तान तथा कैरेबियन देशों के भारतीय डायस्पोरा और उनमें में हिन्दी भाषा की स्थिति एवं संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय हिन्दी साहित्यकारों एवं भाषा विशेषज्ञों को विदेशी हिन्दी विद्वानों के साथ जोड़ने का कार्य भी इस पुस्तक में हुआ है। यह पुस्तक हिन्दी प्रेमियों, लेखकों, प्राध्यापकों, छात्रों को विदेशों में हिन्दी की कल, आज और कल की स्थिति से अवगत कराती है तथा हिन्दी डायस्पोरा पर विहंगम दृष्टि डालती है। हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में जो अवधारणा इधर के दिनों में विकसित हुई है उसकी सच्चाई को भी रेखांकित करती है। डॉ. जयंतीप्रसाद नौटियाल का लेख 'खड़ीबोली से विश्वभाषा तक हिन्दी की कानूनी स्थिति -शोध 2024' विशेष अवलोकनीय है। इस लेख में हिन्दी क्रानूनी रूप से विश्वभाषा के रूप में कैसे दावेदार है यह कुछ प्रमाणों एवं अहर्ताओं के द्वारा स्पष्ट किया गया है। विश्व में हिन्दी

बोलने वालों की संख्या लगभग 1560 मिलियन है। वैश्विक हिन्दी शोध संस्थान ने अपने द्वारा निर्मित 11 मानदंडों के आधार पर हिन्दी को विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में प्रथम स्थान पर रखा है। विभिन्न प्रांतीय भाषा-भाषी भारतवासियों ने विदेश में हिन्दी को ही भारत की मुख्य प्रतिनिधि भाषा के रूप में स्वीकार किया है। जापान में हिन्दी भाषा के इतिहास और वर्तमान पर केंद्रित डॉ. वेदप्रकाश सिंह का लेख विशेष ज्ञानवर्धक एवं स्वानुभवों पर आधारित है।

विदेशों में कभी मजदूरों के रूप में ले जाए गए भारतवासियों ने हिन्दी में जिस तरह अपने आपको व्यक्त किया वह केवल हिन्दी के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और प्रेम ही नहीं हैं बल्कि अपनी विस्थापन की पीड़ाओं एवं व्यथाओं के द्वारा अपने देश की मिटटी और संस्कृति के प्रति अपने प्रेम एवं लगाव का भी प्रकटीकरण कहा जा सकता है। अपने विस्थापन के कष्टों के बीच देश की मधुर स्मृतियों की गंध के सहारे अपने देश का इतिहास एवं संस्कृति यानी भारतीयता को वें प्रचारित करते हैं। हिन्दी भाषा में अपनी भाव-भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ तमाम भारतीय पौराणिक ग्रंथों रामायण, महाभारत, श्रीमद् भगवतगीता, संस्कृत व् बौद्ध साहित्य, इष्ट देवी-देवताओं एवं भारतीय परम्पराओं का प्रचार-प्रसार करते हैं जो लोगों को भारत व भारतीयता से जोड़ने की कड़ी का काम करती है। विशेषकर गिरमीटिया देशों के लोग भले ही शरीर से उन देशों में रह रहे हैं परंतु वे सभी मन से भारत की सभ्यता एवं संस्कृति, रीति-रिवाज, धार्मिक आस्थाओं, भाषाओं-बोलियों के सान्निध्य में ही जी रहे हैं, जिसके कारण वहाँ भारत का साहित्य, कला एवं परम्परा तथा मान्यताओं से संपन्न एक ऐसे लघु भारत का दर्शन होता है, जो विदेशों में रहकर भी भारतीयता से ओतप्रोत है। विदेशों में बसे भारतीयों में जहाँ भारत से बिछड़ने की पीड़ा है, वहीं अपनी अब तक हुई प्रगति का लेखा-जोखा भी है। इस प्रगति में स्थानीय समाज एवं संस्कृति के साथ सामंजस्य भी दिखाई देता है। हिन्दी भाषा एवं उसमें शामिल अनेक बोलियों

के शब्द तथा उनके आधार पर गिरमीटिया या अन्य देशों में निर्मित नए शब्द हजारों की संख्या में प्रचलित हैं। वहाँ की बोली जाने वाली भाषा शब्दावली में प्रयुक्त शब्दों का इस पुस्तक में एक विस्तृत विवरण है और यह शब्दावली वहाँ की भाषिक संस्कृति को चित्रित करती है। वहाँ की इस भाषिक संस्कृति में हिन्दी के ध्वनिविचार, व्याकरण, वाक्यविन्यास, प्रायोगिक नियमों के क्षेत्रों में भी बहुत-सी समानताओं एवं विशेषताओं पर इस पुस्तक के अनेक लेखों में दृष्टि डाली गई है। गिरमीटिया तथा कैरेबियन देशों में हिन्दी की स्थिति पर केंद्रित डॉ. दीपक पाण्डेय का 'त्रिनिडाड एवं टोबैगो में हिन्दी', भावना सक्सेना का 'कैरिबियाई देशों में पल्लवित होती हिन्दी', डॉ. दीप्ती अग्रवाल का 'कैरेबियन देशों के अतीत, वर्तमान में हिन्दी की स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ' आदि लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। मॉरीशस में हिन्दी की स्थिति पर केंद्रित लेखों में डॉ. नूतन पाण्डेय का 'मॉरीशस का भाषिक समाज : एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन', शशि डूकन का 'मॉरीशस में कार्यसाधक भाषा के रूप में हिन्दी', सुनीता पाहुजा का 'मॉरीशस में हिन्दी और भारतीय संस्कृति : कल, आज और कल', डॉ. अलका धनपत का 'वर्तमान परिस्थितियों में हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ : मॉरीशस के संदर्भ में' विशेष शोधपरक एवं सूचनात्मक लेख कहे जा सकते हैं।

विदेश में शिक्षा, व्यापार, पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी की उपस्थिति तथा सामाजिक मेलजोल की भाषा के रूप में हिन्दी भाषा की उपादेयता भी अनेक लेखों में प्रतिपादित की गई है। विदेश में हिन्दी का प्रयोग न केवल लोगों को भारत से जोड़ता है बल्कि यह आजकल वहाँ पर लोगों को परस्पर व्यापार, बाजार एवं रोजगार की संभावनाओं से भी परिचित कराता है। डॉ. अंतरा करवड़े ने अपने लेख 'अंतरराष्ट्रीय व्यापार में हिन्दी का महत्त्व : आयात-निर्यात के विशेष परिप्रेक्ष्य में' में लगभग 190 देशों में उपलब्ध बाजार एवं व्यापारिक संभावनाओं पर प्रकाश डाला है। भारत में निर्मित चीजों एवं भारतीय उत्पादकों

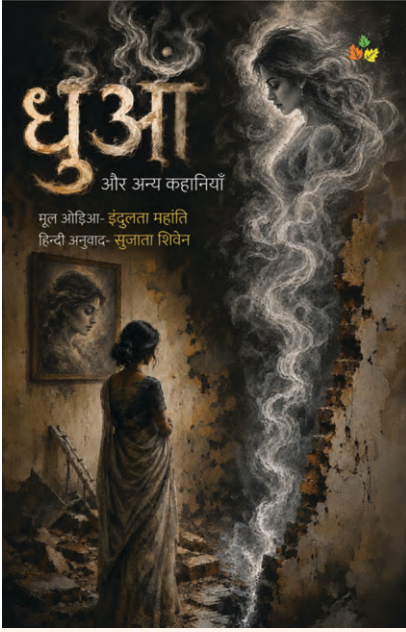
को उपलब्ध विस्तृत बाजारों एवं व्यापार की नव-नवीन संभावनाओं के कारण कैसे लोग हिन्दी से जुड़ रहे हैं इसका विस्तृत आकलन उनके लेख में प्रस्तुत है। उज्बेकिस्तान में हिन्दी भाषा का प्रयोग शिक्षा, व्यापार, अनुवाद, अनुसंधान, सूचना-प्रसारण आदि क्षेत्रों में नई ऊँचाईयों को कैसे छू रहा यह डॉ. सिरोजिद्दीन नुर्मातोव ने अपने लेख में तथा हिन्दी फिल्मों के प्रति उज्बेकी नागरिकों के प्रेम को अखमादजान कासिमोव ने अपने लेख में बहुत ही आत्मीय भाषा में समझाया है। जर्मनी के लाइपत्सिग शहर में हिन्दी अध्यापन का इतिहास एवं आज की स्थिति पर अडैले हेन्निश टेम्बे ने अच्छा प्रकाश डाला है। रूस में हिन्दी भाषा की स्थिति पर केंद्रित लिउडमिला खोखलोवा का 'रूस में हिन्दी के अध्यापन का इतिहास तथा आधुनिक स्थिति' एवं डॉ. प्रगति टिपनिस का 'रूस में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में हिन्दी सिनेमा की भूमिका' दोनों लेख काफी ज्ञानवर्धक हैं। लिउडमिला ने एक नई बात कही है, 'यहाँ शिक्षा का माध्यम रूसी है। इसका मतलब यह है कि सारे विषय (जिनमें हिन्दी साहित्य का इतिहास भी शामिल है) रूसी भाषा में पढ़ाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि रूसी छात्रों को हिन्दी एकदम शुरू से यानी वर्णमाला से सिखनी पड़ती है। इसलिए मॉस्को आदि विदेशी विश्वविद्यालयों में वैसा पाठ्यक्रम नहीं बनाया जा सकता जैसा भारतीय विश्वविद्यालयों में बी.ए. और एम.ए. स्तर तक हिन्दी पढ़ाने के लिए लागू है। हमारे लक्ष्य भी दूसरे हैं।' डॉ. हेमचंद्र पाण्डेय ने अपने लेख 'शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी और उससे जुड़े रोजगार के अवसर : रूस और रूस के कुछ पड़ोसी देशों के संदर्भ में' हिन्दी में उपलब्ध रोजगार की संभावनाओं से परिचित कराया है, वहीं प्रो. कर्णसिंह चौहान ने 'विदेशों में हिन्दी अध्ययन और अध्यापन : समस्याएँ और समाधान' में काफी खरी-खरी बात कही है। विदेशों में हिन्दी अध्यापन की स्थिति पर वे लिखते हैं- 'यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि विदेशों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन को लेकर जो शानदार विवरण और विमर्श देश-विदेश में हिन्दी से

जुड़े लोगों द्वारा किये जाते हैं, वे अधिकांश में वास्तविकता से अलग खुशफ़हमियों से परिचालित होते हैं। अधिकतर के लिए तो यह पापी पेट का सवाल है या उनके अस्तित्व, अस्मिता, महत्त्व और सार्थकता से जुड़ा है। वास्तविकता कटु यथार्थ को उजागर करने वाली है और गरिमायम झूठ पर पानी फेरने वाली है। इसलिए सभी जीवनभर ग़लतबयानी करते रहते हैं और विश्व हिन्दी सम्मलेन जैसे आयोजन इस अवास्तविकता को गौरवान्वित कर यथार्थ में बदलने की कोशिश करते हैं।' विदेश में शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर नार्थ अमेरिका में हिन्दी भाषा शिक्षण की स्थिति पर डॉ. हंसा दीप ने अपने स्वनुभवपरक लेख में काफी आकर्षक बातें कही हैं। विदेश में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में हिन्दी सिनेमा की भूमिका को वे रेखांकित किये बिना नहीं रहती। डॉ. अंजना संधीर का लेख इस विषय में अधिक दृष्ट्य है कि कैसे हिन्दी फ़िल्मी गीतों के द्वारा अमेरिका में हिन्दी भाषा शिक्षण का सफल एवं मानीखेज प्रयोग हुआ।

विश्व में विभिन्न जनसंचार माध्यम, पत्रकारिता एवं हिन्दी में रोजगार को लेकर उपलब्ध संभावनाएँ आदि से संबंधित विवरण, आकलन, शोध एवं अपने अनुभवों पर केंद्रित डॉ. सुशील उपाध्याय, डॉ. श्रीनारायण समीर, डॉ. मनोज पाण्डेय, डॉ. ब्रसिल नागाँड़ वितान (श्रीलंका), प्रो. सुरेश माहेश्वरी, डॉ. जयराम सूर्यवंशी, डॉ. मुस्तफा शाह आदि के लेख काफी ज्ञानवर्धक एवं सूचनात्मक हैं। विदेश में हिन्दी की विश्वभाषा के रूप में स्थिति पर डॉ. अंशुमान मिश्र, डॉ. संजय महाजन, डॉ. भुमरे, डॉ. वनिता पवार, डॉ. आनंद खरात एवं डॉ. निम्बा वाल्हे के लेख पठनीय एवं ज्ञानवर्धक हैं। डॉ. अमित विश्वास ने अपने लेख 'विदेशियों का हिन्दी प्रेम' में विशेषकर विदेशी हिन्दी विद्वानों के हिन्दी के विकास में योगदान का स्मरण किया है वही डॉ. सुनील कुलकर्णी ने केंद्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा विदेश में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को लेकर किये जा रहे कार्यों एवं उपलब्धियों से परिचित कराया है। चीन में हिन्दी की स्थिति पर डॉ. विवेकमणि त्रिपाठी

का 'चीन में हिन्दी शिक्षण की दशा एवं दशा' तथा डॉ. अनिर्बाण घोष का 'चीन में हिन्दी अध्ययन का संक्षिप्त इतिहास' यह दोनों लेख चीनी लोगों के हिन्दी भाषा सीखने के प्रति जागरूकता एवं रुचि पर प्रकाश डालते हैं। डॉ. ब्रसिल नागाँड़ वितान ने श्रीलंका में जनसंचार और पर्यटन उद्योग में हिन्दी की स्थिति को शब्दांकित किया है वहीं डॉ. दिविक रमेश ने दक्षिण कोरिया में हिन्दी की स्थिति को अपने स्वानुभवों एवं निष्कर्षों के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ. राजकुमारी गौतम ने बेल्जियम में हिन्दी की स्थिति एवं संभावनाओं के साथ उसके समक्ष प्रस्तुत चुनौतियों पर प्रकाश डाला है। न्यूजीलैंड में हिन्दी की स्थिति पर रोहित कुमार हैप्पी एवं डॉ. सुनीता नारायण ने विशेष सूचनाओं एवं अपने अनुभवों से अवगत कराया है। डॉ. संध्या सिंह ने 'भाषाओं को सहेजने वाले देश सिंगापुर' इस लेख में सिंगापुर की बहुभाषिक संस्कृति और हिन्दी भाषा की सुंदर छवि प्रस्तुत की है। डॉ. संजीत वर्मा ने नेपाल में हिन्दी की कल, आज और कल की स्थिति पर प्रकाश डाला है।

यह पुस्तक अनुवाद के कार्यों में सुगमता एवं रोजगारों की दिशा दिखाने में भी सहायक है। कैरेबियन देशों में सारे सांस्कृतिक, धार्मिक, संगीत कार्यक्रमों का आधार एवं माध्यम हिन्दी है। संगीत, सिनेमा, मनोरंजन, भजनों का मुख्य आधार हिन्दी है साथ ही साथ रोजगार के सृजन में हिन्दी के महत्त्व एवं विस्तार तथा नई संभावनाओं को अनेक स्थानों पर व्यक्त किया गया है। विश्व हिन्दी सचिवालय, यू.एन.ओ., एवं अन्य हिन्दी की अनेक वैश्विक सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों एवं उनकी गतिविधियों का भी भलीभाँति परिचय इस पुस्तक में मिलता है। कहा जा सकता है कि यह पुस्तक हिन्दी भाषा के विश्व में मजबूत होते जा रहे अस्तित्व और चुनौतियों पर जहाँ प्रकाश डालती है, वहीं उसके विकास एवं विश्वभाषा के रूप में प्रचारित कतिपय काल्पनिक एवं अवास्तविक मान्यताओं को भी ध्वस्त करती है।



(कहानी संग्रह)

धुआँ और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : डॉ. मधु संधु

लेखक : इंदुलता मोहंति

अनुवाद : सुजाता शिवेन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु

13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल,
जी. टी. रोड, अमृतसर 143104, पंजाब

मोबाइल- 8427004610

ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

'धुआँ और अन्य कहानियाँ' ओड़िआ लेखिका इंदुलता मोहंति का 2026 में हिन्दी में अनूदित कहानी संग्रह है। ओड़िआ में उनके 20 कहानी संग्रह, 3 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अनेक पुस्तकों का अंग्रेजी और हिन्दी से ओड़िआ में अनुवाद भी किया है। पंजाब की लोकप्रिय लेखिका अमृता प्रीतम के उपन्यासों 'पिंजर', 'कोरे कागज़', 'अदालत', 'उनचास दिन' का अनुवाद 'उपन्यासमाला' में मिलता है और उनकी दर्जनों कहानियों का भी ओड़िआ में अनुवाद किया। प्रस्तुत संकलन में इंदुलता मोहंति की 14 कहानियाँ संकलित हैं- मोहन वंशी, सोतन का बेटा, पूर्ण से शून्य, क्या मीरा बावरी थी, उरुवी, आशादीप, चलें एक अजनबी राह पर, प्रतिपक्ष, पुरस्कार, आश्रय, ठाकुर जी का घर, बौना, टपि रो रहा है, धुआँ।

विस्थापन की त्रासदी को झेल रहा मनुष्य उनकी अनेक कहानियों में मिल जाता है। 'मोहन वंशी' में शहरों की उस जादुई वंशी का अंकन है, जो सीधे-सादे ग्रामीणों को अपनी मोहनी माया में फँसा रही है। प्रो. विश्वात्मा और नंदिनी भी सुखी- सम्पन्न जीवन की खोज में शहर आते हैं, पर आज उनके पास न दिन का चैन है, न रात की नींद। ऐसे असंख्य लोग हैं, जिनके पास न सिर छिपाने को घर है, न पेट भर खाना, बस फूली साँसें और भागदौड़ ही है। पैसा हो भी, पर जिंदगी नहीं है। वे गाँव को याद करते हैं, गाँव जाने को तरसते हैं, पर जाते नहीं। 'आश्रय' में 21वीं शती का महानगरीय जीवन चित्रित है। यहाँ विस्थापित दंपति ने महानगरीय जीवन स्वीकार लिया है। शादी के बाद अंजलि महानगर आती है और देखती है- सब अपने में कैद रहते हैं। जल्दी ही उसे अपनी सोच और बाह्य वेषभूषा बदलनी पड़ती है। अब उसे ज़ीन-टॉप पहन नौकरी पर जाना है।

'धुआँ' फ्लैट संस्कृति की पोल खोल रही है। वरिष्ठ नागरिकों के पुराने, पेड़-पौधों से सम्पन्न, बड़े-बड़े बंगले बहुमंजिला इमारतों यानी फ्लैटों में रूपांतरित हो रहे हैं। एक बंगले की स्पेस में आज 50 परिवार रह रहे हैं। यह प्रमोटर या बिल्डर का कमाल है। फ्लैट में रहने वाली गायत्री की तरह हर मन में स्वतंत्र मकान की इच्छा तो कुलबुलाती है। शायद इन महाकाय बंगलों में रहने वाली किसी पीड़ित आत्मा के शाप ने ही इनको जालों और धुएँ से भर ध्वस्त कर दिया है। यहाँ कभी गायत्री जैसी स्त्रियों का वास रहा होगा।

इंदुमति के पात्र पारिवारिक उलझनों से भी जूझ रहे हैं। 'सौतन का बेटा' कहती है कि अपार प्रेम करने वाली दो बहनों की अगर एक ही पुरुष से शादी हो जाए, तो भी सौतिया दाह का हर पैतरा उनके जीवन में समा जाता है, मृदुताएँ कड़वी- कसैली हो जाती हैं। कहानी में प्रसव के समय एक की मृत्यु हो जाती है, दूसरी की अपनी कोई संतान नहीं है, शायद इसलिए वह उसे

अपने बच्चे की तरह प्यार करने लगती है।

स्त्री भले ही किसी भी उम्र की हो, ससुराल में कितनी भी रमी हुई क्यों न हो, मायके जाने की कल्पना से ही उसका मन शारदीय मेघों की तरह फड़फड़ाते लगता है। मायके से मिलने वाला सामान और सम्मान ससुराल में उनका क्रद ऊँचा कर देते हैं, आत्मविश्वास से भर देते हैं। मायके में वह एक लड़की / बेटी / बच्ची है- यह आभास उसे गुदगुदाता है, किशोरावस्था में ले जाता है। 'पूर्ण से शून्य' में स्त्री की यही मनः स्थिति चित्रित है।

सामाजिक विसंगति के भी अनेक पक्ष हैं। 'क्या मीरा बावरी थी?' में विवाह की समस्या है। रूप और अर्थ कन्या के परिणय के लिए अनिवार्य हैं। सर्वगुण सम्पन्न कमसिन राई को इन दोनों के अभाव में असंख्य अग्निपरीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। प्रदर्शनी की तरह अपरिचित लोगों के सामने बैठने का अपमान झेलना पड़ता है। सौभाग्य की तलाश में दुर्भाग्य को गले लगाना पड़ता है। अंततः वह बावरी सी हो जाती है, उसी तरह जैसे मीरा अपने कृष्ण-कन्हैया के लिए बावरी हुई थी। देर से ही सही-बेटा सकुशल घर लौट आए और बेटी ससुराल पहुँच जाए, यही सामान्य स्थिति है।

'बौना' में मनसा की बड़े घर और अच्छी नौकरी वाले लड़के से शादी के लिए पैतृक घर गिरवी रखा जाता है, माँ के सारे गहने बिक जाते हैं, लेकिन ससुराल और जमाई अपनी अकड़ में ही रहते हैं। जबकि छोटी तमशा के अंतर्जातीय प्रेम विवाह में दहेज जैसी कोई स्थिति नहीं रहती, लेकिन पितृ परिवार का बायकाट चलता रहता है। अचानक माँ की टाँग टूट जाती है। मनसा आती तो है पर उसका बड़े घर वाला, जातीय पति उसका मायके रुकना झेल नहीं पाता और तमशा का पति माँ की बीमारी का पता चलने पर उसे साथ लेकर आता है और बड़े दिल और छोटे घर वाले बेटी-जमाई उसे साथ साथ ले जाते हैं। यानी बरगद के पेड़ से बड़े आकार के बावजूद मनसा बोनसाई बनकर रह जाती है और तमशा और उसके पति की सक्रिय आत्मीयता परिवार समाज की सोच बदल देती है।

वृद्धावस्था परिवार और समाज के लिए चुनौती है। 'चलो एक अजनबी राह पर' वृद्धाश्रम में वानप्रस्थ बिता रहे वृद्धों की कहानी है। जीवन के चौथे प्रहर में व्यक्ति को जिस साथ की, सहानुभूति की, अपनत्व की आवश्यकता होती है, वह उसे मिल नहीं पाता। क्योंकि आज वह उनके लिए अनुपयोगी हो चुका है। परिवार प्रदत्त निर्वासन झेलते वृद्धावस्था में वानप्रस्थ झेलना नियति है। ऐसे ही किशोरावस्था के दो परिचित जीवन संध्या में वृद्धाश्रम में मिलते हैं। पहचान का सूत्र पुरुष द्वारा गाया जाने वाला गीत है- 'आधा है चंद्रमा रात आधी, रह न जाए तेरी मेरे बात आधी, मुलाक़ात आधी।'

वंशवाद की त्रासदी आज की नहीं है, युगों पुरानी है। 'उरवी' की उरवी पौराणिक पात्र है। वह पुकेय के राजा बाहुसा और क्षुब्रा की इकलौती संतान और महाबली कर्ण / सूतपुत्र / अंगदेश के राजा की दूसरी पत्नी है। महाभारत में अर्जुन द्वारा कर्ण का वध किया जाता है। उरवी जानती है कि कर्ण जीवन भर विश्वासघात ही झेलते रहे। पहला विश्वासघात माँ कुंती ने किया। अपनी इज्जत की खातिर बालक का परित्याग करते उसे नदी में बहा दिया। क्रोधो ब्राह्मण, पृथ्वी माता और गुरु परशुराम का अभिशाप मृत्यु का दूसरा कारण बना। तीसरा विश्वासघात अर्जुन के पिता इन्द्र ने धोखे से कवच-कुंडल माँग कर किया। चौथा विश्वासघात माँ कुंती द्वारा युद्ध से पहले कर्ण के जन्म से जुड़े सत्य को प्रकट करके किया गया। पाँचवाँ विश्वासघात सारथी बने राजा शल्य ने रथ का चक्का मिट्टी से न निकालने पर किया और छठा विश्वासघात कृष्ण ने उन्हें मारने के लिए कूटनीति का सहारा लेकर किया। इसीलिए स्वाभिमान की उरवी पांडवों और कृष्ण के लाख अनुरोधों पर भी न कभी हस्तिनापुर जाती है और न अपने बेटे वृषकेतु के लिए हस्तिनापुर की गद्दी का अनुमोदन करती है। कहानी द्वापर युग में भी चल रहे वंशगत / जातीय भेदभाव का चित्रण कर रही है। कर्ण की सारी उपेक्षाओं का कारण वंशवाद / जातिवाद ही था।

'प्रतिपक्ष' दाम्पत्य, पुरुषीय शंकालु मनोविज्ञान और दो सहेलियों के सख्य भाव-प्रेम की कहानी है। यात्रा के दौरान एक स्टेशन विशेष पर पत्नी की तन्मयता, अपलक दृष्टि और उच्छ्वास पति कैसे स्वीकार करे? पत्नी बताती है कि यह क्रस्बा उसकी कॉलेज की सखी गौरी का है। समान विषय और हॉस्टल के साथ ने उनमें आत्मीयता भर दी। गौरी तो चाहती थी कि नीलिमा की शादी उसके भाई से हो जाए। जबकि आज गौरी अमेरिका में है और भाई वर्षों पहले ही भारत-पाक युद्ध में शहीद हो चुका है। वर्षों बाद पति-पत्नी को उनके घर आने का अवसर मिलता है। यहाँ भी पति की शंकालु दृष्टि सजग रहती है। अंततः गौरी की माता-पिता की आत्मीयता और फूल माला वाली उसके शहीद भाई की वर्षों पुरानी फोटो भ्रम तोड़ती है, उसके मन को शांत करती है।

शादी भी स्त्री के लिए विस्थापन बन कर रह जाती है। 'पुरस्कार' की कवि हृदय, भावुक मन अरुंधति की शादी होती है और चूल्हे-चौंके का संसार सँभालने के बाद उसका पेन पकड़ना न सास को अच्छा लगता है, न पति को। सास का सारा दिन पुराना अखबार पढ़ने, खाने-सोने, गपियाने तथा पूजा और बागवानी करने में बीतता है और अरुंधति का पूरे परिवार की व्यवस्था में। रसोई घर के एक कोने में छिपाकर रखी एक कॉपी में वह कुछ न कुछ लिखती रहती है। सखी की छोटी बहन प्रो. नंदिका उसकी कविताएँ पढ़ती है, उन्हें पुस्तकाकार देती है और पुस्तक अकादमी पुरस्कार के लिए मनोनीत हो जाती है। यह जानकार कि पुरस्कार राशि पैंतीस हजार है, सभी की जरूरतें उभर आती हैं। वह काव्य प्रतिभा, जिसे आज तक विकार माना गया था, उससे होने वाली अर्थजन्य उपलब्धि को सारा परिवार अपने नाम करना चाहता है- बेटी को हॉस्टल जाना है, पति को स्कूटर चाहिए, सास तीर्थयात्रा पर जाएगी और ससुर छत पर कमरा बनवाएँगे।

'आशादीप' कहती है कि अगर किसान का बेटा कृषि विज्ञान में उच्च शिक्षा के बाद किसान बनकर काम करे तो व्यक्ति, परिवार,

गाँव, शहर, देश का कायाकल्प कर सकता है। ग्रामीण मोहन कृषि विज्ञान में उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर अपने गाँव का नक्शा ही बदल देता है। वह जल संग्रह के लिए तालाब, युवकों के लिए मछली पालन, फसलों के लिए गोबर की खाद द्वारा गाँव वालों का कायाकल्प कर देता है। यहाँ तक कि उसे इटली के कृषि सम्मेलन का आमंत्रण मिलता है।

'ठाकुर जी का घर' आस्था-अनास्था के बीच डोलते आज के मनुष्य की कहानी है। मानसी चाहती है कि घर में एक मंदिर हो, जिसमें जगन्नाथ, गणेश, लक्ष्मी, साजसवाती की प्रतिमाएँ रहें। लेकिन पति तापस की ट्रांसफरेबल नौकरी के कारण हर नए घर में मंदिर का कमरा नहीं मिल पाता, जबकि ड्राईंग, बेड, किचन, स्टडी- सब के लिए कमरे होते हैं। इस बार के घर में एक छोटा सा ठाकुर जी का कमरा मिलता है तो उसका मन प्रसन्न और संतुष्ट हो जाता है। पर धीरे-धीरे फालतू सामान, खट्टे, टूल्स, कालीन, कैरम सब उसी मंदिरनुमा कमरे में आ उसे संतप्त करते हैं।

'टपि रो रहा है' में बाल मनोविज्ञान है। बुबुन जीव-जन्तुओं के प्रति अगाध लगाव लिए हैं। पुसी बिल्ली को दूध पिलाना या पिल्लों को बिस्कुट खिलाना उसे अच्छा लगता है। मित्र के यहाँ नेपाली चुहिया बच्चे देती है, तो उससे दो बच्चे ले आता है और उनका नाम चुनि-मुनि रखता है। माँ नमिता भी उसके साथ है। बहुत पहले एक बार वह एक पिल्ला लाया था। जिसका नाम उसने टपि रखा। टपि जल्दी ही उसका जिगरी दोस्त बन गया। खाते समय, खेलते समय, सोते समय- दोनों साथ-साथ ही रहते। एक दिन अचानक टपि गुम हो जाता है। मिश्रा बाबू के बेटे द्वारा टपि की हत्या कर दी जाती है। माँ यह बात बच्चे के बाल मन से तो छिपाकर रखती है, लेकिन टपि को नींद में भी पिल्ले के रोने की आवाज़ वहीं से आती है, ज्ञान उसे दर्ज़न किया गया था।

'क्या मीरा बावरी थी?' में रज, कुआरपुनेर, खुदरूकुनी, ओषा जैसे स्थानीय

तीज-त्योहारों का अंकन है। अलंकृति भाषा में यहाँ-वहाँ मिल जाती है। जैसे- उपमा- तोरई के बीज की तरह काली, लता की तरह छरहरा शरीर (उपमा), कहीं-कहीं अंध विश्वासों का भी अंकन है। जैसे- कुंवारी होने पर लड़की खुद तो डायन, चुड़ैल, पिशाचिनी बनेगी ही, अपने चौदह पुरुषों को भी नरक में ढकेलेगी। कहानी में प्रतीकात्मक संदर्भ आए हैं- 'पुरस्कार' में चितिर, भालुआ और पूसी की मैत्री में यह जंगली फूल जैसी युवती कहीं अधिक आत्मीयता पाती है। परामनोविज्ञान भी इन कहानियों में मिल जाता है। जैसे 'टपि रो रहा है' में टपि को नींद में पिल्ले के रोने की आवाज़ वहीं से आती है, जहाँ उसका मृत शरीर दर्ज़न किया गया था। 'धुआँ' में टूटे-फूटे बंगले के एक श्वेत-श्याम दीमक लगे चित्र में नायिका को अपना ही प्रतिरूप मिलता है, मानों यह उसके पिछले जन्म का चित्र हो। प्रकृति के प्रति तो लेखिका का विशेष अनुराग है। 'सौतन का बेटा' में रामायण और महाभारत काल के स्वयंवर का प्रसंग है। 'उरवी' में महाभारत का प्रसंग है। संस्कृत शब्दों- वह्नि-कन्या, आयोनि-संभुता आदि के अतिरिक्त कहीं कहीं स्थानीय शब्द- दुखार, साआंतरा, दयाद भी मिल जाते हैं। कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी हैं, जो पुस्तक बंद का देने के बाद भी मस्तिष्क में गूँजती रहती हैं। जैसे-

1. भागदौड़ करते फूली साँस लिए न चलो तो आगे बढ़ना मुश्किल।

2. भँवर में गिर गया व्यक्ति बाहर नहीं निकाल पाता है।

3. लड़की इंसान नहीं होती, वह एक चीज़ होती है।

4. पुराने घी की तरह घर पर बैठी बेटी बसाने लगती है।

5. प्रतियोगिता समारोह वीरों की गुणवत्ता और पारंगतता देखने के लिए था।

6. जय पराजय दल के बलबूते पर होता है। अकेला व्यक्ति किसी एक दल के विरुद्ध जय हासिल नहीं कर सकता।

अनुवादिका सुजाता शिवेन भले ही आज नोएडा में रह रही हैं, लेकिन उनका जन्म सम्बलपुर ओड़िशा का है। यानी स्रोत भाषा

के भाव, अर्थ, संस्कृति को लक्ष्य भाषा तक पहुँचाने की सामर्थ्य लिए हैं। दोनों भाषाओं के व्याकरण, शब्दावली, मुहावरे- लोकोक्तियों पर उनका पूरा अधिकार है। दोनों भाषाओं की सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समझ है। उनकी चालीस से अधिक अनूदित पुस्तकें और अनेक समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। अन्य अनेक पुरस्कारों के इलावा केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक पुरस्कार से भी 2016 में सम्मानित हो चुकी हैं।

इन कहानियों में पारिवारिक- सामाजिक जीवन के विविध चित्र बिखरे हुये हैं, जिनमें संताप और चिंतन, प्रेम और कर्तव्य, कुंठा और उन्मुक्तता, दमन और वेदना, जीवट और संघर्ष, मूल्यबद्धता और मूल्यहीनता, जातीयता और वंशवाद, विस्थापन और महानगर, आधुनिकता, परंपरा और पौराणिकता, नारी विमर्श और पुरुष चिंतन, वानप्रस्थ और वृद्धाश्रम, मनोविश्लेषण और परामनोविज्ञान- सभी आपको मिल जाएँगे। कहानियों का मूल स्वर आधुनिक जीवन शैली की स्वीकृति, आदर्श विश्वासों तथा मानवता के मूल्यों का अनुमोदन है।

000

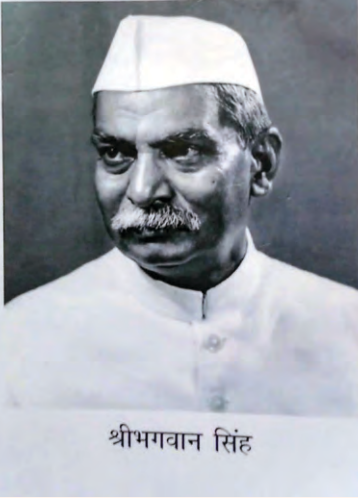
लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

डॉ. राजेंद्र प्रसाद

देशरत्न से भारतरत्न बनने की दास्तान



(इतिहास)

डॉ. राजेंद्र प्रसाद : देशरत्न से भारतरत्न बनने की दास्तान

समीक्षक : राजेश कुमार सिन्हा

लेखक : भगवान सिंह

प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल,
दिल्ली

राजेश कुमार सिन्हा

फ्लैट नंबर 503/बी विंग, सरला गार्डन,

जवाहर लाल नेहरू रोड, वाकोला,

सांताक्रुज (पूर्व), मुंबई, 400055

मोबाइल- 7506345031

ईमेल- sinharajeshmumbai@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्र भारत के आरंभिक राजनीतिक इतिहास में डॉ. राजेंद्र प्रसाद का व्यक्तित्व जितना विराट है, हमारी सार्वजनिक स्मृति में उनकी उपस्थिति उतनी ही सीमित दिखाई देती है। वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे, संविधान सभा के अध्यक्ष थे, गांधी के निकट सहयोगी थे, स्वतंत्रता आंदोलन के अग्रणी सेनानी थे, एक गंभीर चिंतक और लेखक थे और जनता के बीच ऐसी प्रतिष्ठा रखते थे कि उन्हें 'देशरत्न' कहा गया। इसके बावजूद आज की पीढ़ी के सामने उनका परिचय अक्सर 'भारत के प्रथम राष्ट्रपति' के एक छोटे-से वाक्य में सिमट जाता है। लेखक प्रोफेसर भगवान सिंह की पुस्तक 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद : देशरत्न से भारतरत्न बनने की दास्तान' इसी विस्मृति के विरुद्ध एक सार्थक हस्तक्षेप करती है। यह पुस्तक राजेंद्र प्रसाद को केवल एक संवैधानिक पद पर बैठे व्यक्ति के रूप में नहीं देखती, बल्कि उनके व्यक्तित्व के बनने, संघर्षों से गुजरने, गांधी के साथ उनके संबंधों, स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका, संविधान सभा की अध्यक्षता और स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में उनकी भूमिका को एक क्रमिक ऐतिहासिक यात्रा में रखती है। पुस्तक की विषय-सूची पर दृष्टि डालें तो इसकी संरचना ही लेखक की दृष्टि को काफी हद तक स्पष्ट कर देती है। लेखक ने राजेंद्र प्रसाद के जीवन को तीन बड़े चरणों में बाँटा है यथा जीवनी, गांधी के साथ और गांधी के बाद। यह विभाजन साधारण दिखाई दे सकता है, लेकिन वास्तव में इसके भीतर राजेंद्र प्रसाद के पूरे राजनीतिक और वैचारिक जीवन की एक विकास-रेखा छिपी हुई है।

'गांधी के पहले' से शुरू होकर 'गांधी के साथ' और फिर 'गांधी के बाद' तक पहुँचने वाला यह क्रम बताता है कि लेखक राजेंद्र प्रसाद को गांधी की छाया में खड़े व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले ऐसे राष्ट्रीय नेता के रूप में देखना चाहते हैं जिसकी राजनीतिक यात्रा गांधी के संपर्क से नई दिशा तो प्राप्त करती है, लेकिन वहीं समाप्त नहीं हो जाती और यही इस पुस्तक की पहली महत्वपूर्ण विशेषता है। राजेंद्र प्रसाद की जीवनी लिखने की सबसे बड़ी चुनौती यही है कि गांधी के विराट व्यक्तित्व के सामने उनके सहयोगियों की स्वतंत्र पहचान कई बार धुँधली हो जाती है। राजेंद्र प्रसाद गांधी के निकट थे, उनसे प्रभावित थे, उनके आंदोलनों में सहभागी थे, लेकिन वे केवल 'गांधी के आदमी' नहीं थे। वे स्वयं एक प्रतिभाशाली, शिक्षित, सफल अधिवक्ता, संगठनकर्ता और स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्व थे। पुस्तक का आरंभिक विन्यास इस तथ्य को रेखांकित करता हुआ दिखाई देता है।

'यह क्यों', 'गांधी के पहले', 'अवतरण' और 'देश-काल के शेर से भिड़कर' जैसे आरंभिक अध्यायों के शीर्षक अपने भीतर एक कथा-संकेत रखते हैं। यहाँ जीवन-वृत्तांत को महज जन्म, शिक्षा, नौकरी, विवाह और राजनीतिक प्रवेश की सूचनाओं के रूप में नहीं देखा गया है, बल्कि व्यक्ति और समय के बीच टकराव को कथा का आधार बनाया गया है। 'देश-काल के शेर से भिड़कर' विशेष रूप से अर्थपूर्ण शीर्षक है।

राजेंद्र प्रसाद की असली राजनीतिक पहचान गांधी से उनके संपर्क के बाद व्यापक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उभरती है। इसलिए पुस्तक का सबसे विस्तृत खंड स्वाभाविक रूप से 'गांधी के साथ' है। यहाँ अध्यायों का क्रम बहुत कुछ कहता है, 'चंपारण सत्याग्रह', 'असहयोग की राह', 'असहयोग के बाद', 'उठते-पुल का दौर', 'आपदा-प्रबंधन की मिसाल', 'सर्वोच्च सम्मान', 'मतभेद, पर मनभेद नहीं', 'जब मतभेद बने मनभेद' और 'कारावास और फलागम'। इन शीर्षकों को केवल अध्यायों के नाम मानकर आगे बढ़ जाना पुस्तक के मूल स्वर को समझने से चूकना होगा। ये वास्तव में राजेंद्र प्रसाद के राजनीतिक जीवन के पड़ाव हैं। विशेष रूप से चंपारण सत्याग्रह का अध्याय महत्वपूर्ण है। चंपारण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में गांधी के भारत में सत्याग्रह के प्रयोग का महत्वपूर्ण अध्याय है, लेकिन उसके स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक सहयोगियों की भूमिका को समझे बिना चंपारण की पूरी तस्वीर सामने नहीं आती। राजेंद्र प्रसाद का जीवन चंपारण से जिस तरह जुड़ा है, वह उनके गांधी के निकट आने और भारतीय जनजीवन की वास्तविक समस्याओं से गहरे संपर्क का भी महत्वपूर्ण

चरण है।

इसके बाद 'असहयोग की राह' और 'असहयोग के बाद' का क्रम बताता है कि लेखक आंदोलन को केवल एक घटना के रूप में नहीं, बल्कि उसके प्रभाव और उसके बाद की राजनीतिक परिस्थितियों सहित देखना चाहते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में आंदोलन जितना महत्वपूर्ण होता है, आंदोलन के ठहर जाने, वापस लिए जाने या उसकी रणनीति बदलने के बाद की स्थिति भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। यहीं से किसी नेता के संगठनात्मक धैर्य और राजनीतिक परिपक्वता की परीक्षा शुरू होती है और राजेंद्र प्रसाद इस परीक्षा से गुजरते हुए दिखाई देते हैं। पुस्तक का एक उल्लेखनीय पक्ष उसके अध्यायों के शीर्षकों में निहित मानवीय संवेदना है। 'मतभेद, पर मनभेद नहीं' और उसके बाद 'जब मतभेद बने मनभेद' इन दोनों को साथ पढ़ना अत्यंत दिलचस्प है। यह केवल गांधी और राजेंद्र प्रसाद के संबंधों की कहानी नहीं हो सकती; इसके भीतर राजनीति में मतभेद और व्यक्तिगत संबंधों के बीच की महीन रेखा को समझने की कोशिश भी दिखाई देती है।

लोकतंत्र में मतभेद स्वाभाविक हैं। वास्तव में मतभेद लोकतांत्रिक जीवन की ऊर्जा हैं। समस्या तब पैदा होती है जब वैचारिक मतभेद व्यक्तिगत मनभेद में बदल जाते हैं। राजेंद्र प्रसाद के जीवन को इस दृष्टि से पढ़ना आज के राजनीतिक वातावरण में विशेष रूप से उपयोगी हो सकता है।

इसी क्रम में 'कारावास और फलागम' जैसा शीर्षक स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष और उसके परिणाम के संबंध को सामने लाता है। जेल जाना उस पीढ़ी के नेताओं के लिए केवल व्यक्तिगत यातना नहीं था; वह राजनीतिक प्रतिबद्धता का प्रमाण भी था। राजेंद्र प्रसाद के जीवन में कारावास के प्रसंग उनके सार्वजनिक जीवन की उस तपस्या को सामने लाते हैं जिसने बाद में उन्हें जनता के बीच नैतिक प्रतिष्ठा प्रदान की।

पुस्तक के मध्य में 'आपदा-प्रबंधन की मिसाल' जैसा अध्याय भी विशेष ध्यान खींचता है। यह शीर्षक बताता है कि लेखक

राजेंद्र प्रसाद के योगदान को केवल राजनीतिक आंदोलनों तक सीमित नहीं करते। जनता की विपत्ति में उसके बीच खड़े होना, राहत और पुनर्वास के काम में सक्रिय होना और संकट के समय नेतृत्व करना उनके व्यक्तित्व का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष था। इस आयाम के कारण राजेंद्र प्रसाद केवल राजनीतिक नेता नहीं, बल्कि जनसेवक के रूप में सामने आते हैं। दरअसल यहीं 'देशरत्न' की संज्ञा का अर्थ समझ में आता है।

'देशरत्न' कोई संवैधानिक पद या सरकारी अलंकरण नहीं था बल्कि यह जनता की स्वीकृति से निकला संबोधन था। जनता किसी नेता को तब अपना 'रत्न' मानती है जब उसके जीवन और कर्मों में उसे अपना प्रतिबिंब दिखाई देता है। राजेंद्र प्रसाद के लिए यह सम्मान उनके राष्ट्रपति बनने से बहुत पहले निर्मित हो चुका था। इसके बाद पुस्तक का तीसरा खंड आता है यानी 'गांधी के बाद'।

यहीं से पुस्तक का स्वर एक स्वतंत्रता सेनानी की जीवनी से बढ़कर स्वतंत्र भारत के राजनीतिक और संवैधानिक इतिहास का स्वर ग्रहण करता है। 'संविधान सभा के अध्यक्ष', 'प्रथम राष्ट्रपति' और 'राष्ट्रपति बनाम प्रधानमंत्री' ये तीन अध्याय वस्तुतः राजेंद्र प्रसाद के जीवन के उस दौर की त्रयी हैं जिसमें एक आंदोलनकारी नेता संस्थापक राष्ट्रपुरुष में बदलता है।

संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में राजेंद्र प्रसाद की भूमिका को समझना इसलिए महत्वपूर्ण है कि भारत का संविधान केवल विधि-निर्माण की प्रक्रिया का परिणाम नहीं था। वह एक ऐसे देश को लोकतांत्रिक गणराज्य में बदलने की प्रक्रिया थी जो सदियों की सामाजिक जटिलताओं, औपनिवेशिक शासन और विभाजन की त्रासदी से निकल रहा था। संविधान सभा की अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति को विविध विचारों के बीच संतुलन बनाना था। इस भूमिका में राजेंद्र प्रसाद की गरिमा और संयम उनके व्यक्तित्व की बड़ी विशेषता बनकर उभरते हैं। संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में उनकी भूमिका ऐतिहासिक रूप से स्थापित है। इसके बाद

'प्रथम राष्ट्रपति' अध्याय स्वाभाविक रूप से आता है। यहाँ पुस्तक का प्रश्न केवल यह नहीं रह जाता कि राजेंद्र प्रसाद राष्ट्रपति कैसे बने, बल्कि यह भी कि स्वतंत्र भारत के पहले राष्ट्रपति के रूप में उन्होंने उस पद की परंपरा को किस प्रकार आकार दिया। यह वह समय था जब भारत में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के संवैधानिक संबंधों की व्यावहारिक सीमाएँ भी विकसित हो रही थीं। आज संविधान के अनुच्छेदों को पढ़कर जो व्यवस्था हमें स्पष्ट दिखाई देती है, उसके व्यवहारिक संस्कार स्वतंत्र भारत के शुरुआती वर्षों में ही विकसित हुए थे।

इसीलिए पुस्तक का अंतिम अध्याय 'राष्ट्रपति बनाम प्रधानमंत्री' अत्यंत महत्वपूर्ण और संभवतः सबसे अधिक बहस पैदा करने वाला अध्याय है। राजेंद्र प्रसाद और जवाहरलाल नेहरू के बीच वैचारिक और संवैधानिक मतभेद भारतीय गणराज्य के प्रारंभिक इतिहास का जटिल अध्याय हैं। इन मतभेदों को केवल व्यक्तिगत संघर्ष की तरह देखना इतिहास को सरल बना देना होगा। दोनों नेताओं की राजनीतिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक दृष्टि, आधुनिकता की समझ और राज्य की भूमिका को लेकर अलग-अलग दृष्टिकोण थे। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के संबंधों को लेकर शुरुआती गणराज्य में कई प्रश्न व्यवहार में ही स्पष्ट हुए। इस विषय पर बाद के अध्ययनों और संस्मरणों में भी काफी चर्चा हुई है। इस अध्याय की वास्तविक महत्ता इस बात में है कि वह हमें यह सोचने को विवश करता है कि लोकतंत्र में व्यक्ति बड़ा है या संस्था? राष्ट्रपति बड़ा है या प्रधानमंत्री? निर्वाचित सरकार की जवाबदेही और राष्ट्राध्यक्ष की संवैधानिक भूमिका के बीच संतुलन कैसे कायम हो? और जब दो बड़े राष्ट्रीय व्यक्तित्वों की दृष्टियों में अंतर हो तो लोकतांत्रिक मर्यादा किस तरह बनी रहनी चाहिए?

राजेंद्र प्रसाद का महत्त्व यहाँ इसलिए बढ़ जाता है कि वे केवल राष्ट्रपति नहीं थे; वे स्वतंत्रता आंदोलन की उस पीढ़ी के प्रतिनिधि थे जिसने देश को स्वतंत्र होते देखा था और

संविधान सभा का नेतृत्व किया था। इसलिए यह कहना समीचीन होगा कि उनका राष्ट्रपति पद केवल संवैधानिक पद नहीं था, वह स्वतंत्रता आंदोलन की नैतिक विरासत और नवगठित गणराज्य की संवैधानिक व्यवस्था के बीच एक सेतु भी था। पुस्तक का शीर्षक 'देशरत्न से भारत रत्न बनने की दास्तान' इसी पूरी यात्रा का सार है। यह यात्रा केवल एक सम्मान से दूसरे सम्मान तक की यात्रा नहीं है। यह वास्तव में जननेता से राष्ट्रनेता, आंदोलनकारी से संविधान-निर्माता और संविधान सभा के अध्यक्ष से गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बनने की यात्रा है।

1962 में राजेंद्र प्रसाद को भारत रत्न से सम्मानित किया गया। यह उनके सार्वजनिक जीवन की राष्ट्रीय मान्यता थी। वे 1962 में राष्ट्रपति पद से निवृत्त हुए और 28 फरवरी 1963 को उनका निधन हुआ। लेकिन 'भारत रत्न' इस कहानी का अंतिम बिंदु नहीं है। असल में राजेंद्र प्रसाद का सबसे बड़ा सम्मान किसी पदक या उपाधि में नहीं, बल्कि उस विश्वास में था जो जनता ने उनके प्रति कायम किया था। प्रोफेसर भगवान सिंह की पुस्तक का साहित्यिक मूल्य भी यहीं दिखाई देता है। लेखक ने घटनाओं को केवल सूचनात्मक ढंग से रखने के बजाय अध्यायों के नामों के माध्यम से कथा में गति और तनाव पैदा किया है। 'गांधी के पहले', 'गांधी के साथ' और 'गांधी के बाद' की संरचना पाठक को यह समझने का अवसर देती है कि राजेंद्र प्रसाद की पहचान गांधी से मिलने के बाद बनी ज़रूर, लेकिन गांधी के साथ समाप्त नहीं हुई। बल्कि गांधी की मृत्यु के बाद उनका व्यक्तित्व एक नए प्रश्न से टकराता है कि, स्वतंत्र भारत कैसा हो और उसमें राजेंद्र प्रसाद की भूमिका क्या हो? यही प्रश्न उन्हें संविधान सभा तक ले जाता है, फिर राष्ट्रपति भवन तक और अंततः राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के संबंधों की जटिल बहस तक।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए एक और महत्वपूर्ण बात सामने आती है। राजेंद्र प्रसाद की सादगी को अक्सर उनके व्यक्तित्व की सबसे प्रमुख विशेषता मान लिया जाता है,

लेकिन केवल सादगी से उनका मूल्यांकन करना उनके साथ अन्याय होगा। उनके भीतर अद्भुत बौद्धिक क्षमता, संगठनात्मक दक्षता, राजनीतिक धैर्य और संवैधानिक विवेक भी था। वे केवल 'सादा जीवन जीने वाले राष्ट्रपति' नहीं थे; वे उस पीढ़ी के उन दुर्लभ नेताओं में थे जिन्होंने औपनिवेशिक शासन से लोकतांत्रिक गणराज्य तक की पूरी यात्रा को अपने जीवन में जिया। इस अर्थ में पुस्तक का महत्व वर्तमान समय में और बढ़ जाता है।

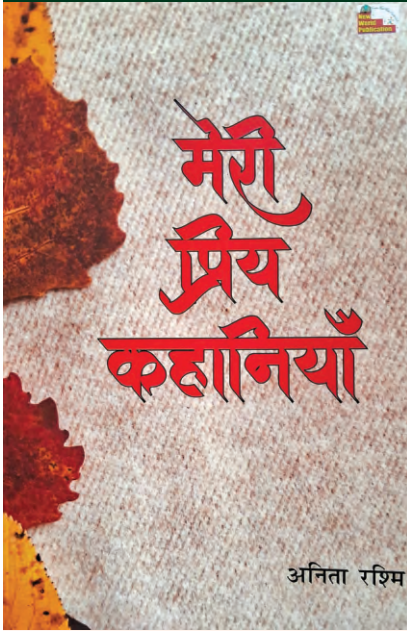
आज जब सार्वजनिक जीवन में वैचारिक असहमति अक्सर व्यक्तिगत वैमनस्य में बदल जाती है, जब संस्थाओं और व्यक्तियों के बीच संबंधों को लेकर बहस लगातार चलती रहती है और जब राजनीतिक जीवन में नैतिकता तथा सार्वजनिक मर्यादा पर प्रश्न उठते हैं, तब राजेंद्र प्रसाद का जीवन हमें एक अलग राजनीतिक संस्कार की याद दिलाता है। उनका जीवन बताता है कि असहमति लोकतंत्र की कमजोरी नहीं है। असहमति को किस तरह व्यक्त किया जाता है, यही लोकतांत्रिक संस्कार की असली परीक्षा है।

यह भी पुस्तक की एक विशेष उपलब्धि है कि वह राजेंद्र प्रसाद को केवल श्रद्धा के पात्र के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय उनके जीवन में आए संघर्षों और मतभेदों को भी सामने लाने की संभावना पैदा करती है। खासकर 'मतभेद, पर मनभेद नहीं' से 'जब मतभेद बने मनभेद' तक की यात्रा इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। हालाँकि ऐसी पुस्तक पढ़ते समय एक सावधानी भी आवश्यक है। राजेंद्र प्रसाद और नेहरू के संबंधों से जुड़े अनेक प्रसंग संस्मरणों, आत्मकथाओं और बाद के लेखों में अलग-अलग रूपों में मिलते हैं। इसलिए पाठक को भावनात्मक या राजनीतिक व्याख्या के साथ-साथ प्राथमिक स्रोतों और प्रमाणित ऐतिहासिक दस्तावेजों को भी ध्यान में रखना चाहिए। यही वह स्थान है जहाँ पुस्तक को केवल 'राजेंद्र प्रसाद के पक्ष' में लिखी गई कथा के बजाय इतिहास की बहस में एक हस्तक्षेप के रूप में पढ़ना अधिक उपयोगी होगा।

अंततः भगवान सिंह की यह पुस्तक हमें

राजेंद्र प्रसाद की एक ऐसी छवि से परिचित कराती है जिसे हमारी स्मृति ने धीरे-धीरे छोटा कर दिया है। पाठ्यपुस्तकों में वे 'भारत के प्रथम राष्ट्रपति' हैं, लेकिन इस पुस्तक में वे उससे कहीं अधिक बड़े दिखाई देते हैं, ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसने देश की गुलामी देखी, स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लिया, गांधी के साथ संघर्ष किया, जेल गया, जनता की विपत्तियों में काम किया, संविधान सभा की अध्यक्षता की और फिर प्रथम राष्ट्रपति के रूप में उस नवजात गणराज्य की संवैधानिक यात्रा का हिस्सा बना।

देशरत्न से भारत रत्न तक की यह यात्रा वस्तुतः सम्मान की नहीं, विश्वास की यात्रा है। जनता ने उन्हें देशरत्न बनाया और राष्ट्र ने भारत रत्न से सम्मानित किया; लेकिन इन दोनों के बीच जो लंबा रास्ता है, वह त्याग, संघर्ष, विचार, असहमति, आत्मसंयम और सार्वजनिक जीवन की मर्यादा से निर्मित है। भगवान सिंह की पुस्तक उसी रास्ते को सामने लाने का प्रयास करती है। इसलिए यह पुस्तक केवल डॉ. राजेंद्र प्रसाद की जीवनी नहीं है। यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से गणराज्य तक की संक्रमण-कथा, गांधीवादी राजनीति की अंतर्धाराओं की कथा, संविधान निर्माण की कथा और सबसे बढ़कर एक ऐसे राजनीतिक संस्कार की कथा है जिसमें पद से अधिक व्यक्ति का चरित्र महत्वपूर्ण था। आज जब राजेंद्र प्रसाद की स्मृति को फिर से पढ़ने की आवश्यकता महसूस होती है, तब सस्ता साहित्य मंडल से प्रकाशित भगवान सिंह की यह कृति एक उपयोगी और विचारोत्तेजक पुस्तक के रूप में सामने आती है। इसकी विषय-संरचना विशेष रूप से इसकी ताकत है, क्योंकि लेखक ने जीवन को कालक्रम में बाँटने के बजाय 'गांधी के पहले', 'गांधी के साथ' और 'गांधी के बाद' की वैचारिक यात्रा में रूपांतरित किया है। और शायद इसी कारण पुस्तक का सबसे सार्थक प्रश्न यह नहीं है कि राजेंद्र प्रसाद भारत रत्न क्यों बने, बल्कि यह है कि वे पहले जनता के हृदय में 'देशरत्न' कैसे बने।



(कहानी संग्रह)

मेरी प्रिय कहानियाँ

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी

लेखक : अनिता रश्मि

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

स्व. विजय कुमार तिवारी
टाटा अरियाना हाऊसिंग, टावर-2,
फ्लैट-201, पोस्ट-घटकिया,
भुवनेश्वर -751029 ऑडिशा
मोबाइल- 9102939190

कहानियों को लेकर दुनिया भर में खूब कहा-सुना जाता है और खूब चर्चाएँ होती हैं। इसे साहित्य की प्रिय और ज़रूरी विधा माना गया है। यह एक ऐसी रचनात्मक प्रक्रिया है जिसमें भाव-दृश्य बुने जाते हैं, जो घटनाओं, परिस्थितियों के निष्कर्षों को व्यक्त करते हैं, जिसमें पात्र, वहाँ का परिदृश्य और उनके संघर्ष शामिल होते हैं। अनिता रश्मि की कहानियों में भी उन भाव-संवेदनाओं को अनुभव और रेखांकित किया जा सकता है।

सचमुच ये अच्छी और बेजोड़ कहानियाँ हैं, प्रभाव डालने वाली, करुणा, वेदना, संवेदना से भरी हुई और मन को झकझोरने वाली हैं। 'यह जो जिंदगी है' कैंसर पीड़ित व्यक्ति, उसकी प्रेमिका से बनी पत्नी और बच्चों के जीवन की कहानी है जहाँ अथाह पीड़ा है, वीभत्स दृश्य हैं, जीने की ललक है, आशा है, निराशा है और मृत्यु की अवश्यंभावी परिस्थितियाँ हैं। सारे पात्र अपनी जगह सही हैं, उनकी बातचीत, उनके बीच के संवाद पाठकों को संवेदनाओं से भर देने वाले हैं। वे सचमुच के प्रेमी हैं, एक-दूसरे के लिए जीना चाहते हैं, एक-दूसरे की चिन्ता करते हैं और एक-दूसरे के लिए सब कुछ करना चाहते हैं।

अनिता रश्मि कथा बुनने में परिपक्व हैं, उनकी शब्दावली, भाव-चित्रण और शैली मानो उन्होंने सचमुच के दृश्यों को चित्रित किया है। सारे भाव, दृश्य, बिंब व संवाद बाँधते हैं, कहानी अपने तरह से संदेश देती है, जिंदगी को परिभाषित करती है और मार्मिकता के साथ करुणा, प्रेम की जीवन्त मिसाल चित्रित करती है। उनके पास अनेक भाषाओं के शब्द हैं जिनका प्रयोग उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। हिन्दी के साथ-साथ संथाली, भोजपुरी व मगही भाषाओं का खुलकर उपयोग करती हैं जिससे उनकी कहानियाँ आंचलिकता की अनुभूतियाँ समेटे हुए दिखती हैं। शब्दों को जानना और उनका प्रयोग करना किसी भी लेखक के लिए महत्वपूर्ण है। इससे व्यक्तित्व निखरता है और लेखन प्रभावशाली बन पड़ता है।

'उजड़ते नीड़' ऐसी ही भाव-प्रधान मार्मिक कहानी है जिसमें संथाली व भोजपुरी के शब्द कहानी को जीवन्त बना रहे हैं। उन्होंने इस कथा को बुनने में प्रेमचंद को याद किया है, बल्कि दृश्यों को चित्रित करने में उनकी दक्षता समझी जा सकती है। यह कहानी कृषि सम्बन्धित समस्याओं के साथ-साथ किसानों के जीवन की नाना त्रासदियों से परिचित करवाती है। स्त्री होकर भी उन्होंने खेत-खलिहान के वास्तविक सरोकारों को उभारा है मानो उन्हें खूब गहरा अनुभव है। चुंडा व सुखिया, दोनों के जीवन की यात्रा, दोनों परिवारों की बदहाली, बरसात न होने से खेती के प्रभावित होने की समस्या, सरकारी ऋण का चुकता न कर पाना, त्रस्त होकर शराब पीना, आत्महत्या की कोशिश करना और अंत में हार कर जीविका की तलाश में शहर की ओर प्रस्थान करना जैसे सारे प्रसंग चकित-चमत्कृत करने वाले हैं। दोनों मित्रों द्वारा अपने भीतर गाँव को जीवित रखने का संकल्प भावुक करता है और इससे कहानीकार की गहन दृष्टि का आभास मिलता है।

वैसे तो सभी रचनाकार अपने आसपास देखी-सुनी स्थितियों को ही आधार बनाते हैं, परन्तु अपने कथ्य-कथानक को लेकर अनिता रश्मि तनिक अधिक डूबती हैं और समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों से विह्वल होती हैं। 'चिड़िया, पतंग और अंकु' ऐसी ही मार्मिक कहानी है जिसकी सच्चाई पूरे समाज को झकझोरने वाली है। माँ और अंकु दोनों की भाव-संवेदनाओं के सहारे कहानी बुनने का यह नया प्रयोग लगता है। हालाँकि यह कोई नया विषय नहीं है, ऐसी घटनाएँ हमारे समाज में होती रहती हैं। परन्तु महत्वपूर्ण है लेखिका की दृष्टि, पात्रों के मनोजगत् की अभिव्यक्ति और यथार्थ दृश्यों का विस्तार। उनकी कहानियाँ प्रश्न खड़ा करती हैं और समाधान तलाशती हैं। पीड़िता का चरित्र, उसका पतंग नहीं, चिड़िया होने का जोश, उसके साथ हुआ अनर्थ और फिर भयानक चुप्पी, लेखिका ने उसके जीवन के हर प्रसंग को खुलकर लिखा है। गोलू का पतंग प्रसंग अंकु के चिंतन को दिशा देता है और कोई सकारात्मक सुगबुगाहट होती है। ऐसी कहानियाँ बेचैन करती हैं और हमारे समाज की व्यवस्था पर प्रश्न उठाती हैं।

'जलकुंभी' कहानी जाति-धर्म के नाम पर वीभत्स दृश्य दिखाती है। विजातीय प्रेम को लोग

स्वीकार नहीं करते और दूसरों के जीवन को नष्ट कर देते हैं। यह कहानी समाज, पुलिस, प्रशासन, स्वास्थ्य विभाग सबकी पोल खोलती है और डराती है। उन्हें अपने समाज की गहरी समझ और पकड़ है। वह पात्रों की भाव-संवेदनाओं को समझती हैं, उनके साथ उड़ान भरती हैं और संदेश प्रधान कहानी रचती हैं।

उन्होंने 'सिसकियाँ, फूल, किलकारी' शीर्षक से कोरोना-काल की त्रासदी की मार्मिक व प्रयोग-धर्मी कथा-यात्रा पूरी की है। वह दौर हम सबने देखा है। पूरी दुनिया ने झेला है और हर घर में बेरहम मौत ने तांडव किया है। शुचि की सोच अच्छी है- 'मेरे गुलाब बच गए लोगों में उम्मीद भरेंगे। उन्हें जीने का हौसला देंगे। छोटी सही, पर मुस्कराहट की वजह बनेंगे।' कहानी में वर्णित सारे घटनाक्रम सही हैं। सर्वत्र उदासी पसरी हुई है और सभी भय में जी रहे हैं। ऐसे में शुचि निर्णय लेती है- 'लोगों को सुकून, हिम्मत देने की कोशिश तो कर ही सकती हूँ, उम्मीद व धैर्य तो थमा ही सकती हूँ।' वह क्लिक कर रखे गए फूलों को छोटे संदेशों के साथ पोस्ट करती है। बड़ी सधी हुई, सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ मिल रही हैं और जीवन की आस बँधने लगी है। सुरेश जी ने बेटे रानू को खोया है। बहू ने पुत्र को जन्म दिया तो उन्होंने लिखा- 'मेरा रानू वापस मेरी गोद में।'

'सरई के फूल' उनकी कुछ गिनी-चुनी कहानियों में से एक है जिसका विस्तार प्रभावित करने वाला है। यह आदिवासी जीवन में व्याप्त संघर्ष, उनका निश्छल विश्वास, वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ की अकूत संपदा के दोहन और उनके हर तरह के शोषण की मार्मिक कहानी है। इस कहानी में प्रकृति का सौन्दर्य है, मन में जागता मौन प्रेम है, समर्पण है, जबरदस्त संवाद हैं और जीवन के सारे उतार-चढ़ाव हैं। कहानीकार की अद्भुत चिन्तन शैली है। वह प्रेम को बिना कुछ कहे व्यक्त करना चाहती हैं। संकेतों में, हाव-भाव में, संवाद में उनका प्रेम मुखरित होता है न कि प्रेमी एक-दूसरे से अपने प्रेम का ढिंढोरा पीटते हैं। उन्होंने जोन्हा जलप्रपात के पूरे क्षेत्र को करीब से देखा है और वहाँ के प्राकृतिक जन-

जीवन, उनके तौर-तरीके, रीति-रिवाज और सहृदयता की भावनाओं से खूब परिचित हैं। विशेष रूप से झारखण्ड राज्य बन जाने के बाद हुए हस्तक्षेप और शोषण से कहानीकार प्रभावित, चिन्तित हैं और उनकी पूरी संवेदना इसमें दिखाई दे रही है। अनिता रश्मि आसपास की यथार्थ घटनाओं से अपना सरोकार जोड़ती हैं, प्राचीन कथाओं से सम्बद्ध करती हैं और कहन शैली में सबको सुना देना चाहती हैं। उनकी कहानियों में स्त्री है, संघर्ष करती हुई, दर्द सहती हुई, व्यवस्था से लड़ती हुई और जीतती हुई।

जिस पुरुष को वह अपना सहारा समझती है, विश्वास करती है, जिससे वह प्रेम करती है, वही उसे धोखा देता है और मँझधार में छोड़ देता है। 'बहुत लंबी लड़ाई' सुरभि नामक लड़की की ऐसी ही कहानी है। पुरुषों की ऐसी मानसिकता पर यह कहानी प्रश्न उठाती है और छली गई स्त्री की अथाह पीड़ा, संघर्ष आदि के दृश्य दिखाती है। अपने-पराये, समाज और सारी व्यवस्थाओं का चेहरा उभरता है। जीवन का मनोविज्ञान भी। ऐसे में केवल स्त्रियाँ ही नहीं टूटतीं, पूरा समाज प्रभावित होता है। सुखद है, लेखिका हारना नहीं चाहती, कोई न कोई राह निकालना चाहती है और चल पड़ती है।

'सहिया नीलकंठ' कहानी में जल, जंगल, जमीन की चिन्ता करने वाले दो मित्र कैसे एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं, बल्कि दुश्मन बन जाते हैं और धोखा देते हैं। आदिवासी जन-जीवन को समेटे, बैजनाथ धाम, बासुकीनाथ धाम के आस-पास घटी यह कहानी पूरी भाव-संवेदनाओं के साथ बुनी गई है। वहाँ की बोली, भाषा, भाव-भंगिमा, आदर्श, भक्ति, उम्मीद-नाउम्मीद आदि सब कुछ जुड़ा हुआ है।

स्त्री का प्रेम जीवन में उजास लाता है। उसका पहनावा, सजना-सँवरना पुरुषों के जीवन में ज्योति जगा देता है। कहानीकार की लेखनी इसमें मौन व सुखद प्रेम लिखती है। वह स्थानीय बोली भाषा के गीत जोड़ती हैं और हर एक प्रसंग को जीवन्त करती हैं। यह उनका अपना कोई विस्मृत मौन प्रेम भाव है

जो बार-बार इन कहानियों के पात्र दिखा देते हैं। उनका सधा हुआ अंदाज़ पढ़ने व समझने योग्य है।

'गौरैया' किसी सम्भ्रान्त तन्वंगी, किंचित डरी-सहमी और उत्सुक स्त्री रीना की कहानी है जो आधुनिक युग के संसाधन, मोबाइल से खेलना सीख रही है। उसमें गाँव वाले संस्कार अभी भी हैं। पति और बेटा सब अपनी दुनिया में व्यस्त हैं। मोबाइल, कंप्यूटर या हर आधुनिक उपकरण को धीरे-धीरे समझना-सीखना है और उनके खतरों से बचने के रास्ते खोजना है। अनिता रश्मि ने बड़ा सामयिक कथानक चुना है और शीर्षक गौरैया भी जबरदस्त बिंब की तरह उभरा है। कहानी का अपना संदेश है और लेखिका ने साहस की राह पकड़ी है।

आज के समय की सच्चाई है। ऐसे दृश्य बनते ही हैं और आए दिन महिलाओं को पाला पड़ता है। इस कथा की नायिका सुरक्षित जोन में रहते हुए बहुत कुछ आजमाना और लुप्त उठाना चाहती है। ऐसे मनोभाव में उलझना और बचना कहानी को जबरदस्त तरीके से पठनीय बनाता है।

अगली कहानी 'गान्धी बाबा का चेला' स्वतंत्रता आंदोलन के समय का टाना भगतों के संघर्ष, त्याग-तपस्या और उनके अडिग विचारों से जुड़ी है। इतिहास के पन्नों को खोलना और उनके आधार पर कहानी बुनना सहज नहीं होता। अनिता रश्मि ने सफल प्रयास किया है और आदिवासी क्षेत्र के उराँव और उनमें से निकले टाना भगतों के शौर्य को रेखांकित किया है। टाना भगत पहले ही गांधीवादी हो चुके थे। जतरा उराँव के चरित्र को उजागर करती और प्रेरित करती कहानी तत्कालीन ऐतिहासिक दस्तावेज की तरह है। उनके विरोध, संघर्ष और हुए धोखे का चित्रण झकझोरने वाला है। उन्होंने गांधी जी के सिद्धान्तों का अनुसरण किया, परन्तु उन्हें देश के स्वतंत्र होने या अलग झारखण्ड राज्य बन जाने पर भी कोई लाभ व सम्मान नहीं मिला जबकि उन्होंने सदैव अहिंसा का मार्ग अपनाया।

'चश्मेवाली दो गहरी आँखें' एक ऐसी

ममता से भरी अम्मा की कहानी है जो लावारिस बच्चों को आश्रय देती हैं। उनके पालन-पोषण की व्यवस्था करती हैं, उन्हें पढ़ा-लिखाकर योग्य नागरिक बनाती हैं। गोपाल उनकी ममता की छाँव में बड़ा हुआ है और अम्मा के बाद ऐसे बच्चों के आँसू पोंछ रहा है। यह कथा मार्मिक ही नहीं, बड़ा संदेश देती है और पाठको को करुणा-प्रेम का पाठ पढ़ाती है।

'विरोधाभास' दो सहेलियों के बीच प्रेम की गहन पड़ताल करती कहानी है। हर किसी के जीवन में बहुत कुछ होते हुए भी कोई न कोई कोना खाली रहता है। कोई कसक, कोई चाहत कुलबुलाती रहती है। इसकी आपूर्ति के लिए लोग उड़ान भरते हैं, कला, साहित्य, नृत्य आदि का सहारा लेते हैं और भीतर के मनोभावों को दुनिया के सामने प्रस्तुत करते हैं। यह कहानी अन्तर्द्वन्द्व व चाहत के बीच कोई सामंजस्य बैठाती है और संदेश देती है कि कभी-कभी आदमी खुद को भी नहीं पहचानता है। वह अपनी कहानियों में रीति-रिवाजों को जोड़ती हैं और जीवन की सच्चाइयों को सामने लाती हैं। स्त्री जीवन को लेकर उनका यह भाव भी समझने योग्य है, लिखती हैं- 'वैसे इतने व्रत स्त्रियों के मनोरंजन व मन बाँधने के लिए बनाए गए होंगे, भटकन से रोकने के लिए।' वह मन की चाहत के यथार्थ को स्वीकार करती हैं और अपने तरीके से उड़ान भरती हैं। कोई सहमत हो या नहीं, स्त्री हो या पुरुष सबके जीवन में ऐसे भाव हो सकते हैं। अनिता रश्मि उस दस्तक की प्रक्रिया बताती हैं- 'वह कैसे धीरे-धीरे बिन पदचाप के मन के द्वार से भीतर घुसता जा रहा है, पता भी नहीं चला।'

प्यार में उम्र, जाति-कुजाति कुछ भी दिखाई नहीं देता। वह उम्रदराज प्रेम की मर्यादा चित्रित करती हैं- 'वह प्रार्थनाओं में माँगता है नाचीज को। वह भी देह से परे। तू तो जानती ही है, स्त्रियाँ देहगान में, देहदान में नहीं, रुह में बसती हैं। रुहानी प्रेम में विश्वास करती हैं।' उनके इस मनोभाव को भी समझना चाहिए- 'स्त्रियों की पूरी जिंदगी हिसाब-किताब में ही बीत जाती है। कभी तो बिन

हिसाब के बीते।' उनका निष्कर्ष देखिए- 'विवाहित जोड़े प्रेम कहाँ करते हैं। वे बस जिम्मेदारी और कर्तव्य निभाते हैं। पूरी जिंदगी समझौतों में निकल जाती है। अपवाद को छोड़ दें तो।' वह पूछती हैं- 'तमाम व्यस्तताएँ, पूजा-पाठ की सात्विकता दिलों को मिलने से रोक पाती है क्या?' इस तरह यह कहानी प्रेम को लेकर स्त्रियों के मनोभावों का यथार्थ विश्लेषण करती है।

'फागुनी' मार्मिक कहानी है। नायिका फागुनी के भीतर एक निश्छल बच्चा छिपा हुआ है। वह प्रकृति को, नदी, जंगल और वहाँ के जीवन को खूब समझती है। जंगल में मिले घायल व्यक्ति को घर लाकर वह सेवा-श्रुषा करती है। स्थानीय स्तर पर जो इलाज संभव है, करती है। कहानी में फागुनी के जीवन की गाथा छिपी हुई है फिर भी वह पीछे नहीं हटती और अपना कर्म करती है। यहाँ भी अनिता रश्मि पौराणिक प्रसंग उद्धृत करती हैं और कहानी के संदर्भ को रेखांकित करती हैं। घायल व्यक्ति अपने बारे में कुछ नहीं बताता और किसी दिन 'फागुनी पुत्री-पिता को छोड़कर गायब हो जाता है। डायन कहकर स्त्रियों को पीड़ित करना और त्याग देना उस समाज की परम्परा है। जिसका शिकार स्त्रियों को होना पड़ता है। फागुनी निराश हुए बिना संघर्ष करती है और हर बार खड़ी होती है। दुबारा घायल व्यक्ति 'परास' लौटता है। उसके पीछे पुलिस लगी हुई है क्योंकि उसने तीन-तीन हत्याएँ की हैं। फागुनी उसे पुलिस के हाथों सौंपना नहीं चाहती, परन्तु मन ही मन कहती है- 'ई कारज ठीक नहीं किया परास, आपन हाथ खून से रंग लिया।' और वह पुलिस के पीछे दौड़ती है। अनिता रश्मि ऐसी कहानियों के माध्यम से बहुत कुछ संदेश देती हैं और फागुनी जैसी नायिकाओं का चरित्र चित्रण करती हैं।

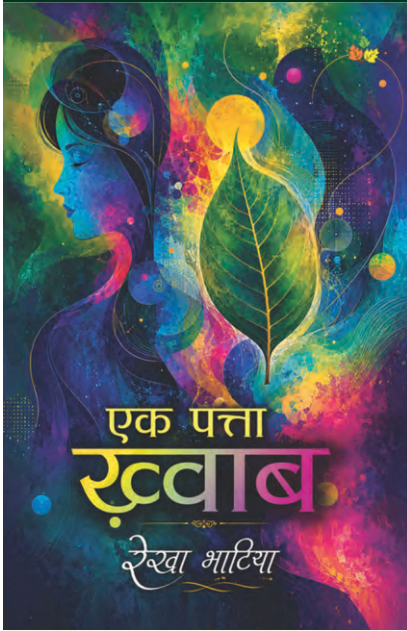
'महादान' तीन मित्रों से जुड़ी भावुक करने वाली कथा है। भयंकर मोटरसाइकिल दुर्घटना के बावजूद वे जीवित हैं। तीनों के किसी न किसी आर्गन को ट्रांसप्लांट किया गया है। उन्हें फौज से सेवामुक्त उस व्यक्ति से मिलना है जिसके पुत्र शशांक के आर्गन से तीनों की

जान बची है। इस मिलन प्रसंग को लेखिका ने भावपूर्ण तरीके से विस्तार दिया है जिसमें भय, संशय, समर्पण आदि सब कुछ है। सुखद संयोग है कि उसी दिन शशांक का जन्मदिन भी है जिसे सब मिलकर मनाते हैं। कहानी का संदेश यह भी है कि स्त्रियाँ बहुत मजबूत होती हैं। शशांक की माँ ने कहा था- 'हम कर्ण नहीं हैं पर कुछ जीवन बचाना चाहती हूँ और बेटे को आराम... वह जीवित रहेगा। हमारे पास न सही, कहीं और सही।'

ऐसे भाव-विचारों की आज बहुत जरूरत है ताकि लोगों का जीवन बचाया जा सके और जीवित माता-पिता को संबल दिया जा सके। 'कितनी उपेक्षा' 12-13 साल की अमृता की भावपूर्ण कहानी है। अमृता अकेलापन महसूस करती है, नौकर की बदनीयत से बचना चाहती है। वह माँ से अपनी बातें खुलकर बता भी नहीं पाती। उसके संभ्रान्त पिता व्यवसाय में व्यस्त हैं, माँ क्लब, फैशन, पार्टी आदि में सुकून खोजती है और अकेली अमृता मम्मी के स्नेह-प्रेम की तलाश में अपना बचपन खो रही है। खन्ना साहब ने अमृता का दर्द समझ लिया और उन्होंने कहा- 'आपको अपनी बेटी का ध्यान रखना चाहिए। उसे आपकी जरूरत है।' इस तरह इस कहानी में अनिता रश्मि ने वैचारिक बदलाव को लेकर बेहतरीन मोड़ दिया है और सब कुछ अनुकूल, सुखद बन गया है।

इस तरह देखा जाए तो उनकी कहानियाँ व्यापक संदेश देती हैं, आदिवासी जन-जीवन की स्थितियों-परिस्थितियों को विस्तार से चित्रित करती हैं, आपसी प्रेम और नैतिकता की व्याख्या करती हैं, पात्रों के संघर्ष को दिखाती हैं। वह अपने पात्रों के मनोविज्ञान को खूब समझती हैं और जीवन की सच्चाई सामने लाती हैं। कहीं-कहीं भटकाव या अनावश्यक विस्तार या जबरदस्ती स्थानीय बोली-भाषा के शब्दों का अधिक प्रयोग प्रवाह को बाधित करता सा लगता है। वैसे इसे तो उनके भाव-चित्रण की खूबसूरती भी मानी जानी चाहिए और साथ ही उनके भाषा ज्ञान का सामर्थ्य भी।

केंद्र में पुस्तक



(कविता संग्रह)

एक पत्ता ख़्वाब

समीक्षक : घनश्याम मैथिल 'अमृत',

सुधा आदेश, वेदप्रकाश अमिताभ

लेखक : रेखा भाटिया

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

घनश्याम मैथिल 'अमृत'

'प्रणाम', जी/ एल -434,

अयोध्या नगर, भोपाल, मप्र 462041

मोबाइल- 9589251250

सुधा आदेश

306, वाइसराय स्लैंडर अपार्टमेंट,

1st क्रॉस रोड, कासावानाहल्ली,

बंगलुरु, कर्नाटक -560035

मोबाइल- 9415665941

ईमेल- sudhaadesh54@rediffmail.com

वेदप्रकाश अमिताभ

डी-131, रमेश विहार,

अलीगढ़, 202001, उप्र

मोबाइल- 9837004113

कविताओं का मोहक गुलदस्ता

घनश्याम मैथिल 'अमृत'

मेरे हाथों में इस समय है 'एक पत्ता ख़्वाब' कविता संग्रह जिसकी रचनाकार हैं रेखा भाटिया इस संग्रह पर अपनी बात रखने के पूर्व मैं कहना चाहूँगा कि साहित्य की किसी भी विधा में लिखित कृति पर अपनी समीक्षा आलोचना अथवा टिप्पणी लिखते समय क्या समीक्षित कृति के रचनाकार से हमारा व्यक्तिगत परिचय होना अथवा न होना क्या समीक्षक की समीक्षा पर कोई प्रभाव डालता है, यानी रचनाकार का क्रद, पद नाम हमारी निरपेक्ष समीक्षा के मार्ग में सहायक अथवा बाधक होता है।

मेरा मानना है कि निश्चित इस बात का प्रभाव पड़ता है, यदि समीक्षित कृति पर रचनाकार का परिचय भी न देखने को मिले तो और भी बेहतर क्योंकि यदि कोई अपरिचित रचनाकार की कृति हमें मिलती है, तो सर्वप्रथम प्रायः समीक्षक उस रचनाकार की रचनाओं में उतरने से पूर्व रचनाकार का परिचय पढ़कर यह जानना चाहता है कि रचनाकार कौन है कहाँ रहता है क्या करता है, शायद इसे सहज जिज्ञासा मात्र कहें या कुछ और ख़ैर.. जो भी हो समीक्षित काव्य कृति को पढ़ने से पूर्व मैंने इस पुस्तक की रचनाकार रेखा भाटिया का परिचय पढ़ा क्योंकि उनकी कविताओं के माध्यम से मेरा उनसे यह प्रथम परिचय था।

समीक्षित काव्य कृति के 238 पृष्ठों में उनकी अपने समय को रेखांकित करती कुल 98 महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। उनकी ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता की प्रतिनिधि कविताएँ हैं, उनकी इन कविताओं के विषय व्यापक हैं, इन कविताओं के केंद्र में स्त्री विमर्श हैं, भौतिकतावादी जीवन की अंधी अंतहीन दौड़ से उपजे स्वार्थी जीवन के बढ़ते सामाजिक संकट हैं, हमारा घर परिवार और बिखरते नाते-रिश्ते हैं, सुदूर सात समंदर पार अमेरिका में रहकर भी अपने देश और समाज की गहरी चिंता है।

उनकी कविता में संवेदना का स्वर शब्दों के माध्यम से मुखर होकर कविता के रूप में पाठकों के सामने आता है। मुक्त छंद में लिखी गई यह कविताएँ भावना प्रधान हैं, जो सीधे पाठक के हृदय को खटखटाती हैं। सहज सरल यानी आम बोल चाल की भाषा में विविध गंभीर सामाजिक विषयों को बिना किसी जटिल शास्त्रीय नियम में बाँधने के बजाय, सीधे पाठक के हृदय तक पहुँचाने का काम रचनाकार ने इन कविताओं के माध्यम से किया है। उनकी समकालीन मुक्त छंद कविताओं में स्त्री विमर्श केवल उत्पीड़न का रोना नहीं है, बल्कि वह अपनी अस्मिता, अधिकार और आत्मसम्मान की पुनर्परिभाषा भी रचती हैं।

उनकी कविताओं में स्त्री घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अपनी इच्छाओं और स्वतंत्र अस्तित्व पर सीधे आँखों में आँखें डाल कर अपनी बात करती है। आज भी इक्कीसवीं सदी के प्रगतिशील समाज में स्त्री के साथ क्या हो रहा हो क्यों हो रहा है, उसे वे सिर्फ अँगुली दिखा कर रेखांकित ही नहीं करतीं बल्कि उसका क्या और कैसे इसका उपचार किया जाए वह भी बताती है।

उनकी इन कविताओं में उतरने से पूर्व पुस्तक के आरम्भ में उनकी 'अपनी बात' को ध्यान से पढ़ना जरूरी है, इसमें वे लिखती हैं - 'जीवन में घटित किसी घटना का कारण जो भी हो चाहे

प्रेम हो रिश्ते हो सामाजिक बदलाव हो समय या प्रकृति की कोई विशेष परिस्थिति या देश विश्व की समस्याएँ हों, मैं अपने भीतर एक हलचल महसूस करती हूँ। सिर्फ दर्शक बनकर उस घटना का साक्षी बनने से मेरा मन इंकार करता है, वह अपनी तटस्थता तोड़ता है उस अनुभव को व्यक्त करने के लिए मेरे मन लालायित रहता है, इस प्रक्रिया में प्रकृति का सौंदर्य और जीवन का सौंदर्य मेरा भरपूर सहयोग करते हैं।' इसके साथ ही वे आगे लिखती हैं- लेखन मेरे लिए मात्र दुनिया के सामाजिक सत्य को अव्यक्त करने का साधन नहीं है और ना ही वह अनुभव को व्यक्त करने का दस्तावेज है लेखन मेरे लिए अपने भीतर के सत्य को बचाए रखने का प्रयास है।'

उन्होंने इस संग्रह की कविताओं को सात शीर्षकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है 'मैं और मेरा मन' प्रथम शीर्षक है जिसमें उनकी सत्रह कविताएँ हैं जो आज के समय की स्त्री विमर्श, समसामयिक देश और दुनिया की परिस्थितियों पर केंद्रित हैं, उनकी कविताओं में एक बेचैनी है बदलाव की छटपटाहट है।

'एक पत्ता ख़्वाब' जो इस कृति की शीर्षक कविता है मैं वे पूरे जीवन की यात्रा को एक पेड़ के पत्ते के जीवन को माध्यम बना कर परिभाषित करती हैं - 'मन के झरोखों से झाँका फिर से / एक पत्ता ख़्वाब का गिरा शाखा से / जीवन के पेड़ पर लगे थे कई ख़्वाब.. / जीवन के इस खेल में कभी होती जीत, कभी हार से हुए हताश और दौड़ पड़े / हार को जीत में बदलने / मानो जीवन एक जुआ है / ताश के पत्तों का महल / झोंकों से बिखरे फिर बन होता खड़ा।'

'तुम रच लो इतिहास' मुझे संग्रह की बड़ी प्रभावी कविता लगी आप इसे स्त्री विमर्श की प्रतिनिधि कविता कह सकते हैं कैसे वे इस पुरुष प्रधान समाज को ललकारती हैं वे पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों का प्रतिकार करती हैं और सदियों से कैसे स्त्री को समाज ने सताया और उससे दोयम दर्जे का व्यवहार किया उसपर अपनी बात रखती हैं कविता का एक अंश देखें- 'सदियों से रीतियों और प्रथाओं की / जंग लगी बेड़ियाँ / मेरे पाँव में जकड़ी हैं /

उनसे जब मुक्त कर पाओ मुझे / तब मुझसे बात करना / हे पुरुषवादी दरवेश !!

इसके साथ ही मैं छोड़ना चाहता हूँ वचन, मैं इंसान हूँ, जीवन से डर, मुक्तिबोध, एक लेखक की दृष्टि से, प्रवासी, आंशिक विराम, टीनएज के दिनों में, आंशिक विराम और साँप सीढ़ी कविताएँ भी पाठक के हृदय को झकझोरती हैं उन्हें चिंतन का नया धरातल नई जमीन देती हैं।

'मेरी आधी आबादी' शीर्षक में भी उनकी 17 कविताएँ संग्रहित हैं, अब जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है मेरी आधी आबादी यानी यहाँ भी उनकी कविताओं के मूल में स्त्री विमर्श केंद्र में है जैसे 'नारीवाद पुरुषवाद' कविता का एक अंश देखें - 'हाँ सच सुना है इस युग में / समय बदला है बदली है धारणाएँ / रुकी नदी ने भरा है उफान / नारियाँ जीने लगी हैं / अपना जीवन अपने तरीकों से / अपनी शर्तों और मर्जों से / नहीं करती हैं अब परवाह वे।'

'हाईवे' कविता प्रतीक है नारी के प्रगतिशील क्रदमों उसकी तेज़ रफ़्तार ज़िंदगी उसके स्वाभिमान और समाज की मुख्य धारा में हिस्सेदारी की और साथ ही अपनी ज़िम्मेवारी की।

'आने वाला कल' शीर्षक कविता में वे इस परिवर्तन और अपने स्वाभिमान व आत्मविश्वास को यूँ रेखांकित करती हैं वे लिखती हैं - 'अब हरित है महत्वाकांक्षाएँ धरती पर / लौट कर आई है स्त्रियाँ धरती पर / उतार फेंके हैं पंख उन्होंने / उतार फेंका है बोझ / जी रही हैं मजबूती से अपनी शर्तों पर / दे रही हैं सुखद संदेश आने वाली पीढ़ी को / न बीता कल था स्त्रियों का न आने वाला कल होगा।'

आदमी के दोहरे चरित्र को लेकर वे अपनी वेदना को याचना के रूप में नहीं बल्कि संघर्ष की मुद्रा में मुट्ठी तानकर ललकारते हुए लिखती हैं- 'लैंगिक समानता सशक्तिकरण उनके प्रिय विषय हैं / उनकी कविताओं कहानियों में नारीवाद का अर्थ मानो एक प्रचंड झरना है / जो बहा ले जाना चाहता है / रूढ़िवादिता की समस्त सामाजिक सांस्कृतिक / धार्मिक राजनीतिक और

आर्थिक व्यवस्थाओं।' इसी तरह 'बेबस' कविता शीर्षक में वे नारी के साथ क्रदम दर क्रदम होने वाले भेदभाव को कुछ यूँ अभिव्यक्ति देती हैं- 'उसे उलाहना देकर / धकेल दिया जाता नीचे / तुच्छ हो तुम / यही खेला चलता रहता / वह मेहनत से बाज न आती / जैसे-तैसे वह उठ खड़ी हो जाती।'

'उसकी क्रिस्मत' कविता में वह नारी जन्म को, कैसे पूरे जीवन भर किसी पुरुष की छाँव में रहने की विवशता और व्यवस्था बना रखी है के बारे में लिखती है- 'हर औरत क्रिस्मत लिखा कर लाती है / एक भाई एक पिता एक पति / एक बेटा एक दामाद / कई पुरुष है क्रिस्मत में। इसी तरह 'बदचलन' कविता में कैसे चरित्र पर लाँछन केवल स्त्रियों के लगाया जाता है वह हमेशा संदिग्ध मानी जाती है- 'कल रात वह एक रेस्तरां में दिखी / बैठा था साथ में एक पर-पुरुष / मुश्किल था अंदाज़ा लगाना कौन था वह पुरुष / एक दोस्त एक वकील एक प्रेमी / नज़रें मिली उसने नज़रें चुरा ली / बड़ी जिज्ञासा जग रही थी।'

इसी तरह 'अमरबेल' वह स्त्री के संघर्षों और बार-बार उसके उठ खड़े होने की जिजीविषा को शब्द देते हुए इस कविता में लिखती है- 'हर दिन वह मरती है कटती है / उखाड़ दी जाती है जड़ से / वह उग आती है फिर से / उसे दी गई गालियाँ / ताकि वह शर्म से मर जाए / कैसी जिजीविषा है इस स्त्री में अमरबेल- सी / उग आती है बार-बार पहले से मजबूत / पेड़ पुरुष के सीने तक चढ़ आई है।'

'शब्दों से बने हुए चित्र' शीर्षक का आरंभ वह इन पंक्तियों के माध्यम से करती हैं- 'ऐसा आभास होता है/ मानो धूप में झुलस / शुष्क पड़ गए हैं / मन और जीवन / आपके जाने पर पापा। इस खंड की कविता 'अमेरिका में रहकर..' में वे कैसे शिद्दत से अपने देश और समाज को याद करती हैं, साथ ही समय और पीढ़ियों के साथ भाषा संस्कृति में होने वाले क्रमिक परिवर्तन को बताती हैं- 'अमेरिका में / जीवन भले हो सुचारू पर / न यह सस्ता है / न ही आसान है।'

'वह शहर' कविता में वे अपने शहर को याद करती हैं अपने बचपन की यादें किशोरावस्था स्कूल, गली, शहर शिक्षक और बीते हुए पलों को यानी अपनी जड़ों से जुड़ती हैं। और 'में सिंधी हूँ' कविता में वे किस तरह से सिंधी समाज के संघर्ष को और बँटवारे के बाद किस तरह से वे अपने आप को स्थापित करते हैं इसको प्रभावी ढंग से रेखांकित करती हैं। इसी तरह 'आँगन' कविता में वे अपने घर के आँगन के माध्यम से पूरी दुनिया और आसपास का प्रभावी चित्रण करती हैं। वे एक अन्य कविता 'नानी की आँखें' में नानी के माध्यम से 'चाची' कविता में चाची के माध्यम से और 'माँ मौन रहती थी' कविता में माँ के साथ बिताए समय अपने रिश्तों अपने अहसासों को अभिव्यक्त करती हैं।

इसी तरह 'विरासत की खुशबू' कविता में वे माँ का अपनत्व, नेह से भरी बतियाँ लिखती हैं- 'महक उठा है खुशबू से घर-आँगन / माँ पूरे जतन से भून रही है बेसन / बेटी की भूख अब बर्दाश्त से बाहर है / माँ के हाथों से बने खाने की खुशबू / यह सोंधी खुशबू जगा देती है भूख।'

इसके साथ ही 'एक धुंध में जाना है' शीर्षक से उनकी कविताओं का आरंभ कविता की इन दार्शनिक पंक्तियों से आरम्भ होता है जिसमें वे पाठकों के हृदय को छूने वाले भावों को अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं - 'यहाँ टिकने वाला कुछ नहीं / विदा होना है सभी को / और विदा करना है सभी को / विसर्जन पुराने का होता है / इस उम्मीद पर / नया आएगा फिर से आएगा नए आरंभ के साथ।' इसके साथ ही वह 'किताबें' शीर्षक से किताबों के बारे में अपने अनुभव उनकी महत्ता उनके भरे - पूरे संसार को रेखांकित करते हुए लिखती है - 'किताबें मेरी संगी, मेरी साथी / वे मेरे साथ हैं बचपन से / मेरे घर के कोने में मंदिर हैं / वहाँ से नज़र आता है पूरे घर का दृश्य / हर कोने में, में अलमारियों में / ऑफिस और लिविंग रूम में / स्टेडी टेबल पर, कमरों और गलियारों में / असंख्य किताबें करीने से सजी है / जिन्हें में बार-बार छूकर देखती हूँ।'

'स्वार्थ' कविता के माध्यम से वह हमारे समय के कटु यथार्थ को उकेरती हैं समय के साथ जीवन में स्वार्थ और बदलाव को बड़े प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती हैं - 'बड़े होते-होते / छोटा वृत्त, बाहरी दुनिया के वृत्त में / विलीन हो जाता है और बड़े हो जाते हैं / मैं, मेरा, मेरे लिए, मुझे, अपना खुद का, / अस्तित्व और सर्वाइवल के लिए / एक व्यवस्थित सोच के दायरे में / सभी एक जैसा ही व्यवहार करते हैं / शब्दों की डिक्शनरी में ऐसे शायद स्वार्थ कहते हैं।'

'कागज़ की कश्तियाँ' कविता में वे कागज़ के विविध रूपों को एक नई दृष्टि और चिंतन से परिभाषित करते हुए लिखती हैं - 'कागज़ की कश्तियाँ / कब पर करती हैं समुंदर / हौसलों में दम हो अगर / बना लो जीवन को काठ की नैया / कागज़ के खिलौने से बेहतर है / कागज़ के मूल्य की किताबें / ज्ञान का संसार है इनमें / सँभाल कर रखना इन्हें / जीवन जीने की कला छिपी है इनमें। 'प्रवाह' कविता में वे लिखती हैं- बीत रहा है समय अपनी गति से / दौड़ रहे हैं घड़ी के तीन काँटे / भूत, भविष्य, वर्तमान / संसार में जो घटा है, घट रहा है / और घटने वाला है / अशांति, अधर्म और युद्ध / मात्र दुर्घटनाएँ नहीं / समस्याएँ हैं वे जिनसे जूझ रहा है मानव युगों से।'

'पल का सामर्थ्य' कविता में वे लिखती हैं- जीवन की स्पर्धा हो या प्रतियोगिता / संभावनाएँ रहती हैं दोनों में / हार की या जीत की / जिस पल कली बनती है फूल / खिंचा आता है भँवरा फूल की ओर।' साथ ही 'विकास के प्रमेय' कविता में भी लिखती हैं- बदल रही है धरती / बदल रहा है आसमान / वे भी दिन हुआ करते थे / तितलियाँ घूमती थीं बागों में / रातों में जुगनू चमका करते थे / धरती करती थी पोषण / तारों की छाँव में अब सुकून कहाँ ?

'वो जो हम में तुम में क्रार है' शीर्षक की शुरुआत करती हैं - 'मेरी आँखों में अभी-अभी ख़्वाब है सजे / आओ ना तुम भी / कुछ मेरे, कुछ तुम्हारे ख़्वाबों को पूरा करते हैं / उड़ आसमान में साथ-साथ।' उनकी एक कविता

है - 'पहली छुअन' जिसमें वे लिखती हैं- 'पहली छुअन का एहसास / समय ही लगा था कितना / चंचल पवन वन मन बहने लगा था / बारिश हो गई थी नई-नई सी / और बढ़ गई थी ठंडक धूप में। 'प्रतीक्षा के क्षण' कविता का एक अंश भी देखें - 'तुम्हारे आगमन की आस में / है प्रतीक्षा के क्षण अभी सिंदूरी शामों में / पहन लिया है घाटियों, वादियों ने / सिंदूरी रंग, छिड़का है हवा ने गुलाल ने। 'यूँ ही तो नहीं' कविता देखिए - मैंने ख़्वाब यूँ ही तो नहीं / सजा लिए थे आँखों में / पंख फैलाने की ख़्वाहिश थी / लेकिन उड़ान भरने से डरती थी।'

'दुनिया मेरे आगे' इस शीर्षक को आरंभ करते हुए वे लिखती हैं - जीवन के लावा ने / पिघला दिया है मौत के ग्लेशियर को / हिमालय के सीने से / फूटती है गंगा लालसाओं की / जो बह चली है बाज़ारबाद में। 'किस मौसम में' शीर्षक को वे प्रारंभ करती हैं - कोई अधूरापन मैं ढूँढ़ नहीं पाती प्रकृति में / अच्छा लगता है मुझे हर बार बहाना / जब प्रेम से मुझे वह मुझे हौले से सहला कर / मेरी ही संपूर्णता याद दिला देती है। इस शीर्षक में उनकी अपनी कर्म भूमि, बादलों के पीछे, अधूरापन, और मन उत्सव मनाता है जैसी कविताएँ हैं।

संग्रह की कविताएँ बौद्धिकता के बोझ से दबी हुई नहीं हैं; इनमें सीधे दिल को छूने वाले बिंब और प्रतीक हैं, यह कविताएँ अपने समय के साथ-साथ अपने पाठकों से बतियाती चलती हैं और पाठक सहज ही इनसे स्वयं को जुड़ा से हुआ अनुभव करता है। इस संग्रह की कविताओं की काव्य-धारा समकालीन समय का प्रतिबिम्ब है है, इन कविताओं में समाज घर परिवार देश दुनिया प्रकृति नाते-रिश्ते आदमी की नीयत और नियति जैसे विविधवर्णी विषय हैं, यह कविताएँ पाठकों को चिंतन की एक दिशा सहज रूप में देती हैं निश्चित ही संभावना से भरी एक संवेदनशील कवियत्री की यह कविताएँ पाठकों को पसंद आएँगी रचनाकार को हृदय से बधाई और शुभकामनाएँ।

खुशी और दर्द को उकेरती कविताएँ मुधा आदेश

रेखा भाटिया का जन्म इंदौर में हुआ था किन्तु उनका कार्यक्षेत्र शार्लीट शहर नार्थ कैरोलाइना, अमेरिका बना। शिक्षक होने के साथ वह अच्छी कथक नृत्यांगना तथा चित्रकार तो हैं ही, वह हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी अपना परचम लहरा रही हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में योगदान देने के साथ उनके दो कविता संग्रह- सरहदों के पार दरख्तों के साथे में तथा मन की नदी से भीगे शब्द।

सहज, सरल भाषा में संप्रेषित आपका यह तीसरा कविता संग्रह है जिसके बारे में अपनी बात में लिखती हैं -जीवन में घटित किसी घटना का कारण चाहे जो हो, मैं अपने भीतर एक हलचल महसूस करती हूँ। सिर्फ दर्शक बनकर उस घटना का साक्षी बनने से मेरा मन इंकार करता है, वह अपनी तटस्थता तोड़ता है। उस अनुभव को व्यक्त करने के लिए लालायित रहता है। इस प्रक्रिया में प्रकृति का सौंदर्य और जीवन का सौंदर्य उसका भरपूर सहयोग देते हैं। संग्रह का प्रारम्भ इन पंक्तियों से करती हैं- जाने कितनी सच की परतें छिपी हैं / खिलखिलाती झूठी हँसी के पीछे।

रेखा जी का नवीनतम कविता संग्रह 'एक पत्ता ख्वाब' उनकी इसी जिजीविषा का परिणाम है। अपने कविता संग्रह 'एक पत्ता ख्वाब' को 7 भागों में बाँटा है। पहला भाग है- मैं और मेरा मन। इस भाग में 17 कविताएँ हैं जो स्त्री के दर्द, घुटन और बैचनी की पर्याय हैं। पुरुष ने सदा महिलाओं को स्वयं से कम समझा और उन्हें उनके अधिकारों से भी वंचित किया। इस पुरुषवादी विचारधारा से शोषित स्त्री की व्यथा से व्यथित होकर, पुरुष से अपने हिस्से के सुख की कामना करती हुई 'तुम रच लो इतिहास' कविता की कुछ पंक्तियाँ- सदियों से रीतियों और प्रथाओं की / जंगल लगी बेड़ियाँ / मेरे पाँवों में जकड़ी हैं / उनसे मुक्त कर पाओ मुझे / तब मुझसे बात करना / हे पुरुषवादी दरवेश!।

जीवन में अनेक स्वप्न होते हैं इन अधूरे ख्वाब और उन्हें पूरा करने जद्दोजहद को अपनी प्रतिनिधि कविता एक पत्ता ख्वाब' में

कवियत्री पिरोते हुए कहती हैं- जीवन के इस खेल में, / कभी होती है जीत / कभी हार से हुए हताश और दौड़ पड़े / हार को जीत में बदलने / मानो जीवन / एक जुआ है, ताश के पत्तों का महल / झोंको से बिखरे, फिर बन होता खड़ा।

दुनिया की चकाचौंध में अपने अस्तित्व को तलाशती, अधूरेपन के एहसास को जीते हृदय की वेदना को कवियत्री ने 'टूटन' कविता में उकेरा है- खोखले दिलों के छिपे दर्द में / जिंदगी की पनाह ढूँढ़ती! / मुस्कानों का आलम यह था / जैसे विलाप करती विधवा। / किसी को शक न हो / पहन रखे थे रंगीन लबादे सभी ने।

भारत की तुलना में विदेशों में कहा जाता है कि लड़कियों को सुरक्षित माहौल मिलता है किन्तु भारत में पली-बढ़ी माँ अपनी बेटी को कहीं सुरक्षित महसूस नहीं करती। 'डिजनी का प्रिंस' कविता की पंक्तियाँ इस ओर इंगित करती हैं - मैं अपने पूर्वी संस्कारों का लबादा / रखती हूँ मेरी बेटी की गर्दन पर /

इसी कविता की अंतिम पंक्तियाँ जो लेखिका की चिंता को दर्शाती हैं - अस्पष्ट चिंताओं के घेरे / ज़मीन पैरों के नीचे बदली है / या उखड़ गई है / अमेरिका हो या भारत / बेटियाँ बेटियाँ होती हैं। इस भाग की कुछ अन्य कविताएँ सॉप -सीढ़ी, प्रवासी, एक लेखक की दृष्टि से भी अच्छी हैं।

इस संग्रह का दूसरा भाग है -मेरी आधी आबादी। आधी आबादी में परिवर्तन आया है किन्तु अभी भी उतना नहीं जितना आना चाहिए। तभी इस भाग का प्रारम्भ वह अपनी कविता 'मुझे याद है' की निम्न पंक्तियों से करती हैं- हर औरत का मन सड़ कर काला पड़ जाता है / उस समाज का कोई चेहरा याद नहीं मुझे / जिसने उसे भुला दिया था, वह खुद भटका हुआ था / मुझे याद है आँसू और चेहरा उस औरत का।

इस भाग में भी 17 कविताएँ हैं जिसमें कवियत्री ने नारीवाद और पुरुषवाद के बीच की लकीर को अपने लेखन का मुद्दा बनाया है। आधी आबादी चाहकर भी अपने नैसर्गिक गुणों से दूर नहीं हो पाई है। 'पराक्रम की गाथा'

कविता में स्त्री के नैसर्गिक गुण को उसकी महत्वाकांक्षा पर हावी रखकर लिखती हैं- एक बार फिर उसने बचा लिया है / एक घर टूटने से खुद टूटकर। / घर बचा रहेगा, वंश बढ़ता रहेगा, / समाज बचा रहेगा, दुनियादारी निभती रहेगी / पराक्रम की गाथा का कहीं जिज़्र न होगा।

पुरुषवादी सोच पर व्यंग्य करती है उनकी कविता -चर्चे हैं उनके / लैंगिक समानता, सशक्तिकरण उनका प्रिय विषय हैं / उनकी कविताओं कहानियों में नारीवाद का अर्थ / मानो एक प्रचंड झरना है / जो बहा ले जाना चाहता है / सामाजिक, सांस्कृतिक / धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को।

इस पुरुषवादी मानसिकता की कथनी और करनी पर प्रहार करती अंतिम पंक्तियाँ - कल किसी अखबार में खबर छपी / माहवारी में उनकी पत्नी आज भी / रसोई से बाहर रखी जाती है। / आग जंगल की तरह फैली / आज सारा जंगल सुलग रहा है।

स्त्री की तुलना धरती से करते हुए वह 'बेबस' कविता में कहती हैं - स्त्री और धरती दोनों हैं जननी / दोनों की क्रिस्मत एक -सी / दोनों को कर दिया गया है बहुत बेबस।

स्त्री के ऊपर होते अत्याचारों पर कुछ पंक्तियाँ 'अमरबेल' कविता से - उसे दीं गई गालियाँ ताकि वह शर्म से मर जाए / कैसी जिजीविषा है इस स्त्री में अमरबेल -सी / उग आती है बार -बार पहले से मजबूत / बेल पुरुष के सीने तक चढ़ आई है।

'आज की बेटी' कविता में कवियत्री ने बेटियों के बढ़ते आत्मविश्वास और कर्त्तव्यों के निर्वाह पर लिखा है - हर औरत की तरह, मैं भी तलाशा करती थी अपनी जगह, / अपने मायके में शादी के बाद और शायद मेरी माँ भी / लेकिन आज की बेटी सँभालती है, अपनी गृहस्थी / साथ बाँट लेती है माँ की गृहस्थी की जिम्मेदारी भी!

इस संग्रह का तीसरा भाग है- 'शब्दों से बने चित्र'। इस भाग में 20 कविताएँ हैं। जिसका प्रारम्भ होता है पिता को समर्पित इन शब्दों से - ऐसा आभास होता है / मानो धूप में झुलस / शुष्क पड़ गए हैं / मन और जीवन /

आपके जाने पर पापा।

बँटवारे के दंश को व्यक्त करती कविता 'मैं सिंधी हूँ' की पंक्तियाँ - बँटवारे में जब खींच दी गई रेखाएँ, / भारतवर्ष से जब मिटा दिया गया सिंध, / चला गया वह एक ऐसे देश में / जहाँ न थी मेरी कोई पहचान, न कोई अस्तित्व। इसी कविता की अंतिम सशक्त पंक्तियाँ देखिए- न मैं इतिहास की एक पंक्ति हूँ / न किसी किताब का छूटा गए नाम / मैंने बनाई है पहचान अपने बूते पर। / मैं पहचान की वह लौ हूँ / जो बुझने से करती है इंकार।

इस भाग में लेखिका अपनी स्मृतियों के वह पन्ने खोलती हैं जो इंसान को दर्द तो देते हैं किन्तु वही कठिन से कठिन समय में उसके संबल भी होते हैं। अमेरिका प्रवास के साथ अपने देश से जुड़ी यादों में माँ की यादों के संग नानी, चाची, मित्र रिश्ते-नाते, अपने मोहल्ले की गलियों के साथ अपनी परम्पराएँ, यहाँ तक कि माँ के अंतिम संस्कार में न आ पाने का दुःख अपनी कविता 'आधी दुनिया पार' में- अब माँ चली गई हैं, उसके आने की प्रतीक्षा न कर सकी / आधी दुनिया को पर करने में वक्त अधिक लगा।

इस भाग की अंतिम कविता है 'ग्रैंड कैनियन का सफ़र' इस सफ़र के हर भाग में उन्हें अपने देश की मिट्टी की सौंधी खुशबू ही नज़र आई। कुछ दृश्य- जितना कष्ट लेकर गहरे भीतर गहरे उतरो / प्रकृति के भीतर उतना अधिक -अधिक / अप्रतिम, अनुपम सौंदर्य प्रकृति का दिखता। / भीतर मैंने खोल दी मन की आँखें और पाया / एहसास उसका बहुत करीब से, इन पत्थरों में। / सजीव सजीले - कभी शिव मंदिर, कभी विष्णु, / कभी ब्रह्मा, कभी अजंता -एलोरा, कहीं किले। / सूरज की किरणों की चमक के अद्भुत घेरे में, / पटल से आकाश तक, अद्भुत दृश्य था वहाँ।

इस भाग की कई कविताएँ -अमरता से बढ़कर, विरासत की खुशबू आँगन, माँ मौन रहती थीं, मन को उद्देलित कर जाती हैं।

'इक धुंध में जाना है' भाग में कवयित्री की 18 कविताएँ हैं। इस भाग का प्रारम्भ वह अपनी कविता 'विसर्जन' की निम्न दार्शनिक पंक्तियों से करती हैं - यहाँ टिकने वाला कोई

नहीं, / विदा होना है सभी को / और विदा करना है सभी को। / विसर्जन पुराने का होता है / इस उम्मीद पर, / नया आएगा फिर से, / नए आरम्भ के साथ।

इस भाग में जहाँ वह किताबों को अपना संगी साथी बताती हैं, उनमें अपना अतीत ढूँढ़ती हैं, वहीं अपनी व्यस्तता, के साथ सोशल मीडिया पर समय बिताने की मजबूरी के साथ अपनी कविता 'किताबें' में लिखती हैं - रोज़ की तरह आज भी / मैंने निर्णय लिया है - / कुछ देर और इंतज़ार करो किताबों / जब समय मिलेगा, पढ़ लूँगी।

जीवन के सत्य से परिचित कराती कविता है 'मंथन' कुछ पंक्तियाँ - देव भी भीतर, दानव भी भीतर / बाहर तो केवल शोर ही शोर है।

रिश्तों के भ्रम जाल में उलझे 'मन और उलझन' कविता की पंक्तियाँ रिश्तों में आती दूरियों को इंगित करती हैं- फिर भी जो रिश्ते मन और दिमाग को उलझा दें, / छोड़ो भी, उन रिश्तों का चले जाना ही बेहतर होता है।

कागज की कश्तियाँ, भीतर की तन्हाइयाँ, सभ्यता, नदी और पनघट, विकास के प्रमेय कविताएँ भी ध्यान आकर्षित करती हैं।

इस पुस्तक के पाँचवें भाग का शीर्षक है - वो जो हम में तुम में करार है। इस भाग में 6 कविताएँ हैं जो प्रेमी -प्रेमिका के इंद्रधनुषी रंग में सजी प्रेम रस से परिपूर्ण हैं। इस भाग का प्रारम्भ वह अपनी कविता 'यूँ ही तो नहीं' की निम्न पंक्तियों से करती हैं - मेरी आँखों में अभी-अभी ख़्वाब हैं सजे / आओ न तुम भी, / कुछ मेरे, कुछ तुम्हारे / ख़्वाबों को पूरा करते हैं / उड़ आसमान में साथ-साथ।

अगला भाग है -दुनिया मेरे आगे। इस भाग में 14 कविताएँ हैं जो दुनिया में पनप रही नफरत, युद्ध की विभीषिका, आतंकवाद को शब्द दे रही हैं। धर्म, भाषा, जाति और बाज़ारवाद पर प्रहार करती 'मौत हुई सस्ती' कविता की इन पंक्तियों से वह इस भाग का प्रारम्भ करती हैं - जीवन के लावा ने / पिघला दिया हैं मौत के गलेशियर को / हिमालय के सीने से / फूटती हैं गंगा लालसाओं की / जो बह चली हैं बाज़ारवाद में

अनियंत्रित विकास के लिए पेड़ काटने

पर उनकी आगे की पंक्तियाँ हैं- पहले एक पेड़ मरता था / रोता था पूरा जंगल, विलाप करता / सुना है, आजकल जीवन के उन्माद में / सबने मौत का भय भुलाकर / अमरत्व का भ्रम लपेटा है

युद्ध की विभीषिका से आहत 'सहमा हुआ' कविता की कुछ पंक्तियाँ - अब दिखता है उजड़ा-उजड़ा / चारों ओर ख़ौफ़ बिखरा है / मौत का तांडव यहाँ ख़ूब नाचा है / आधी रात को आसमान चीरते / इस गाँव के घरों पर ड्रोन फटे हैं / एक मिसाइल उसके घर पर गिरा है / दुश्मन ने दागे हैं नफरत के शोले।

कोई मुँह छिपाता नहीं, हिटलर, स्टालिन और गाँधी, देशप्रेम तुम्हारा, एआई और बाल श्रम कविताएँ भी सोचने को मजबूर करती हैं।

अंतिम भाग 'किस मौसम में' में 6 कविताएँ हैं जो जीवन की छोटी -छोटी खुशी को समेटे जीवन में रंग भर देती हैं। इस भाग का प्रारम्भ होता है 'अधूरापन' कविता की निम्न पंक्तियों से- कोई अधूरापन मैं ढूँढ़ नहीं पाती प्रकृति में / अच्छा लगता है मुझे हर पल यह बहाना / जब प्रेम से मुझे वह हौले से सहलाकर, / मेरी ही संपूर्णता याद दिला देती है।

'मन उत्सव मनाता है' कविता में बर्फ के आगमन पर प्रकृति में होते परिवर्तन को वह इन शब्दों में बयान करती हैं - जब भी आती हो / भर देती हो ऊर्जा का श्वेत रंग / कोमल पवित्र प्रेम भरा / ले आती हो शांति का एहसास। अपनी कर्मभूमि और बादलों के पीछे कविता भी हृदय को छू जाती हैं।

इस कविता संग्रह की विशेषता है कि इस संग्रह की हर कविता ने जीवन के किसी न किसी आयाम को छुआ ही नहीं, कभी सुख से कभी दुःख से दिल की परतों को खोलने के साथ जीवन जीने का हौसला भी दिया है।

डॉ. सुधा ओम ढींगरा के साथ अपने परिवार के सदस्यों एवं अपने विद्यार्थियों तथा पाठकों को समर्पित, शिवना प्रकाशन से प्रकाशित, आकर्षक मुखपृष्ठ वाला काव्य संग्रह 'एक पत्ता ख़्वाब' पठनीय है। मैं रेखा भाटिया को संग्रह के लिए बधाई देती हूँ।

सत्य की कविता-यात्रा

वेदप्रकाश अमिताभ

देशी-विदेशी अंग्रेजों और समीक्षकों ने 'कविता' को 'गोली', 'पोस्टर', 'नारो', 'संगीत', 'कोड़ा' आदि विभिन्न रूपों में व्याख्यापित किया है। एक पत्ता खूबाब की कवियित्री ने अपनी कविताओं को 'जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति' माना है, जिसके माध्यम से वह अपने 'भीतर के सच' को जीवित रख सकी हैं। कविताओं को पढ़ते हुए प्रायः लगता है कि यह सत्य निजी न होकर मानवीय अथवा मनुष्य के अस्तित्व का सत्य भी है। सात खंडों में सुनियोजित कविता-संग्रह में मानव-जीवन के बहुविध पक्ष, कई यथार्थ भंगिमाएँ और अनेक व्यथाएँ-संवेदनाएँ संलिप्त हैं।

कई कवयित्रियों का कविता-संसार स्त्री-जीवन की विडंबनाओं तक सीमित रह जाता है, रेखा भाटिया की कविताओं का क्षेत्र बहुत व्यापक है। स्त्री-संघर्ष की दिशाएँ तो प्रमुख हैं ही, युद्ध जैसी वैश्विक विसंगतियाँ, व्यवस्था की कुरूपता, अमानवीयकरण और अवमूल्यन के हादसे, अपसंस्कृतिकरण, बाजारवादी मानसिकता जैसे ज्वलंत प्रश्न भी जहाँ-तहाँ हैं।

स्त्री को लेकर दो तरह के कंट्रास्ट हैं। बेबस कविता में स्त्री और धरती की क्रिस्मत एक सी है- स्त्री और धरती दोनों हैं जननी / दोनों की क्रिस्मत एक सी / दोनों को कर दिया गया है बहुत बेबस। दूसरा रूपक नदी का है और यह अवसाद की जगह उत्साह और जिजीविषा से भरपूर है। नदी का उद्घोष है- कर्म है मेरा बहना / निरंतर पथ पर, मेरे गंतव्य की ओर / बहती खुशहाल खुशहाल करने सबका जीवन / यही ध्येय तुम्हारा भी, मैं जाऊँ सखी / तुम भी जियो अपने आज में।

'अपने आज' में जी रही स्त्रियों के बदले हुए तेवर 'मेरी आधी आबादी', खंड की 'तुम्हारा आकाश', 'हाइवे', 'उसकी क्रिस्मत', 'अमरबेल', 'बदचलन' आदि कविताओं में पढ़े जा सकते हैं। ये तेवर अधिसंख्यक स्त्रियों के हिस्से में नहीं आए हैं। आज कुछ स्वर दबा दिए गए हैं। 'हर औरत का मन सड़कर काला

पड़ जाता है' जैसी स्थितियाँ भी हैं, लेकिन कवयित्री आश्वस्त है कि बदले हुए समय का सूरज कोहरे को धीरे धीरे ही सही, भेद रहा है। हाइवे में इस सदी की आधुनिक औरतों को आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी उचित ही दर्शाया गया है। दूसरी औरत, दहेज, पुरुष-अहंकार, उत्पीड़न, प्रताड़ना के बावजूद पितृसत्ता को चुनौती, औरतें अपने आज को यथासंभव जी रही हैं। 'जिस निश्छलता से औरतें बैठी हैं ड्राइविंग सीट पर/ जीवन का स्टीयरिंग व्हील आत्मविश्वास से सँभालती' स्त्रियाँ कम हैं लेकिन हैं। इस सकारात्मक बदलाव को 'तुम्हारा आकाश' में सराहा गया है- वे गाती हैं गीत आजादी के / बदलती सोच की वर्षा में / बह चुकी है / पुरानी, लादी हुई रूढ़िवादिता।

'आज की बेटी' और 'डिज्नी का प्रिंस' आदि कविताएँ साक्षी हैं कि नई पीढ़ी अपनी शर्तों पर जी रही है और पुरानी पीढ़ी के संस्कारों को निरस्त भी कर रही है। 'डिज्नी का प्रिंस' विशेषतः उस भारतीय मानसिकता के माँ के डर को उभारती है जो बेटी की दलीलों से जीत नहीं पाती है, लेकिन निर्द्वंद्व भी नहीं हो पाती। क्योंकि 'अमेरिका हो या भारत, बेटियाँ बेटियाँ होती हैं।' हालाँकि 'चर्चे हैं उनके' सरीखी कविताएँ पितृसत्ता की गुंजलक को अनावृत्त करती हैं, फिर भी कई कविताओं में सकारात्मक संभावना बनी हुई है- 'आने वाला कल होगा समानान्तर / स्त्रियों और पुरुषों का / सशक्त और मजबूत / क्रदम से क्रदम मिलाकर / चलेंगे साथ-साथ धरती पर / धरती से जुड़कर।'

यह आश्वस्ति विनाशक हथियारों से घटित क्रूर हिंसा और भयावह प्रदूषण के संदर्भ में नहीं है। संवेदनशील मन यह देख कर त्रस्त है- 'मिसाइलों की मार से थरते जल, थल, गगन / घुट रही है धरती, हवा जहरीली हो चली।' उसे क्षोभ है कि मायूसों का बचपन और भविष्य नकारात्मक गतिविधियों की दया पर निर्भर हो गया है- विषैली हिंसक इंसानी आदतों में, / समाज की एक पाशविक प्रवृत्ति में, / असहिष्णुल जनप्रतिनिधियों की सोच में, / राजनीति के घृणित कारनामों में, / हथियारों के काले धंधों में / कैसी पनप रही है यह

मानसिकता / होती जा रही हिंसक।

संग्रह की 'प्रवासी', 'अमेरिका में रह कर', 'वह शहर', 'हिटलर, स्टालिन और गांधी' आदि कविताओं में प्रवासी भारतीयों के मनोविज्ञान से साक्षात् होता है। अपने शहर आने के लिए टिकट बुक होते ही नॉस्टेल्लिजिया का मासूम बच्चे सा कुलाँचे मारना, जरूरतों के मकड़जाल में पक्षपाती रिश्तों से निर्मोही हो अकेले जीना, माँ-बाप और बच्चों का दो दुनियाओं के बीच दोहरे दबाव में जीना- ये प्रवासी जीवन की वास्तविकताएँ हैं जिन्हें प्रवासी भारतीयों ने खूब झेला, भोगा है। अब वापसी भी संभव नहीं है। जिस मिट्टी का बना है प्रवासी, वह कलुषित हो गई है- मैं क्यों द आना चाहूँ जहाँ परिहार हो सम्मान का / मैं कहाँ आना चाहूँ / जहाँ जन पीर का मान न हो? / जहाँ इंसानियत को छोड़ / कई रंगों के, अहंकारों के झंडे / शान से हर बिल्लिचंग पर लहराते हैं?

कवयित्री ने अवमूल्यन, अव्यवस्था, कलुष, कदाचार आदि की व्यंजना के लिए 'अँधेरा' और उससे संबद्ध बिंबों का उपयोग कई स्थानों पर किया है। 'बाहर के अँधेरे भीतर सुरंगें बनाने लगे हैं', 'मेरी बाहर की दुनिया में अँधेरा है फैला', 'अचानक दिन में अँधेरे लगने लगे', 'अँधेरा मिट रहा था / पसर गया था भीतर' आदि अवतरणों में भयावह स्थितियाँ हैं, लेकिन समग्रतः कविताओं का विज्ञान उजला और आलोकधर्मी है। हालाँकि रेखा भाटिया ने लेखक-मन को समझना आसान नहीं माना, फिर भी जीवन-मूल्यों की पक्षधरता जहाँ-तहाँ उजागर हो ही जाती है। उनका यह संकल्प मुखर और प्रशंसनीय हो जाता है- शायद जीवन से अधिक जीवन के मूल्य को / आँकना जानता है लेखक-मन।

अनेक सूचना बहुत और विमर्शक्रांत हिन्दी कविताओं के बीच में सहज और सार्थक कविताएँ पाठकों की संवेदना और सोच को स्पर्श करने में सक्षम हैं। भीतर और बाहर के यथार्थ को रचती ये कविताएँ हिन्दी कविता की मुख्यधारा से अलग-थलग नहीं हैं।

केंद्र में पुस्तक

जूनिपर

हंसा दीप



(कहानी संग्रह)

जूनिपर

समीक्षक : एस. पी. सिंह, मधुर

कुलश्रेष्ठ, मुकेश दुबे

लेखक : डॉ. हंसा दीप

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

एस. पी. सिंह

10 दशमेश नगर,

सुल्तानपुर, बलदेव नगर,

अंबाला शहर- 134007, हरियाणा

मोबाइल- 7206333070

मधुर कुलश्रेष्ठ

मोबाइल- 9329236094

ईमेल- madhurkuls@gmail.com

मुकेश दुबे

107, डी. डी. एस्टेट कॉलोनी,

सीहोर, मध्यप्रदेश - 466001

मोबाइल- 9826243631

जीवन के अनेकरंग

एस.पी. सिंह

'जूनिपर' प्रकृति और प्रतीक का संकेत देता है, 'खेल-खेल में' जीवन की सहजता और उसके भीतर छिपे गंभीर अर्थों की ओर ले जाता है, 'शोक उत्सव' दो परस्पर विरोधी भावों को आमने-सामने खड़ा करता है, 'झुरमुटी गलियारे' स्मृति और जीवन की उलझी राहों का आभास देता है, 'कान' जैसे एक छोटे-से शारीरिक अंग को कथा का केंद्र बनाने की संभावना खोलता है, 'सफ़ेद बतखें' दृश्यात्मकता पैदा करती हैं, 'पाती' पत्र और आत्मीय संवाद की दुनिया में ले जाती है, 'तागा' संबंधों और बंधनों का प्रतीक बन सकता है, 'भक्त' आस्था और मनुष्य की मनोवृत्ति की ओर संकेत करता है, 'रुतबा' सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रश्न को सामने ला सकता है, 'जेवर' वस्तु से आगे बढ़कर संबंध और मूल्य का अर्थ ग्रहण करता है, 'घुँघराले बोल' स्मृति और अस्पष्ट होती आवाजों का संसार रचता है, 'बेंच' जैसे निर्जीव वस्तु को भी जीवन का साक्षी बना देती है, 'आग' जीवन की ऊर्जा और विनाश दोनों का प्रतीक है और 'पानी के रंग' परिवर्तनशीलता, पारदर्शिता और भावों की बहुरंगी प्रकृति को अपने भीतर समेटता है। यही शीर्षक बताते हैं कि हंसा दीप की कथा-दृष्टि किसी एक विषय या एक मनोदशा तक सीमित नहीं है। वह जीवन को बड़े प्रसंगों में ही नहीं, बल्कि छोटी-छोटी वस्तुओं, क्षणों और अनुभवों में भी खोजती हैं।

मुझे इस संग्रह की एक बड़ी विशेषता यह लगी कि एक कहानी दूसरी कहानी के बाद आती जरूर है, लेकिन पिछली कहानी को पीछे छोड़ती नहीं। हर कहानी अपना कोई दृश्य, अपना कोई भाव, कोई प्रश्न अथवा कोई स्मृति पाठक के भीतर छोड़ जाती है। इसीलिए कहानी समाप्त होने के बाद भी उसका असर समाप्त नहीं होता। पाठक अगले पृष्ठ पर चला जाता है, लेकिन उसके भीतर पिछली कहानी कहीं न कहीं चलती रहती है। यही वह बिंदु है जहाँ कथा साहित्य महज मनोरंजन से ऊपर उठकर अनुभव का साहित्य बन जाता है। हंसा दीप की कहानियों में संस्मरणात्मक ऊष्मा भी महसूस होती है। पाठक कई जगह यह सोचने लगता है कि वह किसी कहानी को पढ़ रहा है या किसी मनुष्य के जीवन का ऐसा पन्ना देख रहा है, जिसे कथा की कलात्मक संरचना में ढाल दिया गया है। यह कहानी और संस्मरण के बीच की वही महीन रेखा है जहाँ रचनाकार निजी अनुभव को सार्वभौमिक संवेदना में बदल देता है।

यह सब पढ़ने के बाद 'जूनिपर' को केवल एक कहानीकार की नवीन पुस्तक कहना पर्याप्त नहीं होगा। यह एक ऐसे रचनाकार की पुस्तक है जिसकी साहित्यिक यात्रा लेखन, अध्यापन, अनुवाद, संपादन, प्रसारण और अकादमिक अध्ययन, इन सभी क्षेत्रों से होकर गुजरती है।

पुरस्कार निश्चित रूप से रचनाकार के साहित्यिक सफ़र के महत्वपूर्ण पड़ाव होते हैं, लेकिन हंसा दीप के लिए पाठकों की प्रतिक्रियाएँ जिस प्रकार महत्वपूर्ण दिखाई देती हैं, उससे लगता है कि उनके लिए साहित्य की अंतिम कसौटी पुरस्कार से अधिक पाठक का मन है। और शायद यही बात 'जूनिपर' की सबसे बड़ी खूबी है।

मैंने इस संग्रह की कहानियाँ पढ़ीं और सच कहूँ तो कई जगह ऐसा लगा जैसे कहानी पढ़ते-पढ़ते पाठक कहानी से बाहर नहीं, बल्कि उसके भीतर चला जाता है। शायद इसलिए कि किसी रचना पर लिखने के लिए केवल उसका कथानक जान लेना पर्याप्त नहीं होता; उसके भीतर छिपी हुई दूसरी परतों को महसूस करना पड़ता है। क्योंकि अच्छी कहानी वही है जो पढ़े जाने के बाद प्रश्न छोड़ जाए। और उत्कृष्ट कहानी वह है जो प्रश्न के साथ कोई स्मृति भी छोड़ जाए।

'जूनिपर' की अनेक कहानियों में मुझे यही क्षमता दिखाई देती है। इस पुस्तक की एक और खूबी यह है कि यहाँ कथाकार पाठक को उपदेश नहीं देतीं। वह जीवन को सामने रखती हैं और निर्णय का अधिकार पाठक पर छोड़ देती हैं। यही साहित्य की परिपक्वता है। कहानीकार यदि हर बात का अर्थ स्वयं समझा दे तो पाठक की भूमिका समाप्त हो जाती है; लेकिन हंसा दीप की कथा-शैली पाठक को अर्थ खोजने के लिए स्थान देती हुई प्रतीत होती है।

इस संग्रह का शीर्षक भी इसी खुलेपन का परिचायक है। 'जूनपर' को आप वृक्ष की तरह पढ़ सकते हैं, स्मृति की तरह पढ़ सकते हैं, प्रवास की तरह पढ़ सकते हैं, मनुष्य की जिजीविषा की तरह पढ़ सकते हैं या उन संबंधों की तरह पढ़ सकते हैं जो मौसम बदलने पर भी भीतर हरे बने रहते हैं। आवरण पर खिंची रेखाएँ भी जैसे यही कहती हैं कि मनुष्य कभी सीधी रेखा में नहीं जीता। जीवन घुमावदार है, स्मृतियाँ उलझी हुई हैं, संबंधों में गाँठें हैं, रास्तों में मोड़ हैं और फिर भी मनुष्य आगे बढ़ता है। यही जीवन है। यही कहानी है। और शायद यही 'जूनपर' है।

हंसा दीप जी को इस सार्थक, आत्मीय और बहुस्तरीय कहानी-संग्रह के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई। यह बधाई केवल एक नई पुस्तक के प्रकाशित होने की नहीं, बल्कि उस दीर्घ साहित्यिक साधना की है जिसके पीछे वर्षों का अध्ययन, अध्यापन, लेखन, अनुवाद, संपादन और जीवनानुभव खड़ा है। लेखक ने कहानियाँ लिखी हैं, लेकिन पाठक को केवल कहानियाँ नहीं दीं, उसे मनुष्य को देखने के कई नए कोण दिए हैं। पात्र रचे हैं, लेकिन उनके साथ पाठक की अपनी स्मृतियों को भी जगा दिया है। कथाएँ समाप्त की हैं, लेकिन पाठक के भीतर उन्हें समाप्त नहीं होने दिया। और शायद इसी को साहित्य की सबसे बड़ी सफलता कहा जा सकता है, कहानी का अंतिम शब्द पुस्तक में होता है, लेकिन उसकी वास्तविक समाप्ति पाठक के मन में कभी नहीं होती।

000

मन की गहन कन्दराओं में

मधुर कुलश्रेष्ठ

कुछ पुस्तकें ऐसी होती हैं जो ख़ुद को पहले-पहल पढ़वा लेती हैं। सुविख्यात कहानीकार हंसा दीप के कहानी संग्रह 'जूनपर' के पाठे ही शीर्षक से उत्सुकता जगी। मायने मालूम नहीं थे, गूगल किया तो अर्थ पता चला, एक सदाबहार और खुशबूदार शंकुधारी पौधा जो साल भर हरा रहता है। तो कहानीकार हंसा दीप की सदाबहार कहानियों को पहले पढ़ने के लिए विवश हो गया।

उनकी कहानियों की विशेषता होती है कि वे बिना किसी शोरगुल के, सुनार की हथौड़ी की तरह धीरे-धीरे ठक-ठक करती हुई, मानव मन की गहन कन्दराओं में ले जाकर छोड़ देती हैं जहाँ पाठक कहानी ख़त्म होने के बाद भी उन कहानियों में कई पल, कई घंटे और कई दिन तक विचारता रहता है।

कहानियों के संसार में हंसा दीप, संसार के सबसे जटिल और रहस्यमयी, मानव मनोभावों को इतनी सहजता से उद्घाटित करती हैं कि पाठकों को लगता है- ये तो बिल्कुल उसके ही मनोभाव हैं।

हंसा दीप कहानी 'जूनपर' के नायक जेस्टर, जो अपना पैर दुर्घटना में गँवा चुका है, के माध्यम से 'मन की शक्ति' को व्यक्त करती हैं। मन की ताकत पर आचार्य चाणक्य का कथन है- 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' अर्थात् मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण उसका मन ही है। इसी तरह विलियम जेम्स का कथन है- 'मनुष्य अपने दृष्टिकोण को बदलकर अपना जीवन बदल सकता है।' जेस्टर अपने मन की सकारात्मकता तथा अपने दृष्टिकोण में बदलाव- 'कम से कम चलता तो हूँ मैं। कई ऐसे लोग भी हैं जो चल नहीं पाते,' की दम पर अपनी हीन भावनाओं के बंधन से मुक्ति पा लेता है। वह पालतू पशु के रूप में ऐसे कुत्ते 'जूनपर' का चयन करता है जो अपना एक पैर खो चुका होता है। दरअसल किसी की पीड़ा का सही आकलन वही कर सकता है जो उस पीड़ा से होकर गुजरा हो। जब एक बार मन मजबूत हो जाता है तो शारीरिक अक्षमता कोई मायने नहीं रखती है- 'जेस्टर ने पहले अपना पैर फोल्ड करके प्रोस्थेटिक पैर बताया और फिर जूनपर के पैर की ओर इशारा किया- 'देखिए, हम किसी पर बोझ नहीं हैं। दौड़ नहीं सकते पर बहुत चलते हैं। लँगडपन से लड़ते हमारे पैर जरूर कृत्रिम हैं, मगर हमारा मन, सोच और इरादे कुदरती हैं।'

ये मन के सकारात्मक या नकारात्मक विचार ही होते हैं जो हमारी सोच को प्रभावित करते हैं। गौतम बुद्ध का उद्धरण- 'मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया,'

(मन सभी मानसिक अवस्थाओं का अग्रदूत है; मन ही प्रधान है और सब कुछ मन से निर्मित होता है।) विचार और मानसिक अवस्था का मानव व्यवहार पर प्रभाव दर्शाता है। कहानी 'भक्त' में हंसा दीप ने शोधार्थी जीनो को देखकर ट्रस्टियों के मन में उठे नकारात्मक व सकारात्मक विचारों अनुसार द्वन्द्वों का बखूबी चित्रण किया है, 'सबके चेहरों पर मुस्कान छा गई। ट्रस्टी सहित उपस्थित कार्यकर्ताओं ने जय-जयकार की। ऐसा लगा मानो ईश्वरीय कृपा से एक बड़ा संकट टल गया हो, और वही घटना, जो खतरे की घंटी प्रतीत हो रही थी, अब एक वरदान बनकर समुदाय का नाम रोशन करने को आतुर थी।'

'पानी के रंग' कहानी अभावों में जी रहे लोगों की मनोदशा का मार्मिक खाँचा खींचती है। एक छोटी सी आशा मन की निराशा को दूर करने में सहायक होती है, चाहे वह क्रिसमस पर बच्चों द्वारा चाहे गए छोटे-छोटे उपहारों की हो या फिर नायिका के द्वारा 'एंजल ट्री' संस्था में स्वयंसेवा कर कर्ज मुक्त होने की चाहत हो, 'महिला की आँखों की चमक में इतनी ताकत थी कि पिछले तीनों अनुभव धुँधले पड़ते गए। /.../ अब मेरे पास उपहार लेने की अनुभूति थी और देने की भी।'

हंसा दीप अपनी कहानियाँ लिखते हुए मानो परकाया में प्रवेश कर जाती हैं, तभी तो महिला होने के बावजूद भी कहानी 'आग' में टूटते दाम्पत्य और छिन्ते पितृत्व की दशा में एक पिता के संत्रासों का इतना संवेदनशील वर्णन किया है। जंगल की आग व धुँआ तथा मनुष्य के अंदर की आग व धुँआ दोनों की चुभन, जलन, टीसन की यथार्थता, मार्मिकता और गहनता कहानी में देखने को मिलती है।

जटिल मनोभावों को सरल शब्दों में बाँधकर अभिव्यक्त कर देना हंसा दीप की कहानियों की विशेषता है। राष्ट्र प्रेम की भावना किसमें नहीं होती है, अंतर सिर्फ़ रिएक्ट एवं अभिव्यक्त करने का होता है। यही कारण है कि राष्ट्रों की आपसी जंग, खेल के मैदान में भी हावी हो जाती है। भारत-पाकिस्तान की आपसी टसल का प्रभाव दोनों के बीच होने वाले खेलों में हम देखते ही हैं।

हंसा दीप ने कनाडा और अमेरिका की इसी खींचतान को कहानी 'खेल-खेल में' दिखाया है। पति और पत्नी के द्विराष्ट्रीय होने से घर में खेल के मैदान से ज़्यादा रोमांच, तनाव, बेचैनी और खींचतान उत्पन्न हो जाती है। पति और पत्नी का समझदारी भरा करारनामा कि हार-जीत के फैसले से एक-दूसरे को नीचा नहीं दिखाया जाएगा, कहानी का सुखद अंत करता है, 'खेल-खेल में ही सही, पति-पत्नी दोनों ने एक-दूसरे का अपनापन थामे रखा। समझौता बुरा नहीं था, अहं की तुष्टि भी हुई और हार के अपमान का दंश भी नहीं चुभा।'

आपसी रिश्तों की शुष्कता और रेगिस्तान होते संबंधों के समय में कहानी 'शोक उत्सव' संबंधों में आत्मीय जुड़ाव, प्रेम और निष्ठा का नखलिस्तान है। कहानी 'झुरमुटी गलियारे' तथा 'कान' रिश्तों के बोझ बनते समय में रिश्तों के प्रगाढ़ निर्वहन की आस जगाती है कि बीमारी से ग्रसित या वृद्धावस्था में मनुष्य परिवार पर बोझ नहीं है बल्कि एक ज़िम्मेदारी है। कहानी 'सफेद बतखें' संवेदनहीन होते जा रहे समाज का आईना है जहाँ मातमपुर्सी के समय भी अपने-अपने गुट हैं, अपने-अपने राग हैं, दिखावा है, प्रदर्शन है पर भावनाएँ कहीं नहीं हैं। बेटी के अगाध स्नेह में डूबे पिता की, अपने दामाद को भावनाओं भरी 'पाती' है।

हर कोई किसी निश्चित साँचे में फिट नहीं हो सकता है। हर एक की अपनी-अपनी प्रकृति होती है, अपने-अपने गुण होते हैं। वह अपने स्वाभाविक व्यवहार और मन की उड़ान से ही सफलता का 'तागा' आसानी से तान सकता है। प्रकृति का नियम है कि कोई पेट से सीखकर नहीं आता है, अपने आसपास वह जो देखता है उसे ही वह अपनाता है। हर किसी को अपना 'रुतबा' दिखाने की अचेतन कामना होती है जो ऊपर से नीचे, सक्षम से अक्षम की ओर गतिमान होती है। कहानी 'रुतबा' में बच्चों की यही भावना दृष्टिगत है। शारीरिक सुंदरता में एक छोटी सी कमी किस तरह मनुष्य में हीन भावना को जन्म दे सकती है, यह कहानी 'जेवर' में पढ़ी जा सकती है, जहाँ सफेद होते बाल नायिका में मानसिक

उद्वेलन, अवसाद और हीनता पैदा कर देते हैं। भावनाओं के संवहन में भाषा दीवार नहीं होती है। एक छोटा सा शब्द, हाव-भाव और मुस्कान सारे अर्थ बयान कर देती है। भाषा के पांडित्य पर हँसी की अमूल्य निधि ज़्यादा भारी पड़ती है। जिससे 'घुँघराले बाल' का गैरी, गैर नहीं लगता है। किसी वस्तु के साथ मन का ऐसा जुड़ाव होता है कि उसका स्पर्श आँखों के सामने पूरी जीवन यात्रा ला देती है। खेल के दौरान 'बेंच' पर बैठे खिलाड़ी के मनोविज्ञान की कहानी है 'बेंच'।

संग्रह भाषा, व्याकरण, विराम चिह्नों, वाक्य विन्यास आदि सभी स्तरों पर निर्दोष है। इसके लिए हंसा दीप बधाई की पात्र हैं। शिवना प्रकाशन का मुद्रण हमेशा की तरह उत्कृष्ट है। वंशीलाल परमार द्वारा निर्मित पुस्तक आवरण, सादगी में भव्यता पैदा करता हुआ है।

संग्रह 'जूनपर' की सभी कहानियाँ मन के अदृश्य कोनों में झाँकती हैं, जिनमें उमंगें हैं, तरंगें, अवसाद हैं, निराशा है, आशा है। हंसा दीप की कहानियों में जीवन के यथार्थ सत्य हैं, जीवन की सार्थकता है। संग्रह का सार संक्षेप निकलता है कि 'मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसकी परिस्थितियों में नहीं, बल्कि परिस्थितियों के प्रति उसके दृष्टिकोण में छिपी होती है।'

000

खुशबू से महकते अफ़साने मुकेश दुबे

साहित्य चाहे प्रवासी करार दिया गया हो अथवा अप्रवासी कहा जाए, सांस्कृतिक द्वंद, पहचान की तलाश, अलगाव, विस्थापन का दर्द और अतीत की यादों की महक अपने-अपने अंदाज़ में परिलक्षित होती है। हंसा दीप को पढ़ते हुए महसूस होता है, 'पूरब की हल्दी', ने 'पश्चिम के चूने' से मिलकर, कुमकुम का सुख रंग बिखरा दिया हो पन्नों पर।

हर रचनाकार के सृजन में स्थानीय परिवेश स्वमेव समाहित हो झलक उठता है। अधिकांश प्रवासी सृजन में इस बात को महसूस किया जाता है। हंसा दीप की

कहानियों में पश्चिम के आँगन के किसी कोने में पूरब की धूप भी दिखाई देती है। स्वदेशी स्मृतियाँ, पीले पत्तों सी उड़ती रहती हैं विचारों की आँधी में।

शिवना प्रकाशन, सीहोर से हालिया प्रकाशित कहानी संग्रह 'जूनपर' की 15 कहानियाँ नज़ीर हैं इस विचारधारा की। इस कहानी संग्रह का शीर्षक 'जूनपर' साइप्रस या सरू परिवार का एक सदाबहार झाड़ी या छोटा शंकुधारी पौधा है, जिसका लैटिन मूल अर्थ 'सदाबहार' या जीवन और ऊर्जा देने वाला होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि संग्रह की प्रत्येक कहानी में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह दिखाई देना स्वाभाविक है।

शीर्षक कहानी जूनपर, तो जैसे सूर्य सरीखा ऊर्जा पिंड है, जिसमें शारीरिक विकृति, मज़बूत इरादों को परास्त नहीं कर सकी, चाहे इंसान हो या चौपाया मूक प्राणी। जेस्टर और जूनपर ने किसी और पर बोझ बनने के स्थान पर एक अंग की कमी को नज़रअंदाज़ कर सामान्य जीवन जीने का रास्ता अपनाया।

व्यक्ति चाहे टोरंटो का हो अथवा लॉस एंजिलस का, दिल और दिमाग की कोशिकाओं का गठन व कार्यप्रणाली एक जैसी ही होती है। यह बात तब ज़्यादा मानीखेज़ लगती है, जब कोई रिश्ता देश की सरहदों से ऊपर अपनी जगह बना चुका हो। खेल, हर किसी के जीवन का अभिन्न अंग है। कहा जाता है खेल को खेल की भावना से खेलना चाहिये परन्तु कब खेल भावना विजय के जश्न में दबकर रह गई, आभास तक नहीं हो पाया। कुछ देशों में तो खेल विशेष की दीवानगी, हार को स्वीकार ही नहीं करती और हताश दर्शक अपनी कुंठा, टेलीविजन को तोड़कर शांत करना चाहते हैं। खेल, मैदान से निकलकर मन व मस्तिष्क पर क़ब्ज़ा कर लेता है और व्यक्ति खेल से ज़्यादा हार-जीत का आनन्द लेने लगता है।

खेल-खेल में, कहानी में इसी विषय को चुनकर, मैदान पर टीम या देश की विजय से आपसी रिश्तों तथा भावनाओं को कहीं ऊपर रखने तथा विजय या पराजय को मात्र टीम के

खिलाड़ियों के उस दिन के श्रेष्ठ प्रदर्शन से जोड़कर देखने की पैरवी की गई है। इसी से जीवन में, देश, काल व परिस्थिति के अनुसार व्यवहार की बात को बल मिलता है।

शोक उत्सव, बर्फ की सर्दी में सुलगती आग से मन में जमी माँ-पापा की यादों को पिघलाकर आँखों से रिसने को मजबूर करती कहानी। अंतिम पंक्ति जैसे शाश्वत सत्य है 'जाने वाले भी रह जाते हैं, अगर कोई उन्हें जीता रहे।' मृत्यु के शोक में विजयी श्रद्धांजलि का मर्मस्पर्शी उत्सव।

अल्जाइमर या गंभीर डिमेंशिया की स्थिति में धीरे-धीरे याददाश्त और पहचान की क्षमता खत्म हो जाती है। इसके अलावा, मस्तिष्क के न्यूरोलॉजिकल विकारों जैसे एग्नोसिया या प्रोसोपैग्नोसिया (फेस ब्लाइंडनेस) के कारण भी व्यक्ति अपनों या खुद का चेहरा नहीं पहचान पाता। इसी मनोविकार अथवा दिमागी खलल को आधार बनाकर बुनी है कहानी झुरमुटी गलियारे। कोई कैसे उस आघात को सहन करे जब, अतीत की यादें मन के दर्पण से पूरी तरह से हट जाएँ, स्मृतियाँ थककर मौन हो जाती हैं और तब प्रेम अकेला साथ निभाता प्रतीत होता है।

कान, मनुष्य को प्रकृति का ऐसा उपहार है जो ध्वनियों को सुनने तथा समझने के लिए दिया गया है। डेफनेस (बाधिर्य या बधिरता) को चिकित्सा विज्ञान ने मात्र श्रवण क्षति कहकर इसके उपचार की व्यवस्था की हो, परन्तु भावनात्मक और सांस्कृतिक संदर्भ में बधिरता से बड़ा कोई श्राप नहीं है जीवन में। रास्ते पर लगे चेतावनी बोर्ड ने शीना को अतीत के उस हिस्से में घसीट लिया, जहाँ वो पिता की बधिरता के तीव्र अनुनाद को सुन रही है। देख रही है उस अव्यक्त पीड़ा को जो पिता की आँखों से अनेक बार बही थी।

लेकिन 'जूनिपर' में नकारात्मकता के लिए स्थान कहाँ है! एक बच्चे के माध्यम से बताया है कि जब एक दरवाजा बंद होता है, प्रकृति दूसरा खोल देती है। एक बच्चा, ध्वनि को कान के स्थान पर आँखों से सुन व समझ रहा है। शायद सीख रहा है वो जीना और इसी हौसले का नाम जिंदगी है। हंसा दीप की

लेखनी की खासियत है यह कि वे समाज के चलन को संकेतों के माध्यम से प्रभावी तरीके से व्यक्त कर जाती हैं।

सफेद बत्तखें, प्रगतिशील समाज की सोच और आचरण का सूक्ष्म विश्लेषण करती कहानी है। श्मशानघाट पर अंत्येष्टि के समय अथवा दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना सभा में लोगों के दोहरे आचरण पर तीखा तंज है कहानी। पाती, महज कहानी या खत नहीं है। कन्यादान करते पिता के अपने हाथों से भींचे गए दिल से टपकते लहू की बूँदें हैं। जहाँ बेटी के स्नेह की तड़प है, वहीं जमाता के नवजीवन की तरफ उठने जा रहे कदमों की सतर्कता की सीख भी है। काश हर पिता, ऐसी एक पाती अपनी पुत्री के जीवन साथी को सौंपता विदा करते वक्त, दिल को छूती कहानी, जिसमें सम्पूर्ण समाज के लिए एक संदेश समाहित है। तागा, गुरु-शिष्य के मध्य तनी अदृश्य डोर की ऐसी प्रस्तुति जिसे हर शिक्षक महसूस कर सकता है। एक शिक्षक होने के नाते मैंने कहानी के हर शब्द को सिर्फ पढ़ा नहीं, घटित होते देखा है। जिया है उन लम्हों को जो लम्बी सेवा अवधि की धरोहर हैं। शिक्षक के लिए अपने विद्यार्थी की सफलता से बढ़कर कोई सम्मान नहीं हो सकता। शिष्य के विश्वास और गुरु के स्नेह की बेमिसाल नज़ीर है कहानी।

हम भारतीयों पर एक कहावत पूरी तरह से लागू होती है चाहे हम विश्व के किसी भी कोने में हों। अगर कोई कहे, 'कौवा कान ले गया' तो हम अपने हाथ से कान को छूकर तसल्ली करना नहीं भूलते। भक्त, भी ऐसे ही मिजाज की प्यारी सी कहानी है। रुतबा, बाल मनोविज्ञान आधारित बेहतरीन कहानी बन पड़ी है। गिव एंड टेक वाली भावना, बचपन से ही विकसित हो जाती है। 'चाँदी उगने लगी है बालों में, ये उम्र तुम पर हसीन लगती है' गुलज़ार साहब की नज़्म की इन पंक्तियों से बरअक्स है कहानी ज़ेवर। कहीं पढ़ा था, दुनिया की सबसे संतुष्ट महिला भी अपने रूप-सौंदर्य से हमेशा असंतुष्ट रहती है। वैसे यह बात संतुष्टि दायक है कि एक स्त्री ने स्त्री की कमज़ोर नस पर हाथ रखा है।

पता नहीं मानवीय संवेदना में संप्रेषण के लिए किस भाषा का इस्तेमाल हुआ था। जितने देश, उतनी बोली। हर आदमी बहुभाषी हो, यह सम्भव नहीं है। भाषाई विरोधाभास और दो अपरिचित भाषाओं के मध्य निर्मित सेतु की मीठी सी कहानी है, घुँघराले बोल।

संघर्ष के बिना जीवन की परिकल्पना सबसे बड़ा भ्रम है। एक गीत के बोल नेपथ्य में बजते सुनाई देते हैं, 'जहाँ में ऐसा कौन है जिसे गम मिला नहीं...' और यह भी अकाट्य सत्य है कि संघर्ष ही व्यक्ति को कुंदन सा निखारते हैं और हर दुःख की कोई न कोई काट मिल ही जाती है। एक बेंच को प्रतिमान स्थापित कर, कई मुद्दों को उजागर कर दिया कहानी ने। अंतर्राष्ट्रीय खेल चयन नीति पर बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न है कहानी, बेंच। प्रेम में पड़े इंसान के लिए दुनिया की हर सतह चिकनी होती है और कभी-कभी उसी फिसलन से उपजा घर्षण, जंगल की आग सी दहक बन जाता है और जिंदगी झुलसने लगती है। एक बार फिर हंसा दीप ने जलते जंगलों में सुलगते प्रेम और अलगाव को ढाल दिया है, आग कहानी में।

अभावों में खुशी के रंग भरती कहानी है, पानी के रंग। बचपन में जब चुपचाप छत पर जाकर गीले मौजे में विश लिस्ट रखकर सांता की राह देखते थे, पापा कहते थे, सांता बहुत शर्माता है। तुम्हें देखकर नहीं आएगा। बहुत बाद में पता चला था पापा ही सांता थे। इस कहानी ने फिर बचपन की उन्हीं पगडंडियों पर पहुँचा दिया, जहाँ बड़े होकर सांता बनने का बीजारोपण हुआ था। एंजेल ट्री जैसी संस्थाएँ आज भी बालमन के विश्वास को अच्छुण रखने में महती भूमिका निभा रही हैं।

स्कूल में जब डिवीजन ऑफ़ प्लांट किंगडम में 'जूनिपर' जैसे पौधों के बारे में पढ़ा था, सोचा नहीं था कभी इसी उपेक्षित पौधे के नाम पर जीवन के अनगिनत रंगों को उजागर करती कहानियाँ पढ़ने मिलेंगी। हंसा दीप, इस अनमोल उपहार के लिए आपका हृदय की गहराइयों से आभार। सशक्त व सफल लेखन के लिए बधाई।

केंद्र में पुस्तक



(कहानी संग्रह)

औरत के भीतर की औरत

समीक्षक : डॉ. मधु संधु, दीपक
गिरकर, संजीव जायसवाल 'संजय'

लेखक : सुधा जुगरान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मग

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु

13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल,
जी. टी. रोड, अमृतसर 143104, पंजाब
मोबाइल- 8427004610

ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

दीपक गिरकर

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,

इंदौर- 452016, मग

मोबाइल- 9425067036

ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

संजीव जायसवाल 'संजय'

सी 5300, सेक्टर-12, राजाजीपुरम,

लखनऊ 226017, उग

मोबाइल- 7318213943

सजग और प्रगतिशील

डॉ. मधु संधु

'औरत के भीतर औरत' सुधा जुगरान का नवम कहानी संग्रह है। उनकी प्रथम कहानी 21 वर्ष की आयु में 'सरिता' में प्रकाशित हुई थी। इससे पहले उनके आठ कहानी संग्रह 'गली आगे मुड़ती है', 'मुखरित मौन', 'मेरे हिस्से का आकाश', 'थोड़ा दूर थोड़ा पास', 'नई इबास्त', 'मुक्तिबोध', 'काँधों पर सलीबें', 'एक मन ऐसा भी' आ चुके हैं। वे विगत तीन दशक से कथा साहित्य को समृद्ध कर रही हैं। दो उपन्यास 'मनस्विनी' तथा 'मन के चौहट्टे पर बोनसाई', एक समीक्षा पुस्तक के साथ-साथ अनेक साँझा संकलनों में उनकी रचनाएँ संकलित हैं। 'औरत के भीतर की औरत' में कुल तेरह कहानियाँ हैं- अनुत्तरित सवाल की कैद में, अपने अपने कुरुक्षेत्र, औरत के भीतर की औरत, कहा न डर लगता है, चेहरे पर चेहरा, नहले पर दहला, फकत रेत, बिखरते जज़्बात और इक्कीसवीं सदी, रोशनी का भ्रम, सपनों का इंद्रधनुष, सरहदों का सन्नाटा, सुई का आलम और अधूरे घर की चौखट।

प्रथम कहानी 'अनुत्तरित सवालों की कैद में' की उत्तर भारतीय संवेदनशील लवीना अमेरिका के न्यूजर्सी में केरल के दिलफेंक एथन के संपर्क में आती हैं। माता-पिता की अनुपस्थिति, सोशल मीडिया के फ्लर्टी संदेश और अमेरिका का उन्मुक्त वातावरण उनके प्रेम को देह द्वार पर ले आते हैं। अमेरिका से पीएच. डी. की डिग्री के साथ-साथ अपने अनुत्तरदायी प्रेमी की भेंट दो महीने का गर्भ लेकर वह भारत लौट आती है। सोचा तो था कि यह इक्कीसवीं सदी है। वैध- अवैध से मुक्त करने वाली सदी। गर्भपात से इंकार कर वह बेटे को जन्म देती है। अपना शहर छोड़ साइबर सिटी बैंगलोर में सैटल हो जाती है। बड़ा हो रहा बेटा उससे पिता का जब-तब पूछता रहता है और वह उसे बहलाती भी रहती है। अंततः बेटा जान जाता है कि वह अवैध औलाद है। कहानी कहती है कि इक्कीसवीं शती या आधुनिकता कुछ नहीं होती, वही देश, समाज, नैतिकता, मूल्यवत्ता है; वही दोगला पुरुष है। समझ में आता है कि- 'उसने एक अजन्मे बच्चे को नहीं मारा था, लेकिन एक जन्मे बच्चे को अभिशप्त और अवसाद भरी सोच के साथ जिंदगी जीने के लिए मजबूर कर दिया था।'

ऐसे ही बंद दरवाज़ों से टकरा रहे प्रश्न 'अधूरे घर की चौखट' में मिलते हैं। ममी-पापा का तलाक़ आठ वर्षीय कयान के अन्तर्मन को विखंडित कर देता है। मानों एक सुरक्षित वातावरण से खुले आसमान तले पटक दिया गया हो। ममी के पास रहकर भी उसे लगता है कि आधा पापा के पास ही छूट गया है। घर की हवा विषैली और दुर्गंधभरी लगती है। किसी से मन की बात साँझी करके वह दया का पात्र नहीं बनना चाहता। आज उसका सोहलवाँ जन्मदिन है। अंदर हाहाकार और एक ही उपहार की कामना है कि ममी-पापा अपना ईगो त्याग उसे एक होने का उपहार दे दें।

'अपने अपने कुरुक्षेत्र' में मुख्यतः पार्किंसन रोग के सूक्ष्म विवरण और एकल परिवार द्वारा अभिशप्त बना जीवन चित्रित है। यह शारीरिक और भावनात्मक ज़िम्मेदारियों के बीच अकेली खड़ी विधवा की कहानी है। एक मात्र बेटी की शादी हो चुकी है। वह सिंगापुर में अपने पति के साथ है। सेवानिवृत्ति के बाद पति पार्किंसन का शिकार हो जाते हैं और अकेली स्त्री पर घर-बाहर की ज़िम्मेदारियों का पहाड़ टूट पड़ता है। मानों उसका जीवन भी लकवाग्रस्त हो गया हो। न्यूरो-फिज़ीशियन का उपचार शुरू होता है। लेखिका मूलतः रसायन शास्त्र में एम. एससी. हैं, अतः एक डॉक्टर अथवा भुक्त-भोगी की तरह इस रोग के विवरण दिये हैं। एंजाइटी और अवसाद से शुरू होने वाला यह रोग दवाइयों के बावजूद समय के साथ-साथ बढ़ता ही जाता है, क्योंकि मस्तिष्क की कोशिकाएँ डोपामाइन नामक रसायन का पर्याप्त उत्पादन नहीं कर पाती। रोगी को आप अकेला नहीं छोड़ सकते। वह गिर सकता है। चलना मुश्किल हो जाता है। लड़खड़ाते पाँवों को बरामदे से नीचे उतरने के लिए भी सहारा चाहिए। दो वर्ष में ही पति की मृत्यु हो जाती है। 13 दिन रिश्तेदारों की हलचल के बाद वह अपने दुख और जीने के लिए अनिवार्य बन चुके

ढेरों जटिल और कठिन कामों के साथ एकदम अकेली रह जाती है। यही आज के एकल परिवार की त्रासदी है।

महानगरीय एकल परिवार में रिश्तों की सीवनें भी उधड़ती हैं। ऐसे में मजबूत सुई-धागे की जरूरत पड़ती है। 'सुई का आलम' में रागिनी की सास के पास रिश्तों को जोड़ने वाला बहुत मजबूत सुई-धागा है। इसी लिए वह दिल से उन्हें चाहती है, जबकि उसकी माँ के पास ऐसी कला / मानसिकता / सुई धागा नहीं है, तभी तो बहू से रिश्तों का गैप बढ़ता ही जाता है। क्योंकि- 'सीवनें चाहे कपड़ों की हों या रिश्तों की, मरम्मत माँगती हैं और इनके मकैनिक नहीं होते।'।

'सरहदों का सन्नाटा' भी ऐसे ही एकल परिवार का अंकन है। तीन साल से अकेली माँ बीमार, अशक्त पिता को सँभाल रही थी। बेटी की शादी को दस साल हो चुके हैं। वह मुंबई में रहती है। पिता की मृत्यु से पहले समय पर पहुँच भी जाती है। देखती है बुआ, चाचा तथा उनके बच्चों ने शवयात्रा के लिए सारी व्यवस्थाएँ अपने हाथ में ली हैं। दूर-नजदीक के सभी रिश्तेदार, मित्र, परिचित पहुँच जाते हैं। भारतीय संस्कृति में समाया सहयोग और संवेदना का यह पक्ष उसे सजग सचेत करता है और वह बच्चे को जन्म देने के बारे में सोचने लगती है।

'फ़क्रत रेत' में सृष्टि के नवनिर्माण के संदर्भ में अनुकरण और नए जमाने की सोच का मुद्दा लिया गया है। कहानी में स्त्री की चार पीढ़ियाँ (जानकी, सुमित्रा, सुनीता और लीसा) और उनमें आ रहा बदलाव चित्रित हैं- बड़े परिवार छोटे हुये, एकल बने और फिर लिव-इन। आज बच्चे के जन्म और लालन-पालन की समस्या मुँह बाए खड़ी है।

सीमन द बउआ की 'द सेकंड सेक्स' / 'स्त्री उपेक्षिता' में एक प्रसंग आता है कि मारने-पीटने वाले पुरुष से छुटकारा पा स्त्री अगर सबसे निचले स्तर के काम यानी होटल की सफाई कर्मचारी भी बन जाए तो वह प्रसन्न और संतुष्ट रहती है। 1932 में प्रकाशित हुये उर्दू के 'अंगारे' संकलन में रशीद जहाँ की कहानी 'दिल्ली की सैर' की नायिका

पति का व्यवहार देख कहती है- 'मुझे मेरे घर पहुँचा दो, बाज़ आई इस मुई दिल्ली की सैर से, तुम्हारे साथ तो कोई जन्त भी न जाए।' यानी पति-पुरुष के पारिवारिक-सामाजिक उच्चतम सिंहासन को स्त्री जानती भी है और पहचानती भी है, ऊपरी मन से स्वीकारती और अन्तर्मन से अस्वीकारती भी है। 'औरत के भीतर की औरत' पियक्कड़ और निखट्टू, झगड़ालू और उत्पीड़क, अनुत्तरदायी और नशेड़ी पति की कहानी है। उसके दो रात घर न आने पर पत्नी और बेटियाँ गलियों-बाज़ारों में, पुलिस स्टेशन-अस्पताल में, दोस्तों-परिचितों के यहाँ उसे ढूँढ़ने-खोजने में हाँफ-टूट जाती हैं। खाना-पीना-सोना सब भूल जाती है। यह एक दुनियादार स्त्री के बाह्य मन की अवस्था है। दो-दो बेटियाँ हैं- मर्द का साया तो अनिवार्य है, जबकि उसके नकारात्मक चरित्र और स्वभाव के कारण पत्नी उसके मर-खप जाने की कामना ही करती है। भीतर की औरत सोचती है कि इस नासूर से पति के बिना जीवन में कितना चैन होता। लेकिन वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में सामंजस्य बिठाने के लिए स्त्री दृढ़-संकल्प है। 'दो शब्द' में सुधा जुगरान कहती हैं- 'मेरी कहानियों की स्त्री परिस्थितियों के सामने हार नहीं मानती। हर हाल में अपना मुकाम हासिल करने का उनका दृढ़ संकल्प होता है, किन्तु वे परिवार और पारिवारिक रिश्तों को नहीं बिसारती। अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों से कभी पलायन नहीं करती।'

'कहा न, डर लगता है' में डर उस सामाजिक संरचना से है, जिसमें थर्ड जेंडर अस्वीकृत है, शर्म और अपमान का कारण है। मान लिया गया है कि उसे हिजड़ों की टोली ले जाए और भिखमंगों सा जीवन ही उसकी नियति है। कहानी में माँ की तड़प और पिता की संवेदनशीलता आठ साल बाद हिजड़ों के यहाँ ले जाए जा चुके अपने बच्चे को लौटा कर ही चैन पाती है।

'चेहरे पर चेहरा' भ्रष्ट सिस्टम, भूख, बेकारी, रोज़गार की त्रासदी पर है। बाह्य यथार्थ यानी जीवन की कटु सच्चाईयों पर। यह एक छोटे पहाड़ी स्मार्ट सिटी के पलटन

बाज़ार के अतिक्रमण का चित्रण लिए है। इस बाज़ार में हर चीज़ उपलब्ध है। यह पर्यटकों और स्थानीय लोगों की भीड़ वाला बाज़ार है। बिना सरकारी इजाजत के हर दुकानदार महीना लेकर रेहड़ी, फड़ी, रिंग वालों से अपनी दुकान के आगे के फुटपाथ पर बिक्री की सुविधा दे रहा है और सरकारी रेड जूतों के नीचे दबाकर और ज़ब्त करके इनका सामान और जुर्माना तथा रिश्वत लेकर इनकी कमाई समेट रही है।

'रोशनी का भ्रम' में उन भिखमंगों को नायकत्व मिला है, जिनकी इस देश में संख्या चार लाख से ऊपर है। इनसे भीख मँगवाना इनके क्रूर आकाओं का बिज़नेस है। बलात्कार और अपराध यहाँ दिनचर्या सा है। कहानी आठ वर्षीय बालिका सरुली की है। गँधाते नाले के पास बने छप्परों में माँ और बेटी दूसरे भिखमंगों के साथ रहती हैं। बच्ची नहाना चाहती है, जुओं से छुटकारा चाहती है, अच्छी फ्राक चाहती है, स्कूल जाना चाहती है। वह रोशनी के इस भ्रम में बड़ी हो रही है, जबकि आका की हवस माँ-बेटी दोनों के लिए है। क्रूर खलनायकों की विद्रूपताओं से घिरा स्त्रीत्व।

'बिखरते जज़्बात और इक्कीसवीं शती' जीवन जीने के लिए जीवन हार रहे किशोरों की कहानी है। वे दूर-दराज के शहरों में अपने को कोचिंग में, पढ़ाई में डुबो देना चाहते हैं, लेकिन कुछ गाँठे उन्हें अवसाद से मुक्त नहीं कर पाती। एक किशोर माँ-बाप की अनबन या तलाक़ जैसे मुद्दे के कारण आत्महत्या कर लेता है और आशिमा को बचपन में अपने साथ ताए के बेटों द्वारा किए कुकर्मों के कारण डिप्रेशन नहीं छोड़ता।

'सपनों का इंद्रधनुष' की नायिका घरेलू नौकरानी की बेटी होकर भी एम. एससी. करती है। यू.जी.सी. क्लियर करके पीएच. डी. करती है और फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट में एक अच्छी नौकरी पाकर अपने स्वप्न पूरे करती है। उसने जान लिया है कि स्थायी खुशी दिमाग़ के रास्ते ही पाई जा सकती है। स्त्री अपने स्वप्नों को पूरे के लिए संकल्पबद्ध है। 'नहले पर दहला' में मुख्यतः दो मुद्दे हैं- भ्रष्ट प्रशासन और मी टू और इन की भेंट चढ़कर

लोकतन्त्र के चारों स्तम्भ चारों खाने चित्त पड़े हैं। मध्यवर्ग की एक मेधावी युवती का अपनी मेहनत और योग्यता के बल पर प्रशासनिक सेवाओं में चयन होता है। वह एस. डी. एम. और डी. एम. बनती है। लेकिन ईमानदारी उसके रास्ते का काँटा है- 'जब से भ्रष्ट नेता विधानसभाओं व संसद में आना शुरू हुये और मंत्री पद तक जा पहुँचे, तब से नौकरशाही का राजनीतिकरण होता चला गया। अधिकारी कानून और संविधान के मुताबिक नहीं, बल्कि अपने राजनीतिक संरक्षक के मुताबिक काम करते हैं।'

जल्दी-जल्दी तबादले, अवहेलना, तिरस्कार, धमकियाँ, जातिगत प्रतिष्ठा को फ़र्जी मुद्दा बनाकर दलित विधायक द्वारा प्रताड़ना, उच्च अधिकारी, विधायक, मंत्री-उसे रास्ता बदल उन्हीं का हिस्सा बनने के लिए, कोयले की दलाली करके मुँह काला करने को विवश करते हैं। कहानी में एक इंटेलेजेंट और महत्वाकांक्षी पत्रकार वंदना माथुर 'मी टू' की बात भी करती है और अँधेर नगरी में, प्रमोशन के लिए युवतियों का यौन-शोषण करने और करवाने वालों का भन्डा फोड़ भी करती है। स्त्री अपनी लड़ाई भी लड़ रही है और विद्रोह का बिगुल भी बजा रही है।

इन कहानियों की शब्दावली में समाये बहुत से नए/ अत्याधुनिक शब्द इन्हें जेन-जी तक ला रहे हैं। जैसे 'ब्रेड ब्रेकिंग' (छोटे छोटे संदेश भेजना), 'पॉकेटिंग रिलेशन' (दूसरों से संबंध छिपाना), 'टाक्सिन रिलेशनशिप' (विषाक्त संबंध), 'नो वेंडिंग ज़ोन' (रोज बाज़ार लगाने वाली जगह), 'मी टू' (मेरा भी यौन शोषण हुआ है), लिब- इन (बिना विवाह के साथ रहना), हैप्पी हार्मोन्स (खुशी के रसायन), स्मृतियों के कोलाज (छिटपुट यादें), सैंडविच जेनरेशन (सब तरफ़ से पिस रहे लोग)।

चिंतन सूत्रात्मक आकार लेकर भाषा को सम्पन्न कर रहा है। जैसे-

1. पुरुष के प्रेम का रंग देह मिलन के बाद फीका पड़ने लगता है, स्त्री के प्रेम का रंग देह मिलन के बाद गहरा होने लगता है।

2. स्त्री कितनी भी आधुनिक होने का दम

भर ले। वह हारती अपने शरीर व अपने दिल से ही है।

3. माँ एक सच होती है और पिता एक विश्वास।

4. पुरुष उम्र के किसी भी मोड़ पर स्त्री के साथ के अपने रिश्ते का लिबास उतार सकता है और स्त्री जीवन भर उस उतरे लिबास की याद में रोती रहती है।

5. सोलह- अठारह की उम्र उत्तेजना और उत्सुकता की तो हो सकती है, पर नासमझी की नहीं।

6. ऐसी खुशी जो देह के रास्ते न मिलकर दिमाग के रास्ते मिले, वही खुशी स्थायी सुख देगी।

7. स्त्री किसी भी रूप में हो, टांके लगाने में माहिर होती है और टांके तोड़ने में भी। निर्भर करता है कि टांके लगाने की आवश्यकता कहाँ है और तोड़ने की कहाँ?

8. उघड़ी सीवनों के मैकेनिक नहीं होते। फिर चाहे सीवने कपड़ों की हो या रिश्तों की।

9. नन्ही सी सुई का आलम भी क्या है, कपड़ों पर चलती है तो तन ढक देती है, रिश्तों पर चलती है तो मन ढक देती है।

संकलन स्त्री का नायिकात्व लिए है। पुरुष शायद बदलने में यकीन ही नहीं रखता। वह तो आज भी लगभग वैसा ही है जैसा बीते कल में था।

सुधा जुगरान की औरत अस्तित्व सजग और प्रगतिशील होकर भी जानती और समझती है कि दाम्पत्य के लिए उत्तरदायित्व, सांस्कृतिक मूल्य और स्नेह- सौहार्द अनिवार्य है। 21वीं शती या आधुनिकता एक छलावा है। यहाँ भ्रष्ट प्रशासन, दोगले राजनेता भी हैं और भीख, बलात्कार, थर्ड जेंडर जैसे ज्वलंत मुद्दे भी।

000

स्त्री मन के अंतर्द्वंद्व की कहानियाँ

दीपक गिरकर

'औरत के भीतर की औरत' कथाकार सुधा जुगरान द्वारा लिखी गई एक प्रभावशाली हिन्दी कृति है, जिसे शिवना प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। इसका शीर्षक, जिसका अर्थ है 'एक औरत के भीतर की औरत', इस

गहराई से मार्मिक कथा के सार को समेटे हुए है- एक औरत की तलाश, एक औरत की लड़ाई और एक सच का सामना। आवरण पर दिया गया उपशीर्षक है: 'एक औरत की तलाश, एक औरत की लड़ाई, और एक सच का सामना', जो इस कहानी के केंद्र में मौजूद भावनात्मक और सामाजिक यात्रा को खूबसूरती से अभिव्यक्त करता है। जीवंत कथानक और सूक्ष्म चरित्र-चित्रण के माध्यम से सुधा जुगरान उन महिलाओं की आंतरिक दुनिया को उजागर करती हैं, जो सामाजिक अपेक्षाओं, व्यक्तिगत संघर्षों और आत्म-खोज के बीच अपना रास्ता तलाशती हैं। यह पेपरबैक हिन्दी साहित्य और सामाजिक कथा-साहित्य के प्रेमियों के लिए अवश्य पढ़ी जाने वाली पुस्तक है, जो समकालीन भारत में स्त्रीत्व पर एक सशक्त चिंतन प्रस्तुत करती है। चाहे आप लंबे समय से हिन्दी गद्य के पाठक हों या इस विधा से नए-नए परिचित हो रहे हों, यह पुस्तक आपके दिल और दिमाग पर एक स्थायी छाप छोड़ने का वादा करती है।

'अनुत्तरित सवाल की क़ैद में' कहानी प्रेम, प्रवास, छल, एकल मातृत्व और छिपे हुए सच के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को केंद्र में रखती है। लवीना का चरित्र एक ऐसी आधुनिक, शिक्षित और आत्मनिर्भर स्त्री का प्रतिनिधित्व करता है, जो प्रेम में भावनात्मक रूप से पूरी तरह समर्पित हो जाती है, लेकिन एथन के ग़ैर-ज़िम्मेदार और स्वार्थपूर्ण व्यवहार से टूट जाती है। इसके बावजूद वह अपने गर्भस्थ शिशु को जन्म देने का साहसिक निर्णय लेती है और अकेले अपने बेटे का पालन-पोषण करती है। कहानी का सबसे प्रभावशाली पक्ष यह है कि लवीना ने समाज की परवाह किए बिना अपने बच्चे को जन्म दिया, लेकिन बेटे के पिता के सत्य को छिपाकर अनजाने में उसके भीतर एक मानसिक रिक्तता पैदा कर दी। रेयांश का अठारह वर्ष की उम्र में अपनी माँ से सच पूछना कहानी को एक मार्मिक और मनोवैज्ञानिक मोड़ देता है। कहानी यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है कि क्या किसी बच्चे को सामाजिक कलंक से बचाने के लिए

उससे उसके जन्म का सच छिपाना उचित है? लवीना का निर्णय मातृत्व की दृष्टि से साहसपूर्ण था, लेकिन उसका झूठ रेयांश के व्यक्तित्व पर एक अदृश्य बोझ बन गया। यही द्वंद्व कहानी को संवेदनशील और विचारोत्तेजक बनाता है।

'अपने-अपने कुरुक्षेत्र' मूलतः जीवन और मृत्यु के बीच मनुष्य के उस अंतहीन संघर्ष की कहानी है, जिसमें युद्ध केवल बीमारी से नहीं, बल्कि अकेलेपन, ज़िम्मेदारियों, स्मृतियों और परिस्थितियों से भी लड़ा जाता है। राघव की लंबी बीमारी और पत्नी की निरंतर देखभाल उनके दांपत्य संबंध को एक मार्मिक आयाम देती है। बीमारी के कारण राघव का बच्चों जैसा हो जाना और पत्नी पर भावनात्मक रूप से निर्भर होना कहानी के संबंधों की गहराई को सामने लाता है। राघव की मृत्यु के बाद पत्नी का अकेलापन कहानी का सबसे प्रभावशाली पक्ष है। घर में राघव की मौजूदगी का भ्रम, बगल के तकि ए को सहलाता हाथ और यह अनुभूति कि जैसे राघव अभी बाथरूम से निकलकर पीछे खड़े हो जाएँगे, ये प्रसंग मृत्यु के बाद बची हुई स्मृतियों और जीवनसाथी के वियोग की गहरी पीड़ा को मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हैं। कहानी की विशेषता यह भी है कि लेखिका ने शोक को केवल भावनात्मक धरातल पर नहीं रखा, बल्कि उसके बाद सामने आने वाली व्यावहारिक ज़िम्मेदारियों को भी रेखांकित किया है - बैंक, बिल, टैक्स, संपत्ति के कागजात, बीमा, किरायेदार, इंटरनेट और गैस जैसी छोटी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ। इससे स्पष्ट होता है कि किसी प्रियजन की मृत्यु के बाद जीवन रुकता नहीं, बल्कि व्यक्ति को आँसू पोंछकर अपने हिस्से का युद्ध फिर लड़ना पड़ता है। बेटी और दामाद की उपस्थिति भी कहानी में महत्वपूर्ण है। वे अपने माता-पिता के साथ रहना चाहते हैं, लेकिन नौकरी और भौगोलिक दूरी उनकी अपनी सीमाएँ हैं। इस प्रकार बेटी, दामाद और पत्नी, तीनों अपने-अपने कुरुक्षेत्र में संघर्षरत दिखाई देते हैं।

'औरत के भीतर की औरत' स्त्री-मन के

गहरे अंतर्द्वंद्व और घरेलू हिंसा की त्रासदी को उकेरने वाली प्रभावशाली कहानी है। शराबी पति के अत्याचारों से त्रस्त स्त्री उसके गायब होने पर उसे खोजती भी है और मन ही मन उसके वापस न आने की कामना भी करती है। 'दुनियादार औरत' और 'भीतर की औरत' का संवाद उसके इसी द्वंद्व को सशक्त अभिव्यक्ति देता है। कहानी का सबसे मार्मिक पक्ष यह है कि वर्षों से भय और हिंसा में जी रही स्त्री एक पल के लिए स्वतंत्र और सुखद जीवन की कल्पना करती है और भीतर की औरत के साथ हँस पड़ती है। तभी पति का लौट आना उसके उस क्षणिक सुख और मुक्ति के स्वप्न को चकनाचूर कर देता है। अंतिम दृश्य कहानी की विडंबना को तीव्र कर देता है। रचना स्त्री की सामाजिक विवशता, आर्थिक संघर्ष, पितृसत्तात्मक सोच और आत्मसम्मान की दबाई हुई आकांक्षा को प्रभावी ढंग से सामने लाती है। कुछ स्थानों पर विस्तार और पुनरावृत्ति के कारण कथा थोड़ी लंबी हुई है, फिर भी इसका मनोवैज्ञानिक कथ्य और अंतर्मन का द्वंद्व कहानी को सार्थक और संवेदनशील बनाता है।

'कहा न, डर लगता है' एक अत्यंत संवेदनशील और मार्मिक कहानी है, जो थर्ड जेंडर बच्चों के प्रति समाज की संकीर्ण सोच, माता-पिता के भय और बाद में होने वाले पछतावे को केंद्र में रखती है। कहानी का मूल कथ्य यह प्रश्न उठाता है कि हमारे सामाजिक पूर्वाग्रहों का सबसे बड़ा शिकार आखिर कौन होता है, बच्चा या उसके माता-पिता? मधु का मातृत्व कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है। अपने पहले बच्चे को किन्नरों के हाथों सौंपने के बाद उसका वर्षों तक अपराधबोध और ममता के बीच झूलना अत्यंत मार्मिक है। वहीं रमण का निर्णय उस सामाजिक भय का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें परिवार बच्चे के भविष्य से अधिक समाज की प्रतिक्रिया से डरता है। कहानी का शीर्षक 'कहा न, डर लगता है' इसी मानसिकता का प्रतीक बनकर उभरता है। कहानी का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि समय के साथ सामाजिक दृष्टिकोण बदल रहा है। मधु का यह कहना कि आज

थर्ड जेंडर के लोग पढ़-लिखकर नौकरी कर रहे हैं और समाज में अपनी पहचान बना रहे हैं, कहानी को वर्तमान सामाजिक संदर्भ से जोड़ता है। लेकिन उसके भीतर उठता यह सवाल कि 'मेरा बच्चा आज कहाँ होगा?' कहानी की पीड़ा को और गहरा कर देता है। अंत में रमण का बच्चे को वापस लेकर आना कहानी को सुखद और भावुक परिणति देता है। मधु का बच्चे को सीने से लगा लेना उसके वर्षों के मातृत्व-वियोग को एक ही क्षण में समाप्त कर देता है। कैसे मिला? उन्होंने कैसे दिया? यह सब पूछना अब बेमानी था। - यह भाव कहानी के अंत को प्रभावशाली बनाता है। कहानी का मूल संदेश स्पष्ट है, बच्चे को उसकी पहचान के साथ स्वीकार करना ही सच्चा मातृत्व और मानवता है।

'चेहरे पर चेहरा' एक संवेदनशील सामाजिक कहानी है, जो फुटपाथ पर कारोबार करने वाले छोटे दुकानदारों और रेहड़ी-फड़ वालों के जीवन-संघर्ष को सामने लाती है। कहानी का आरंभ शहर के ऐतिहासिक बाजार के बदलते स्वरूप और अतिक्रमण की समस्या से होता है। श्रद्धा की दृष्टि से बाजार की अव्यवस्था, दुकानदारों द्वारा फुटपाथी व्यापारियों से किराया वसूलना और प्रशासन की कार्रवाई, इन सबके बीच एक जटिल सामाजिक यथार्थ उभरता है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी एक पक्ष को पूरी तरह दोषी ठहराने के बजाय समस्या के दोनों चेहरों को सामने लाती है। एक ओर दुकानदार अपने आर्थिक संकट का हवाला देकर फुटपाथी विक्रेताओं को जगह देते हैं, वहीं दूसरी ओर ये विक्रेता पुलिस की कार्रवाई, सामान जब्त होने और रोजी-रोटी के अनिश्चित संकट से जूझते हैं। इस प्रकार कहानी बताती है कि व्यवस्था की अव्यवस्था के पीछे भी मनुष्य की अपनी विवशताएँ होती हैं। विक्रम का चरित्र कहानी का सबसे प्रभावशाली पक्ष है। बाजार से भगाए जाने के बाद भी उसका घर-घर जाकर कपड़े बेचना उसके संघर्ष और जीवटता को सामने लाता है। श्रद्धा का दृष्टिकोण भी इसी घटना के साथ बदलता है। जो व्यक्ति कुछ

समय पहले उसे बाजार की अव्यवस्था का हिस्सा दिखाई दे रहा था, वही अब उसे अपने परिवार का पेट पालने के लिए संघर्ष करता हुआ एक संवेदनशील मनुष्य दिखाई देता है।

कहानी 'नहले पर दहला' भ्रष्टाचार, सत्ता और त्वरित सफलता की लालसा के घातक गठजोड़ को उजागर करती है। सुलेखा का ईमानदार आई.ए.एस. अधिकारी से भ्रष्ट नेताओं की दलाल बन जाना व्यवस्था के दावानल में आदर्शों के पराभव को दर्शाता है। वहीं वन्दना का शॉर्टकट से मिली सफलता का सच पहचानकर उसी व्यवस्था को सार्वजनिक मंच पर बेनकाब करना कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है। कथा स्त्री-शोषण के साथ-साथ उन सामाजिक परिस्थितियों पर भी प्रश्न उठाती है, जहाँ सफलता की जल्दबाजी युवतियों को समझौते के अंधेरे रास्तों पर ले जाती है। अंततः वन्दना का आत्मबोध संदेश देता है कि मेहनत से अर्जित सफलता ही स्थायी और सम्मानजनक होती है; शॉर्टकट से मिली सफलता अपनी कीमत वसूलती है।

'फ़कत रेत' कहानी तीन पीढ़ियों के बदलते वैवाहिक मूल्यों, पारिवारिक दृष्टिकोण और स्त्री-पुरुष संबंधों में आए बदलाव को प्रभावशाली ढंग से सामने रखती है। एक ओर जानकी, सुमित्रा और सुनीता जैसी पुरानी पीढ़ी की स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने परिवार को सर्वोपरि मानकर अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का त्याग किया, वहीं विद्यादत्त और सुरेश जैसे पुरुषों ने परिवार की आर्थिक ज़िम्मेदारियों को अपना दायित्व समझकर निभाया। इस पारंपरिक दांपत्य में भूमिकाएँ असमान होने के बावजूद ज़िम्मेदारियों का एक अदृश्य संतुलन था। इसके विपरीत, लीसा और आर्यमान की नई पीढ़ी आर्थिक रूप से स्वतंत्र और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व देने वाली है। आर्यमान घरेलू कार्यों में सहयोग करता है और लीसा मातृत्व तथा पारंपरिक पारिवारिक अपेक्षाओं को अपनी अनिवार्य ज़िम्मेदारी नहीं मानती। कहानी इसी संदर्भ में यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है कि क्या आर्थिक स्वतंत्रता और

निजी स्पेस ही सफल दांपत्य के लिए पर्याप्त हैं, अथवा भावनात्मक जुड़ाव, साझा ज़िम्मेदारियाँ और भविष्य के प्रति पारस्परिक प्रतिबद्धता भी आवश्यक हैं? मातृत्व को लेकर लीसा का निर्णय स्त्री की देह और जीवन पर उसके अधिकार का महत्वपूर्ण प्रश्न सामने रखता है। कहानी बदलते समय में विवाह और परिवार की बदलती अवधारणाओं को रेखांकित करती है। अंतिम पंक्ति- 'तो बच्चा कोई एक कैसे पैदा करेगा?' - व्यंग्य के साथ आधुनिक दांपत्य की एक गहरी विडंबना को उजागर करती है। इस प्रकार 'फ़कत रेत' तीन पीढ़ियों के वैवाहिक मूल्यों के अंतर को सामने रखते हुए पाठक को विवाह, स्वतंत्रता, ज़िम्मेदारी और मातृत्व पर नए सिरे से सोचने के लिए विवश करती है।

'बिखरते जज़्बात और इक्कीसवीं सदी' एक संवेदनशील और मनोवैज्ञानिक कहानी है, जो बाल यौन शोषण जैसी गंभीर सामाजिक समस्या को पीढ़िता के मानसिक संघर्ष के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से सामने लाती है। मनोविज्ञान की प्रोफेसर और काउंसलर को सूत्रधार बनाकर लेखिका ने कथा को विश्वसनीय आधार दिया है। आशिमा के चंचल व्यक्तित्व के पीछे छिपे बचपन के भय और पीड़ा का धीरे-धीरे उजागर होना कहानी का सबसे मार्मिक पक्ष है। नौ वर्ष की उम्र में हुए यौन शोषण की स्मृति से वर्षों बाद भी उसका मानसिक रूप से टूटना बताता है कि बचपन के आघात का प्रभाव जीवनभर बना रह सकता है। आशिमा का माता-पिता को सच बताने से डरना उस सामाजिक मानसिकता को उजागर करता है, जहाँ पीढ़िता अक्सर अपराधी के बजाय स्वयं को दोषी मानने लगती है। कहानी की सूत्रधार का उसे निर्णय सुनाने के बजाय माता-पिता से सच साझा करने और विशेषज्ञ की सहायता लेने के लिए प्रेरित करना कथा को मनोवैज्ञानिक संवेदनशीलता और व्यावहारिक दृष्टि प्रदान करता है। कहानी में ख़ाली फोटो फ्रेम एक सुंदर और प्रभावशाली प्रतीक बनकर उभरता है। यह आशिमा के भीतर के

उस ख़ालीपन का प्रतीक है, जो अतीत के दर्द से मुक्त होकर धीरे-धीरे आत्मविश्वास, आशा और जीवन के प्रति विश्वास से भरने लगता है। इस प्रकार कहानी केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि उससे उबरने और जीवन को पुनः अपनाने की उम्मीद भी जगाती है।

'रोशनी का भ्रम' कहानी महानगरों की चकाचौंध के पीछे छिपे बाल-भिक्षावृत्ति के काले सच और मानवीय शोषण का एक बेहद मार्मिक और यथार्थवादी चित्रण है। कहानी में एक तरफ़ जहाँ भूखी बहन के लिए दूध जुटाने की बेबसी है, वहीं दूसरी तरफ़ बाल अपराधियों और गिरोह के सरगनाओं द्वारा मासूमों की मजबूरी का फ़ायदा उठाने का धिनौना रूप है। गिरोह का सरगना जिसे सब मालिक कहते हैं, वह मालिक भीखमंगी औरतों और बच्चियों के साथ दुष्कर्म करते हैं, उनका शोषण करते हैं। शोषितों को लगता है कि दूसरा गिरोह इससे अच्छा होगा, वह सिर्फ़ एक भ्रम है।

'सपनों का इंद्रधनुष' कहानी उच्च शिक्षा के सपनों को सहेजे एक मेहनतकश लड़की (नेहा) के संघर्ष, उसकी ज़िद और सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ़ उसकी जीत का बेहद प्रेरणादायक चित्रण है। कहानी यह दर्शाती है कि यदि किसी ज़रूरतमंद मेधावी छात्र को सही समय पर थोड़ा सा संबल या सामाजिक हस्तक्षेप मिल जाए, तो वह अपनी तकदीर खुद बदल सकता है। यह कहानी समाज के उस वर्ग की उम्मीदों को नया स्वर देती है जहाँ आर्थिक तंगी और पितृसत्तात्मक सोच बेटियों के सपनों का गला घोटना चाहती है। यह संदेश देती है कि समाज के हर वर्ग की 'नेहा' को आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए ताकि उसके सपनों के रंग कभी फीके न पड़ें।

'सरहदों का सन्नाटा' बदलती पीढ़ी के जीवन-मूल्यों, परिवार और संतान के प्रश्न पर केंद्रित एक संवेदनशील कहानी है। पिता की मृत्यु के प्रसंग में कियारा का अपनी माँ के अकेलेपन और अपने भविष्य की संभावित निस्संगता से साक्षात्कार कहानी को भावनात्मक गहराई देता है। कहानी की सबसे

बड़ी विशेषता यह है कि लेखिका ने सैंडविच जेनरेशन और नई पीढ़ी के बीच संस्कारों, संवेदनाओं और आधुनिक जीवन-दृष्टि की टकराहट को प्रभावी ढंग से उभारा है। 'सरहदों का सन्नाटा' शीर्षक कहानी के मूल भाव को सार्थक करता है। एक ओर पारिवारिक परंपराओं और भावनात्मक रिश्तों की सरहदें हैं, तो दूसरी ओर आत्मनिर्भरता और व्यक्तिवाद की दुनिया। अंत में कियारा का मातृत्व को स्वीकार करने का निर्णय उसके भीतर चल रहे द्वंद्व को विराम देता है। हालाँकि कहानी का संदेश कहीं-कहीं प्रत्यक्ष और उपदेशात्मक हो जाता है, फिर भी भावनात्मक प्रसंग, पारिवारिक संबंधों की गरमाहट और भविष्य के अकेलेपन की आशंका इसे विचारोत्तेजक और मार्मिक बनाती है।

'सुई का आलम' कहानी भौतिक सुख-सुविधाओं से सजे आधुनिक घरों और रिश्तों के बीच की भावनात्मक बुनावट को दर्शाती है। कहानी का मूल संदेश यह है कि जिस प्रकार घर के उधड़े हुए कपड़ों या सामान को सिलने के लिए सुई-धागे की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जीवन और रिश्तों में आने वाली दरारों या अनबन को सुधारने के लिए समझदारी, धैर्य और स्नेह रूपी हुनर की जरूरत होती है।

'अधूरे घर की चौखट' तलाक की प्रोसेस और तलाक के बाद माता-पिता के बीच पिसते एक किशोर बच्चे कियान की मानसिक पीड़ा और भावनात्मक अकेलेपन की मार्मिक कहानी है। कियान के चरित्र के माध्यम से कथाकार सुधा जुगरान ने दिखाया है कि माता-पिता का अलगाव केवल पति-पत्नी के रिश्ते को नहीं तोड़ता, बल्कि बच्चे के भीतर उसके घर, रिश्तों और सुरक्षा-बोध को भी खंडित कर देता है। कहानी का सबसे सशक्त पक्ष यह है कि दोनों माता-पिता अपने-अपने अहं और अधिकार की लड़ाई में बेटे के वास्तविक दर्द को नहीं देख पाते। जन्मदिन पर कियान का यह कहना- 'तो मुझे अपना ईगो, अपना अहम दे दीजिए- पूरी कहानी का सार बन जाता है। कहानी का अंत देखिए- 'आई हेट माई बर्थडे आई हेट माई बर्थ' पीछे से

कियान चिल्लाया और भड़ाक से कमरे का दरवाजा बंद कर दिया। उसके सारे प्रश्न बंद दरवाजे के बाहर लटक गए थे। संवेदनशील कथ्य, मनोवैज्ञानिक गहराई और मार्मिक अंत कहानी को प्रभावशाली बनाते हैं।

ये कहानियाँ महानगरों के छद्म विकास, बाल-भिक्षावृत्ति, घरेलू हिंसा, और मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को अत्यंत प्रामाणिक रूप से उजागर करती हैं। कथाकार ने स्त्री-मन के अंतर्द्वंद्व, एकल मातृत्व के संघर्ष, बाल यौन शोषण के आघात और पारिवारिक विघटन से उपजे बच्चों के मानसिक अकेलेपन को गहराई से उकेरा है। कहानियों में थर्ड जेंडर के प्रति संवेदनशीलता, भ्रष्टाचार, और श्रमजीवियों के संघर्षों के माध्यम से एक सशक्त सामाजिक चेतना देखने को मिलती है। सहज, बोलचाल की जीवंत भाषा और सटीक प्रतीकों (जैसे- सुई, खाली फोटो फ्रेम, रोशनी का भ्रम) का प्रयोग इन कथाओं को बेहद प्रभावशाली और विचारोत्तेजक बनाता है। आशा है कि कथाकार सुधा जुगरान के इस नवीन कहानी संग्रह 'औरत के भीतर की औरत' का हिन्दी साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

000

बदलते समाज का आईना

संजीव जायसवाल 'संजय'

कहानी केवल घटनाओं का बयान नहीं होती। वह अपने समय, समाज और मनुष्य के भीतर चल रही हलचलों को पहचानने और उन्हें शब्द देने की कला भी है। अच्छी कहानी पाठक को किसी दूर की दुनिया में नहीं ले जाती, बल्कि उसके आसपास बिखरे जीवन को एक नए कोण से देखने के लिए विवश करती है। सुधा जुगरान का नया कहानी-संग्रह 'औरत के भीतर की औरत' इसी अर्थ में उल्लेखनीय है। शिवना प्रकाशन से 2026 में प्रकाशित इस संग्रह में कुल तेरह कहानियाँ संकलित हैं। इनके शीर्षक- 'अनुत्तरित सवालों की क़ैद में', 'अपने-अपने कुरुक्षेत्र', 'औरत के भीतर की औरत', 'कहा न, डर लगता है', 'चेहरे पर चेहरा', 'नहले पर दहला', 'फ़कत रेत', 'बिखरते जज्बात और इक्कीसवीं सदी',

'रोशनी का भ्रम', 'सपनों का इंद्रधनुष', 'सरहदों का सन्नाटा', 'सुई का आलम' और 'अधूरे घर की चौखट'- ही संकेत दे देते हैं कि लेखिका की निगाह जीवन के अनेक तनावों, विडंबनाओं और मानवीय प्रश्नों पर है।

सुधा जुगरान लगभग तीन दशकों से लेखन में सक्रिय हैं। वागर्थ, पुष्पगन्धा, निकट जैसी विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं के साथ-साथ सरिता, मेरी सहेली, वनिता और गृहशोभा जैसी व्यापक पाठक-वर्ग वाली पत्रिकाओं में भी उनकी चार सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में आठ कहानी-संग्रह और दो उपन्यास शामिल हैं। उनके साहित्य को अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें 'गली आगे मुड़ती है' के लिए साहित्य रत्न अलंकरण, 'मनस्विनी' के लिए जयपुर सम्मान तथा श्री राधा रमण सक्सेना स्मृति पुरस्कार, 'मुक्तिबोध' के लिए शब्द निष्ठा सम्मान और 2025 का उत्तराखंड गौरव-शैलेश मटियानी सम्मान उल्लेखनीय हैं। यह रचनात्मक यात्रा बताती है कि 'औरत के भीतर की औरत' किसी नए-नवेले लेखकीय प्रयास का परिणाम नहीं, बल्कि लंबे अनुभव और निरंतर लेखन से विकसित हुई दृष्टि की अगली कड़ी है।

इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है- सामान्य जीवन के भीतर छिपे असामान्य तनावों को पकड़ना। सुधा जुगरान बड़े-बड़े सामाजिक सिद्धांतों की भाषा में अपनी बात नहीं कहतीं। वे परिवार, विवाह, नौकरी, बच्चों, स्त्री-पुरुष संबंधों, सामाजिक प्रतिष्ठा, अकेलेपन, महत्वाकांक्षा, सत्ता और बदलती जीवन-शैली जैसे हमारे रोज़मर्रा के अनुभवों से कथा-वस्तु ग्रहण करती हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ पाठक से सीधा संवाद स्थापित करती हैं।

'अधूरे घर की चौखट' इसका अत्यंत प्रभावशाली उदाहरण है। कहानी का केंद्र कियान है, जो अपने तलाक़शुदा माता-पिता के बीच किसी एक पक्ष का हिस्सा बनकर नहीं, बल्कि दोनों को अपना मानने वाले बच्चे के रूप में जीता है। माता-पिता के अपने-

अपने तर्क हैं, अपनी पीड़ाएँ हैं और अपने 'अहम' की लड़ाइयाँ हैं, लेकिन इन सबके बीच सबसे अधिक घायल वह बच्चा है जिसकी ओर दोनों अपने-अपने तरीके से प्रेम का दावा करते हैं। कहानी का मार्मिक पक्ष यह है कि तलाक को केवल पति-पत्नी के रिश्ते के टूटने के रूप में नहीं, बल्कि बच्चे की भावनात्मक दुनिया के विखंडन के रूप में देखा गया है। कियान का यह प्रश्न कि माता-पिता ने उसके लिए जीवन आसान किया या कठिन, पाठक के भीतर देर तक गूँजता रहता है। अंत में उसका अपने जन्मदिन के उपहार के रूप में माता-पिता से 'ईगो' माँगना कहानी को एक तीखा और याद रह जाने वाला मोड़ देता है।

'सरहदों का सन्नाटा' में लेखिका ने एक अलग लेकिन उतनी ही समकालीन समस्या को उठाया है। कियारा अपने पिता की मृत्यु के बाद उस भावनात्मक संसार से रू-ब-रू होती है, जिसे आधुनिक जीवन की व्यस्तता में उसने शायद पर्याप्त महत्व नहीं दिया था। कहानी मृत्यु के बहाने परिवार, रिश्तेदारी, संतान और भविष्य के अकेलेपन पर गंभीर प्रश्न खड़े करती है। कियारा को यह अनुभव होता है कि संकट की घड़ी में वही रिश्ते उसके साथ खड़े हैं जिन्हें उसकी पीढ़ी अक्सर बोझ या अप्रासंगिक मानने लगी है। इसी अनुभव से उसके भीतर मातृत्व को लेकर दबा हुआ द्वंद्व भी खुलता है। कहानी किसी उपदेश की तरह नहीं, बल्कि आत्ममंथन की प्रक्रिया के रूप में आगे बढ़ती है।

इस कहानी का एक महत्वपूर्ण पक्ष पीढ़ियों के बीच संवाद है। 'सैंडविच जेनरेशन' की अवधारणा के माध्यम से लेखिका उस पीढ़ी की मानसिक स्थिति को सामने लाती हैं जो एक ओर अपने संस्कारों और पारिवारिक संवेदनाओं से जुड़ी है और दूसरी ओर नई पीढ़ी की स्वतंत्र जीवन-दृष्टि के बीच फँसी हुई है। कियारा के भीतर धीरे-धीरे यह बोध पैदा होता है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता महत्वपूर्ण होने के बावजूद मनुष्य की भावनात्मक जरूरतें भी वास्तविक हैं। कहानी का अंत इसी आत्मबोध

को एक नई दिशा देता है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'औरत के भीतर की औरत' शायद इस पुस्तक के वैचारिक केंद्र को सबसे प्रत्यक्ष रूप में सामने लाती है। एक ऐसी स्त्री, जो शराबी पति, आर्थिक असुरक्षा और बेटियों की जिम्मेदारियों के बीच पिस रही है, उसके भीतर एक दूसरी आवाज़ मौजूद है-वह आवाज़ जो उससे पूछती है कि आखिर वह अपनी नियति को कब तक स्वीकार करती रहेगी। बाहरी परिस्थितियों से समझौता करती 'दुनियादार औरत' और उसके भीतर सवाल उठाती 'औरत' के बीच का संवाद कहानी को विशिष्ट बनाता है।

यहाँ स्त्री-विमर्श किसी नारे में बदलने के बजाय जीवन की ठोस परिस्थितियों से पैदा होता है। पति का शराबी होना, पत्नी की कमाई पर निर्भर रहना, बेटियों की पढ़ाई और भविष्य के लिए माँ का संघर्ष-ये सब ऐसे प्रसंग हैं जिनसे भारतीय समाज का बड़ा वर्ग परिचित है। कहानी की ताकत इस बात में है कि लेखिका स्त्री की विवशता के साथ-साथ उसके भीतर पल रही प्रतिरोध की चेतना को भी पहचानती हैं। 'भीतर की औरत' दरअसल उस आत्मसम्मान और आत्मबोध का प्रतीक है जिसे सामाजिक परिस्थितियाँ दबा तो सकती हैं, समाप्त नहीं कर सकती।

'नहले पर दहला' में कथा का फ़लक निजी जीवन से निकलकर सत्ता, नौकरशाही, राजनीति और स्त्री के पेशेवर संघर्ष तक फैल जाता है। डी. एम. सुलेखा चौधरी का चरित्र महत्वाकांक्षा, संघर्ष, व्यवस्था और समझौते की जटिल यात्रा से गुज़रता है। साधारण आर्थिक पृष्ठभूमि से आई सुलेखा के भीतर आगे बढ़ने की तीव्र आकांक्षा है, लेकिन सत्ता-व्यवस्था की वास्तविकता उसे धीरे-धीरे उस तंत्र का हिस्सा बनने की ओर धकेलती है जिसका विरोध उसने कभी किया था।

कहानी का दूसरा पक्ष और भी महत्वपूर्ण है- सत्ता के गलियारों में महिलाओं की स्थिति। महिला अधिकारी की योग्यता और स्वतंत्रता के बावजूद राजनीतिक संरक्षण, पुरुषवादी मानसिकता और चरित्र पर उठाए

जाने वाले सवाल उसके रास्ते को कठिन बनाते हैं। कहानी में पत्रकार वंदना के माध्यम से यह भी दिखाया गया है कि सफलता के आकर्षण में फँसती युवतियाँ किस प्रकार सत्ता के खेल का हिस्सा बनाई जा सकती हैं। इस तरह कहानी केवल भ्रष्टाचार का आख्यान नहीं रह जाती, बल्कि महत्वाकांक्षा, स्त्री-स्वतंत्रता और व्यवस्था के दबावों के बीच के तनाव को भी रेखांकित करती है।

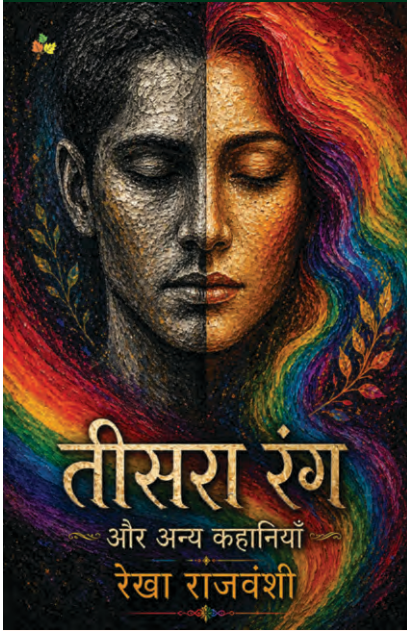
'बिखरते जज़्बात और इक्कीसवीं सदी' जैसी कहानी के संदर्भ में लेखिका आधुनिक संबंधों और बदलती सामाजिक नैतिकता के प्रश्नों से जूझती दिखाई देती हैं। 'सहमति से बने संबंध', सोशल मीडिया, विवाह की बदलती अवधारणा और मातृत्व जैसे प्रश्नों के माध्यम से वे यह पूछती हैं कि आधुनिकता और स्वतंत्रता ने क्या वास्तव में स्त्री को भावनात्मक सुरक्षा भी दी है। यह प्रश्न विशेष रूप से आज के युवा समाज के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

सुधा जुगरान की कहानियों में स्त्री केवल पीड़िता नहीं है। वह निर्णय लेती है, गलती करती है, संघर्ष करती है, टूटती है, फिर अपने भीतर से शक्ति खोजती है। यही इस संग्रह की एक बड़ी उपलब्धि है। लेखिका स्त्री के बाहरी जीवन से अधिक उसके भीतर चलने वाले संवाद को पकड़ने में रुचि रखती हैं। शीर्षक 'औरत के भीतर की औरत' इसी रचनात्मक दृष्टि का सार है।

भाषा की दृष्टि से भी संग्रह की कहानियाँ पाठनीय हैं। लेखिका ने साहित्यिक शब्दाडंबर के बजाय बोलचाल, संवाद और जीवन में प्रचलित शब्दावली का इस्तेमाल किया है। कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द भी सहज रूप में आते हैं, जो पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि और समकालीन जीवन-शैली को स्वाभाविक बनाते हैं। घटनाओं और संवादों के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाने की उनकी प्रवृत्ति पाठक को कहानी से जोड़े रखती है।

कुल मिलाकर 'औरत के भीतर की औरत' सुधा जुगरान के परिपक्व कहानीकार रूप का परिचय देता है।

केंद्र में पुस्तक



(कहानी संग्रह)

तीसरा रंग और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : जसविन्दर कौर बिन्द्रा,

दीपक गिरकर

लेखक : रेखा राजवंशी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

आर-142, प्रथम तल,

ग्रेटर कैलाश-1,

नई दिल्ली- 110048,

मोबाइल- 9868182835

ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

दीपक गिरकर

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,

इंदौर- 452016, मप्र

मोबाइल- 9425067036

ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

आज की सच्चाई

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

हिन्दी की जानी-मानी प्रवासी लेखिका रेखा राजवंशी अपने नवीन कहानी संग्रह 'तीसरा रंग' के साथ पाठकों के सम्मुख उपस्थित हुई हैं। हिन्दी के रचनाकार दुनिया भर में फैले हुए हैं, जिस कारण हिन्दी साहित्य में बहुत विविधता देखने को मिलती है। प्रवासी लेखकों ने अपने नए अनुभवों से इसे और भी विशाल कर दिया है। रेखा राजवंशी पिछले 25 वर्षों से आस्ट्रेलिया में रह कर हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार से जुड़ी हुई हैं। लंबे समय से वहीं बसने के कारण उनकी कर्मभूमि वही है और वहाँ का जीवन और वातावरण उनकी सभी कहानियों की कथा-वस्तु में दिखाई देता है।

इस संग्रह में कुल 11 कहानियाँ शामिल हैं। समकालीन समय में कहानी के आकार से देखा-परखा या विश्लेषित नहीं किया जाता मुख्य बात कथानक और चरित्रों की होती है। देखना यह होता है कि रचनाकार ने कथा-वस्तु के लिए गए विषयों के साथ न्याय किया है या नहीं।

इस संग्रह की कहानियों में शीर्षक अनुसार 'तीसरे रंग' की उपस्थिति मौजूद है। पहले 'तीसरे' को समझ लेते हैं। आम तौर पर प्रेमी-प्रेमिका व पति-पत्नी के लिए एक-दूजे के लिए कहा जाता है। दो से अर्थ सीधा आपसी संपर्क या संबंध जो भी दो व्यक्ति या पक्ष हैं, उनकी साझेदारी या भागीदारी एक समान है। जहाँ भी तीसरे किसी व्यक्ति, मित्र, पक्ष या विचार का आगमन होता है, वहाँ एक जैसे विचार वालों का पलड़ा भारी हो जाता है। 'तीसरे का होना' अर्थात् अपनी मौजूदगी दर्ज कराना। दो में समानता है, बराबर का पलड़ा... तीसरे को या तो किसी पक्ष के साथ जुड़ना पड़ेगा या अपनी अलहदगी का एहसास कराना पड़ेगा।

इस तीसरे की मौजूदगी हम सभी के जीवन में किसी न किसी रूप, किसी न किसी विचार या पक्ष के रूप में सामने आती रहती है। परन्तु लिंग-भेद में स्त्री-पुरुष के स्वतंत्र रूप-विधान, संरचना, शरीरिक गठन के अलावा जो संसार में, जन्म लेता है, उसे कई नामों से पुकारा जाता रहा। हालाँकि पहले उनकी मौजूदगी को परिवार में ही घोर अपमान समझा जाता था। समाज में उन्हें इन्सान न समझने की भूल करने के कारण अत्यन्त बुरे और जलील करने वाले नामों से पुकारा जाता रहा। अब कानूनी तौर पर उसमें कुछ सुधार आया है। मेडिकल ने उस 'तीसरे' को भी विभिन्न तरह से परिभाषित कर बताया कि सभी को एक ही रस्से से बाँध कर देखना या समझना गलत है। इनमें कुछ ट्रांसजेंडर होते हैं और कुछ लेस्बियन और गे होते हैं। मुख्य बात यह है कि अब इस 'तीसरे' की मौजूदगी फिल्मों व साहित्य से निकल कर समाज में, कानूनी तौर पर कदम रख चुकी है। पूरी तरह से तो नहीं परन्तु फिर भी कुछ बदलाव देखने को मिल रहा है। स्वभाव या चरित्र अनुसार देखने पर यह तीसरा रंग 'ग्रे' शेड में देखा-परखा जाने लगा है। हर किसी के स्वभाव में यह ग्रे शेड उसके स्वार्थ या हित साधने के समय अवश्य सामने आ जाता है। कुछ इस प्रकार की बुनावट रेखा राजवंशी की कहानियों में देखने को मिलती है।

ऐसी कथा-वस्तु से संबंधित कहानियों में 'सच्चाई', 'तीसरा रंग', 'अंधेरी सुरंग', और 'पिंजरे

में 'क्रेड' को देखा जा सकता है। परिवार में बड़े बेटे अर्जुन की 'तीसरी' शरीरिक और मानसिक स्थिति को आस्ट्रेलिया में साथ रहते दादा-दादी से भी छिपाया गया। जब रमा-अशोक ने बहू और बेटे के व्यवहार में रुखापन देखा तो वे मायूस होकर कितने वर्षों के बाद भारत लौट आए। परन्तु जब उनकी बेटी प्रीति ने उन्हें अर्जुन की साड़ी पहने, लिपस्टिक लगाए और पायल पहन कर नाचते हुए की तस्वीर दिखाई, तब उन्हें इस 'सच्चाई' का पता लगा। नमन को ऑफिस के पहले ही दिन बहुत आत्मीयता से मिली 'कोनी' से प्यार हो गया, जो दिनों-दिन उसकी सहृदयता और मीठे स्वभाव की मित्रता के कारण बढ़ता गया। परन्तु जब नमन ने उससे प्यार और विवाह का प्रस्ताव रखा तो कोनी अचानक ही नौकरी छोड़ कर चली गई। बाद में उसने ईमेल द्वारा उसे बताया कि वह वास्तव में 'ट्रांसजेडर' है। न पूरी तरह से लड़का और न ही लड़की। जिंदगी के इस 'तीसरे रंग' कारण उसे स्कूल-कालेज में बहुत परेशानियों से जूझना पड़ा परन्तु अब उसे स्वयं को किस शरीर में जाना है, यह स्पष्ट हो गया। अब उसे लंबी मेडिकल प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ेगा। 'अंधेरी सुरंग' के छोटे राजू को इस बात का रती भर भी अंदाजा नहीं था कि उसकी शरारतों और लापरवाही के कारण उसे जिस चोपड़ा सर के पास टयूशन पढ़ने भेजा जा रहा है, उनकी हवस के कारण वह अनजाने में ही किशोरावस्था से एक अंधेरी सुरंग में दाखिल हो चुका हैं। विवाह और बेटे 'आदि' के बाद, पत्नी रानी की सहमति और समझदारी के कारण उसे अंततः साथी के रूप में जॉन मिल गया। 'पिंजरे में क्रेड' जोर्जी को भी ऐसी विकट स्थिति में सोलह वर्ष बिताने पड़े, तब उसे समझ में आया कि वह 'जॉर्ज' के रूप में ही अधिक सुविधाजनक ढंग से जी पायेगी। उसके माँ-बाप को भी लगा कि अब वह आजादी से जी सकेगी। इन सभी कहानियों के पात्र आस्ट्रेलिया के रहने वाले हैं, इसलिए ऐसी विकट परिस्थितियों से निकलने में उनके माँ-बाप और डॉक्टर भी बहुत मदद करते हैं। सभी शिक्षित हैं, वहाँ उन्हें लोकलाज के

कारण न अपने घर से निकाला गया और न ही किन्नर समाज के लोग जबरदस्ती उन्हें घर से उठा कर ले गए। भारत में यह सोच अभी विकसित नहीं हुई। अगर माँ-बाप ऐसे बच्चों पढ़ने भी भेजते हैं तो स्कूल, शिक्षक, सहपाठी और समाज ताने मार-मार कर उनका जीना हराम कर देते हैं। फिर यहाँ इन केसों के लिए न इतनी मेडिकल जानकारी उपलब्ध है और न ही इतनी खर्चीली प्रक्रियाओं को आजमाने की आर्थिक क्षमता। इसलिए भारत या एशिया में ऐसे 'तीसरों' की हालत अभी भी बहुत सुखद व सुविधापूर्ण नहीं हैं।

'थका हुआ सूरज' में बुढ़ापे में पहुँची आरती के रूप में वही भारतीय माँ देखने को मिलती है, जो अपने से अधिक अपने बच्चों का सुख चाहती है। इसीलिए जब उसे पता लगा कि लॉन्ग डिस्टेंस के बाद बेटा आरव और शिल्पी एक साथ रहने लगेंगे तो लगा, जैसे बीमारी कहीं भाग गई हो। और सूरज अभी ढला न हो। 'क्षमा याचना' कहानी भी आस्ट्रेलिया में ही घटती है। परन्तु इस कहानी में योगमाया, महामाया और योग गुरु प्रभु देव जैसे नामों के बावजूद कहानी वास्तव में क्या कहना चाहती है, यह समझ में नहीं आता।

'आखिरी कॉफी' की यामिनी को अपनी मनमर्जी और आजादी से जीवन जीने की क्रीमत चुकाते हुए पति, बच्ची और घर को छोड़ कर वहाँ से निकलना पड़ा। लेकिन वह मुश्किल आर्थिक हालात का सामना करते हुए भी खुश तबीयत रही। बालिग होने पर बेटा उसके साथ रहने लगी। बीमारी के कारण वह अचानक ही संसार से चुपचाप विदा हो गई। यामिनी ने व्यवसायी और बेहद अमीर पति की समृद्धि की बजाय अपने जीवन की चाहत को चुना। 'हजारा सिंह' और 'चोखेलाल' एक प्रकार से संस्मरण या रेखाचित्र भी कहे जा सकते हैं। जिनमें हजारा सिंह जैसे अनेक सिखों और अन्य भारतीय सैनिकों को प्रथम विश्व युद्ध दौरान ब्रिटिश सेना के रूप में लंबे समय तक मोर्चों पर लड़ना पड़ा था। उस युद्ध के बाद जो बच गए, वे वहीं बस गए। इसी तरह माली चोखेलाल के मेहनती होने और परिवार संग अनेक सालों के संबंधों को याद

किया गया। एक कॉफी शॉप में उस जैसा ही वेंटर देखने पर मैं पात्र के मुँह से चोखेलाल का संबोधन निकल गया, जो बाद में उस व्यक्ति का ही बाबा निकला।

रेखा राजवंशी की कहानियाँ बहुत सरल हैं, सीधा-सदा वृत्तांत लिए। सभी कहानियाँ लंबे कालखंड को बयान करती हैं, जिनमें बचपन, जवानी, शिक्षा, विवाह और बुढ़ापा जैसे सभी पड़ाव शामिल हैं। 'तीसरे रंग' वाली कुछेक कहानियों द्वारा भारत के मुकाबले वहाँ के व्यवहार, माहौल की सराहना की जा सकती है। भारतीय स्वभावानुसार भी भारतीय रूप में नजर आते हैं। सरल वृत्तांत की बजाय कहानियों के कथानकों को बदलते माहौल के साथ और पात्रों की मनोस्थिति को कुछ गहराई से पेश करने की अधिक आवश्यकता है।

000

सरोकार और मानवीय संवेदना

दीपक गिरकर

'तीसरा रंग' और अन्य कहानियाँ सुपरिचित प्रवासी कथाकार रेखा राजवंशी का चौथा कहानी संग्रह है। रेखा राजवंशी सिडनी में कई वर्षों से रह रही हैं। वे ऑस्ट्रेलियाई संस्कृति से अच्छी तरह से परिचित होने के बावजूद अपनी भारतीय संस्कृति तथा भारतीय रीति-रिवाजों को नहीं भूलती हैं। रेखा राजवंशी इंडियन लिटरेरी एंड आर्ट सोसाइटी ऑफ ऑस्ट्रेलिया की संस्थापक हैं। आपने साहित्य ऑस्ट्रेलिया, अनन्य ऑस्ट्रेलिया तथा गृहस्वामिनी पत्रिका का संपादन किया है। सिडनी विश्वविद्यालय में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में तथा स्कूली पाठ्यक्रम में आपने कई वर्ष हिन्दी पढ़ाई है। आप कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित हैं। रेखा राजवंशी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इनकी कहानियों में आधुनिकता का बोध है। कहानियों के कथ्यों में विविधता है। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है। जीवन के अनेक तथ्य एवं सत्य इन कथाओं में उद्भासित हुए हैं।

'क्षमा याचना' प्रेम, वियोग, पश्चाताप और क्षमा की शक्ति को केंद्र में रखकर रची गई एक संवेदनशील कहानी है। प्रखर का योगमाया के जीवन में अचानक आना और फिर बिना स्पष्टीकरण के चले जाना उसके विश्वास और भावनात्मक संसार को गहरी चोट पहुँचाता है। वर्षों तक इस पीड़ा को अपने भीतर सँजोए योगमाया विपासना और ध्यान के माध्यम से आत्मिक शांति की तलाश करती है और धीरे-धीरे सांसारिक मोह से विरक्त हो जाती है। वहीं पिता की मृत्यु के बाद महामाया का अकेलापन यह रेखांकित करता है कि भौतिक संपन्नता भी भावनात्मक रिक्तता को नहीं भर सकती। कहानी का सबसे प्रभावशाली मोड़ तब आता है, जब वर्षों बाद प्रखर एक आध्यात्मिक गुरु के रूप में योगमाया के सामने लौटकर अपने अतीत को स्वीकार करता है और उससे क्षमा माँगता है। योगमाया का उसे क्षमा कर देना कहानी का सबसे मार्मिक और सार्थक बिंदु है। यह क्षमा केवल प्रखर को अपराधबोध से मुक्त नहीं करती, बल्कि योगमाया को भी अतीत के उस बोझ से मुक्ति देती है, जिसे वह वर्षों से ढो रही थी। इसीलिए प्रखर की क्षमा-याचना के बाद योगमाया का अपार शांति अनुभव करना कहानी के भावात्मक उत्कर्ष को अत्यंत प्रभावशाली बना देता है।

'थका हुआ सूरज' प्रवासी जीवन, स्त्री के त्याग, पारिवारिक जिम्मेदारियों और जीवन के अंतिम पड़ाव में अकेलेपन की मार्मिक कहानी है। आरती और समीर के प्रेम विवाह से शुरू होने वाली कथा आरती के पूरे जीवन-चक्र को सामने लाती है। ऑस्ट्रेलिया जाकर आरती ने परिवार सँभालने के साथ प्रवासी भारतीय समुदाय को जोड़ने और सामाजिक सरोकारों में सक्रिय भूमिका निभाई। बेटे समीर के विवाह, बच्चों के जन्म और बेटे आरव के संघर्ष के बीच वह निरंतर परिवार के प्रति समर्पित रहती है। लेकिन जीवन के उत्तरार्ध में हृदयाघात और डिमेंशिया जैसी परिस्थितियों के बीच बच्चे अपने जीवन और करियर में व्यस्त होकर दूर चले जाते हैं और आरती अकेली रह जाती है। कहानी का

शीर्षक अत्यंत सार्थक और प्रतीकात्मक है। ढलता हुआ सूरज उस स्त्री के जीवन का प्रतीक बन जाता है, जिसने जीवन भर अपने परिवार और समाज को रोशनी दी, लेकिन अंततः स्वयं थककर अकेली पड़ गई। अंतिम दृश्य में सूरज का लाल से नीले और फिर सलेटी रंग में बदलना आरती के जीवन में उतरती संध्या और धुँधलाती स्मृतियों का अत्यंत मार्मिक बिंब प्रस्तुत करता है।

'हजारा सिंह' प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में रची गई एक मार्मिक कहानी है, जिसमें युद्ध की विभीषिका, प्रवासी जीवन, प्रेम और मातृभूमि की स्मृतियों को संवेदनशीलता से उकेरा गया है। गैलीपोली अभियान में युद्ध की भयावह परिस्थितियों से जूझते हजारा सिंह को अपने गाँव और घर की याद सताती रहती है। बीमारी के दौरान इंग्लैंड में उसकी मुलाकात एडा से होती है, जो आगे चलकर प्रेम और विवाह में बदल जाती है। कहानी का सबसे भावपूर्ण पक्ष हजारा सिंह का अपनी मिट्टी और संस्कृति से जुड़ाव है। वर्षों बाद जब पम्मी उसे गरमा-गरम प्याज और आलू के पकौड़े, हरी चटनी और लस्सी परोसती है, तो यह भोजन उसके लिए केवल स्वाद नहीं, बल्कि अपने वतन, बचपन और गाँव की स्मृतियों का जीवंत अहसास बन जाता है। कहानी प्रभावशाली ढंग से बताती है कि मनुष्य चाहे कितनी भी दूर क्यों न चला जाए, अपनी जड़ों और सांस्कृतिक स्मृतियों से कभी पूरी तरह अलग नहीं हो सकता। 'हजारा सिंह' इसी मानवीय जुड़ाव और देश की मिट्टी की अमिट खुशबू को रेखांकित करने वाली संवेदनशील कहानी है।

'सच्चाई' बदलते पारिवारिक परिवेश, सास-बहू के रिश्तों और आधुनिक जीवन की बढ़ती आपाधापी से उपजे मानसिक तनाव को संवेदनशीलता से प्रस्तुत करने वाली मार्मिक कहानी है। कहानी की शुरुआत रमा की इस चिंता से होती है कि उनकी बहू शिखा का व्यवहार अचानक उनके प्रति बदल गया है। उन्हें लगता है कि शायद बहू उनसे नाराज़ है, लेकिन धीरे-धीरे वास्तविकता सामने आती है कि शिखा किसी दुर्भावना से नहीं, बल्कि घर-

परिवार, बच्चों और अपने डिजाइनर बुटीक की दोहरी जिम्मेदारियों के दबाव से मानसिक रूप से थक चुकी है। कहानी का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह रिश्तों में आने वाली दूरियों को केवल मनमुटाव या नफ़रत का परिणाम नहीं मानती, बल्कि समयाभाव, जिम्मेदारियों और मानसिक थकान को भी उसका कारण मानती है। शिखा के माध्यम से कहानी आज की कामकाजी स्त्री के उस अदृश्य संघर्ष को सामने लाती है, जो घर और व्यवसाय दोनों को सँभालते हुए स्वयं के लिए समय नहीं निकाल पाती। 'सच्चाई' का मूल संदेश यही है कि रिश्तों को समझने के लिए केवल व्यवहार को देखना पर्याप्त नहीं, बल्कि उसके पीछे छिपी परिस्थितियों को समझना भी आवश्यक है। कई बार खामोशी के पीछे नाराज़गी नहीं, बल्कि थकान होती है और दूरी के पीछे उपेक्षा नहीं, बल्कि जीवन की विवशताएँ। यही संवेदनशील दृष्टि कहानी को सार्थक और प्रासंगिक बनाती है।

'तीसरा रंग' प्रेम, लैंगिक पहचान और सामाजिक स्वीकृति के जटिल प्रश्नों को संवेदनशीलता के साथ उठाने वाली कहानी है। ऑस्ट्रेलिया के सिडनी में नमन की मुलाकात कोनी से होती है। साथ काम करते-करते दोनों के बीच दोस्ती और फिर प्रेम का रिश्ता विकसित होता है। नमन के लिए यह प्रेम सहज, स्वाभाविक और भविष्य के सपनों से जुड़ा हुआ है, लेकिन कहानी अचानक एक अप्रत्याशित मोड़ लेती है, जब कोनी नौकरी छोड़कर नमन से दूर चली जाती है और ई-मेल के माध्यम से बताती है कि वह इंटरसेक्स है। कोनी का यह निर्णय उसके भीतर के द्वंद्व और सामाजिक वास्तविकता को सामने लाता है। वह नमन से प्रेम करती है, लेकिन अपनी लैंगिक पहचान और उससे जुड़ी सामाजिक जटिलताओं के कारण विवाह को संभव नहीं मानती। दूसरी ओर, नमन के लिए यह अनुभव प्रेम की उस अनदेखी दुनिया से उसका सामना कराता है, जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी। कहानी का शीर्षक 'तीसरा रंग' प्रतीकात्मक है, जो प्रेम और लैंगिक पहचान के उन विविध आयामों की ओर संकेत करता

है, जिन्हें समाज अक्सर स्वीकार करने में संकोच करता है। कहानी प्रेम को केवल स्त्री-पुरुष के पारंपरिक दायरे में सीमित न मानकर उसकी व्यापक मानवीय संवेदना को सामने लाती है। यह रचना पाठक को सोचने के लिए विवश करती है कि क्या प्रेम की सार्थकता केवल विवाह में है या किसी व्यक्ति की पहचान और उसकी भावनाओं को स्वीकार करने में भी। यही प्रश्न कहानी को संवेदनशील और विचारोत्तेजक बनाता है।

'अँधेरी सुरंग' एक साहसिक और संवेदनशील कहानी है, जो बाल्यावस्था में हुए यौन शोषण से व्यक्ति के मनोविज्ञान और उसके दीर्घकालिक प्रभावों को केंद्र में रखती है। बचपन में शिक्षक द्वारा किया गया शोषण सूत्रधार के विश्वास और मानसिक संसार को गहरी चोट पहुँचाता है, जिसका प्रभाव उसके वयस्क जीवन और वैवाहिक संबंधों पर भी दिखाई देता है। कहानी का शीर्षक 'अँधेरी सुरंग' उसके भीतर के उस मानसिक अँधेरे का प्रतीक है, जिसमें वह अपने अतीत, लैंगिक पहचान और रिश्तों को लेकर लंबे समय तक असमंजस और भय में भटकता रहता है। रानी के साथ उसके जटिल वैवाहिक संबंध तथा जॉन और डॉक्टर स्मिथ से जुड़े प्रसंग आधुनिक रिश्तों, दैहिक स्वतंत्रता और पारंपरिक विवाह की सीमाओं पर विचार करने को विवश करते हैं। कहानी का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि सूत्रधार और रानी अंततः अपने संबंधों को छिपाने के बजाय स्वीकार करने का निर्णय लेते हैं। यह निर्णय उस अँधेरी सुरंग से बाहर निकलने की उनकी कोशिश है, जिसमें वे वर्षों से घुटन और छिपाव के साथ जी रहे थे। बाल यौन शोषण, लैंगिक पहचान, दैहिक स्वतंत्रता और रिश्तों की जटिलता जैसे गंभीर प्रश्नों को संवेदनशीलता से उठाती यह कहानी अंततः इस विचारोत्तेजक प्रश्न के साथ पाठक को छोड़ जाती है, क्या सच को स्वीकार कर लेना ही उस अँधेरी सुरंग के अंत में दिखाई देने वाली पहली रोशनी है?

'चोखेलाल' स्मृतियों, मानवीय संबंधों और समय के साथ बदलती जिंदगी के बीच

रिश्तों की आत्मीयता को रेखांकित करने वाली मार्मिक कहानी है। कहानी की सूत्रधार एक रेस्टोरेंट में काम कर रहे एक बेरे को देखकर अपने पुराने परिचित चोखेलाल को याद करती है। चोखेलाल माली का काम करने के साथ-साथ उनके घर के छोटे-बड़े कामों में हाथ बैठाता था। उसकी सादगी, कर्मठता और आत्मीय व्यवहार ने सूत्रधार के मन में उसके लिए एक विशेष स्थान बना लिया था। पति के स्थानांतरण के बाद चोखेलाल से बिछोह और फिर उसकी मृत्यु का समाचार सूत्रधार को भीतर तक दुखी कर देता है। समय बीतता है, लेकिन चोखेलाल की स्मृतियाँ उसके मन में जीवित रहती हैं। कहानी का सबसे मार्मिक क्षण तब आता है, जब रेस्टोरेंट का बेरा स्वयं को चोखेलाल का पोता बताता है। सूत्रधार को अचानक महसूस होता है कि दुनिया सचमुच बहुत छोटी है और समय की लंबी दूरी भी रिश्तों और स्मृतियों को पूरी तरह मिटा नहीं पाती। कहानी का अंत विशेष रूप से प्रभावशाली है। सूत्रधार उस युवक से कुछ नहीं कहती, केवल उसे टिप देकर वहाँ से निकल जाती है। उसका मौन बहुत कुछ कह जाता है। शायद वह उस क्षण को शब्दों में बाँधकर उसकी आत्मीयता को छोटा नहीं करना चाहती। 'चोखेलाल' इस तरह स्मृति, बिछोह और अनकहे मानवीय संबंधों की एक संवेदनशील कहानी बन जाती है, जिसका सहज और अनकहा अंत पाठक के मन में देर तक बना रहता है।

'आखिरी कॉफ़ी' एक ऐसी मार्मिक कहानी है, जो वैवाहिक संबंधों, स्त्री की स्वतंत्रता की आकांक्षा और परिवार के प्रति ज़िम्मेदारियों के बीच पैदा होने वाले द्वंद्व को संवेदनशीलता से सामने रखती है। यामिनी का चरित्र केवल एक महत्वाकांक्षी या स्वतंत्र स्त्री का नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व और पहचान की तलाश में भटकती उस स्त्री का प्रतीक है, जो घर की सीमाओं से बाहर निकलकर अपने लिए एक अलग दुनिया बनाना चाहती है। दूसरी ओर विकास परिवार और दांपत्य की पारंपरिक ज़िम्मेदारियों को प्राथमिकता देता है। दोनों के बीच संवादहीनता धीरे-धीरे रिश्ते

को विघटन की ओर ले जाती है। कहानी का सबसे मार्मिक पक्ष यह है कि तलाक के बाद भी विकास यामिनी की बीमारी में उसके साथ खड़ा रहता है। यह बताता है कि रिश्ते कागज पर समाप्त हो सकते हैं, लेकिन भावनात्मक संबंध हमेशा समाप्त नहीं होते। यामिनी का अंततः अकेलेपन और मानसिक अस्थिरता में खो जाना कहानी को एक गहरी विडंबना प्रदान करता है।

'पिंजरे में कैद' एक संवेदनशील और महत्वपूर्ण कहानी है, जो नॉन-बाइनरी पहचान, लैंगिक अस्मिता और आत्मस्वीकृति के प्रश्न को केंद्र में रखती है। जॉर्जी का अपनी पहचान को समझने और स्वीकार करने का संघर्ष उस सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रश्नचिह्न लगाता है, जो व्यक्ति को केवल स्त्री या पुरुष की पारंपरिक सीमाओं में बाँधकर देखती है। पर्ल के प्रति उसका प्रेम उसके भीतर छिपी भावनाओं को सामने लाता है और यहीं से उसकी आत्म-पहचान की यात्रा शुरू होती है। कहानी में डॉक्टर का कथन- यह तो खुशी की बात है कि जॉर्जी ने अपने आप को पहचान लिया है। कथानक में एक सकारात्मक मोड़ लाता है, हालाँकि जॉर्जी की पहचान को सीधे लड़का बनने से जोड़ना कहानी में एक अलग विमर्श भी पैदा करता है। कहानी जॉर्जी के भीतर चल रहे मौन संवादों, मानसिक संघर्षों और सुख-दुःख की संवेदनशील अभिव्यक्ति है। अंत में 'सालों से बंद पिंजरा अब खुल गया है और मैं एक आज़ाद पंछी की तरह आसमान में उड़ रहा हूँ' जॉर्जी की मुक्ति और आत्मस्वीकृति का प्रभावशाली प्रतीक बन जाता है। कहानी का मूल संदेश यही है कि मनुष्य की सबसे बड़ी स्वतंत्रता अपने वास्तविक अस्तित्व को पहचानने और उसे बिना भय के स्वीकार करने में है।

'अंकल सैम' मानवीय रिश्तों, स्मृतियों और उस आत्मीयता की कहानी है, जो कभी-कभी रक्त संबंधों से भी अधिक गहरी होती है। बचपन में माँ और फिर पिता को खो चुका सूत्रधार जब जीवन में अकेला पड़ जाता है, तब उसके पिता के मित्र समरजीत, जिन्हें वह

स्नेह से अंकल सैम कहता है, उसके जीवन में अभिभावक और संरक्षक की भूमिका निभाते हैं। विभाजन की त्रासदी से गुजर चुके अंकल सैम का चरित्र कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है। वे सूत्रधार को ऑस्ट्रेलिया बुलाकर न केवल रोजगार देते हैं, बल्कि उसके जीवन को एक नई दिशा भी प्रदान करते हैं। रानी, आर्या और आरव के रूप में मिले परिवार के पीछे अंकल सैम का स्नेह और सहयोग ही उसकी नई जिंदगी की आधारशिला बनता है। इस अर्थ में वे सूत्रधार के जीवन के वास्तविक निर्माता और संरक्षक हैं। कहानी का आरंभ अंकल सैम की मृत्यु से होना और अंत में सूत्रधार का यह अनुभव करना कि अंकल सैम के गुजरने से मैं अनाथ हो गया कथा का सबसे मार्मिक भाव है। वृद्धावस्था, अकेलेपन और भावनात्मक रिक्तता का पक्ष भी कहानी में प्रभावी ढंग से उभरता है। अंकल सैम का अपने अंतिम संस्कार की व्यवस्था पहले से कर लेना और धीरे-धीरे अपने मित्रों को खोते जाना आधुनिक जीवन की उस विडंबना को सामने लाता है, जहाँ आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद मनुष्य भावनात्मक रूप से अकेला पड़ जाता है। इस प्रकार 'अंकल सैम' रक्त संबंधों से परे आत्मीय रिश्तों की गरिमा और स्मृतियों की अमिट शक्ति को रेखांकित करने वाली एक संवेदनशील और मार्मिक कहानी बन जाती है। 'अंकल सैम' मानवीय रिश्तों, स्मृतियों और उस आत्मीयता की कहानी है, जो कभी-कभी रक्त संबंधों से भी अधिक गहरी होती है। बचपन में माँ और फिर पिता को खो चुका सूत्रधार जब जीवन में अकेला पड़ जाता है, तब उसके पिता के मित्र समरजीत, जिन्हें वह स्नेह से अंकल सैम कहता है, उसके जीवन में अभिभावक और संरक्षक की भूमिका निभाते हैं। विभाजन की त्रासदी से गुजर चुके अंकल सैम का चरित्र कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है। वे सूत्रधार को ऑस्ट्रेलिया बुलाकर न केवल रोजगार देते हैं, बल्कि उसके जीवन को एक नई दिशा भी प्रदान करते हैं। रानी, आर्या और आरव के रूप में मिले परिवार के पीछे अंकल सैम का स्नेह और सहयोग ही उसकी नई जिंदगी की

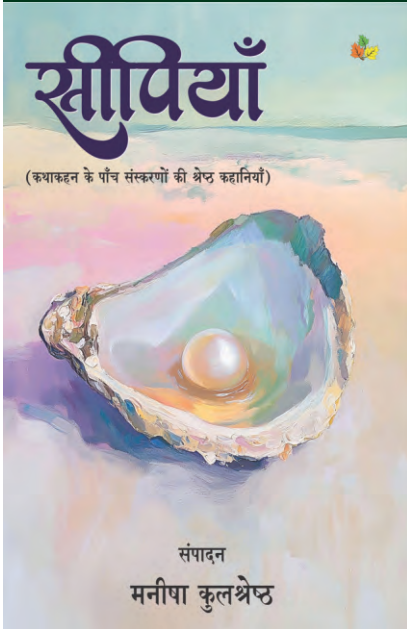
आधारशिला बनता है। वृद्धावस्था, अकेलेपन और भावनात्मक रिक्तता का पक्ष भी कहानी में प्रभावी ढंग से उभरता है। अंकल सैम का अपने अंतिम संस्कार की व्यवस्था पहले से कर लेना और धीरे-धीरे अपने मित्रों को खोते जाना आधुनिक जीवन की उस विडंबना को सामने लाता है, जहाँ आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद मनुष्य भावनात्मक रूप से अकेला पड़ जाता है।

इन कहानियों में ऑस्ट्रेलिया और प्रवासी भारतीय जीवन की पृष्ठभूमि बार-बार सामने आती है। कथाकार रेखा राजवंशी ने प्रवासियों के अकेलेपन, सांस्कृतिक जड़ों, पारिवारिक विघटन और नई सामाजिक परिस्थितियों को संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया है। लेखिका की कहानियों का मूल आधार मनुष्य और उसके भीतर की संवेदनाएँ हैं। प्रेम, बिछोह, अकेलापन, स्मृति, पश्चाताप, क्षमा, मातृत्व और पारिवारिक संबंध उनकी कहानियों के प्रमुख भाव हैं। वे बाहरी घटनाओं की अपेक्षा उनके कारण उत्पन्न होने वाली आंतरिक मनःस्थितियों को अधिक महत्व देती हैं। कथाकार की कहानियों में रिश्ते स्थिर नहीं हैं, बल्कि समय और परिस्थितियों के साथ बदलते रहते हैं। पति-पत्नी, माँ-बेटी, प्रेमी-प्रेमिका, मित्रता और पारिवारिक संबंधों में आने वाली दूरियों और निकटताओं को उन्होंने कथ्य बनाया है। 'आखिरी कॉफी' में दांपत्य संबंधों का विघटन, 'सच्चाई' में सास-बहू के रिश्ते की गलतफ़हमी और 'चोखेलाल' में आत्मीय मानवीय संबंधों की स्मृति इसका उदाहरण हैं। लेखिका केवल निजी जीवन की कहानियाँ नहीं लिखतीं, बल्कि समकालीन समाज के ज्वलंत प्रश्नों को भी अपनी कहानियों में स्थान देती हैं। 'पिंजरे में क्रैद' में लैंगिक पहचान और आत्मस्वीकृति, 'तीसरा रंग' में इंटरसेक्स पहचान और प्रेम, 'अंधेरी सुरंग' में बाल यौन शोषण और उसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव तथा 'थका हुआ सूरज' में वृद्धावस्था और अकेलापन जैसे विषय सामाजिक संवेदनशीलता को दर्शाते हैं। इन कहानियों में स्त्री पात्र केवल घटनाओं की शिकार नहीं हैं,

बल्कि वे अपने निर्णय लेने वाली और परिस्थितियों से जूझने वाली व्यक्तित्ववान स्त्रियाँ हैं। लेखिका स्त्री के भीतर के अकेलेपन, त्याग, भावनात्मक संघर्ष और आत्मनिर्णय की इच्छा को सामने लाती हैं। उनकी स्त्री पात्र पारंपरिक भूमिकाओं से बाहर निकलकर अपने अस्तित्व को तलाशती दिखाई देती हैं। लेखिका की कई कहानियों में बाहरी घटनाओं से अधिक महत्व पात्रों के मन के भीतर चलने वाले द्वंद का है। 'क्षमा याचना' में योगमाया का अतीत और प्रखर का अपराधबोध, 'अंधेरी सुरंग' में बाल्यकाल के आघात का प्रभाव और 'पिंजरे में क्रैद' में जॉर्जी के मौन संवाद इसके उदाहरण हैं। इस दृष्टि से उनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक यथार्थ की कहानियाँ कही जा सकती हैं। कहानियों में अतीत और वर्तमान के बीच निरंतर आवाजाही दिखाई देती है। कोई वर्तमान घटना पात्र को अतीत की स्मृतियों में ले जाती है और फिर वही स्मृतियाँ वर्तमान को नया अर्थ देती हैं। 'क्षमा याचना' और 'अंकल सैम' में यह तकनीक विशेष रूप से प्रभावी है। लेखिका कई बार कहानी का निष्कर्ष सीधे देने के बजाय पाठक के लिए छोड़ देती हैं। 'चोखेलाल' में सूत्रधार का मौन और 'अंकल सैम' में 'अनाथ हो जाने' का भाव पाठक के भीतर लंबे समय तक बना रहता है। उनके अंत अक्सर पाठक को कहानी से आगे सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। इन कहानियों को मुख्यतः सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, भावात्मक, प्रवासी और समकालीन सरोकारों की कहानियाँ कहा जा सकता है।

कथाकार रेखा राजवंशी की कहानियाँ प्रवासी जीवन और समकालीन समाज की पृष्ठभूमि में मनुष्य के भीतर के अकेलेपन, टूटन, संघर्ष और आत्मस्वीकृति की कहानियाँ हैं, जिनमें सामाजिक सरोकार और मानवीय संवेदना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। आशा है कि कथाकार रेखा राजवंशी के इस नवीन कहानी संग्रह 'तीसरा रंग' और अन्य कहानियाँ का हिन्दी साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

केंद्र में पुस्तक



(कहानी संकलन)

सीपियाँ

समीक्षक : डॉ. मधु संधु, दीपक
गिरकर

संपादक : मनीषा कुलश्रेष्ठ

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मग

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु

13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल,
जी. टी. रोड, अमृतसर 143104, पंजाब
मोबाइल- 8427004610
ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

दीपक गिरकर

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016, मग
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

कहानियों का उत्कृष्ट चुनाव

मधु संधु

मनीषा कुलश्रेष्ठ हिन्दी कहानी- जगत् का जाना- पहचाना नाम है। मनीषा बहुपठित साहित्यकार हैं। विज्ञान में स्नातक और हिन्दी साहित्य में एम. ए. और एम. फिल. हैं। 'कठपुतलियाँ', 'कुछ भी तो रूमानी नहीं', 'बोनी होती परछाई', 'केयर आफ स्वात घाटी', 'गंधर्व गाथा' उनके कहानी संग्रह हैं और 'शिगाफ़', 'शालभंजिका', 'पंचकथा', 'स्वप्नपाश', 'मल्लिका', 'शोफिया' उनके उपन्यास। वेबपत्रिका 'हिन्दी नेस्ट' का ग्यारह वर्षों तक सम्पादन कर चुकी हैं। 'हिन्दी समय. कॉम' और 'संगमन. कॉम' वेबसाइट और अनुवाद कार्य से भी वे सम्बद्ध रही हैं।

'सीपियाँ' संकलन में 'कथाकहन' के पाँच संस्करणों से निकली तराशे हुये लेखकों की सत्रह मँजी कहानियों की बिसात है- जिस पर जीवन बिछा है। मूलतः 'कथा कहन' कथा साहित्य की बारीकियों से जुड़ा साहित्यिक शिविर या कार्य शाला है, जो आमतौर पर जयपुर के 'कनौता' कैंप रिजॉर्ट में आयोजित किया जाता रहा है। सीपियाँ समुद्र में रहने वाले नरम शरीर वाले जीवों का कठोर बाहरी आवरण या कंकाल होता है जो बाद में लहरों के साथ तट पर आ जाता है। ठीक ऐसे ही यहाँ मन के कोमल भावों, परिवेश, सरोकारों, मूल्यों के बदलाव की आयरनी का कहानी विधा में चित्रण है। लिखती हैं- 'मैं कथाकहन की इस छः बरस लंबी यात्रा में मिले मोती पाठकों को सौंपती हूँ।'

गजाल जैगम की 'अल अतश- अल अतश' इराक की फुरात नदी के साहिल पर होकर भी प्यास से बिलबिला रहे अहमद की कहानी है- 'प्यास के मारे मेरे हलक़ में काँटे पड़ गए हैं। मैं पानी के चश्में की तरफ़ लपकता हूँ और नमक की झील में धँसता चला जा रहा हूँ।'

परिवार को आर्थिक संपन्नता देने के लिए घर का बड़ा लड़का अपना गाँव, वतन, परिवार, प्रेमिका/पत्नी को छोड़ ईरान की नमक की झील में काम करके पैसे कमाने निकलता है और उसकी अपनी जिंदगी का नमक खत्म होने लगता है। ईरान में काम बंद होने पर इराक की सरज़मीं पर टक्करें मारता है और फिर सऊदी अरब के तेल के तेज़ाबी महक वाले कुओं में बँधुआ मजदूर बन काम करता है। पासपोर्ट मालिक के पास है, न वह वीज़ा लगाने दे, न वह वतन लौट सके। वह हर महीने पैसे भेजता है, बहनों की शादी, भाइयों के घर, ज़मीन, ऐशो-आराम के लिए और स्वयं चूहों की तरह छुप- छुपकर रात के अँधेरे में काम के लिए निकलता है। वह प्रवास की कुर्बानी झेल रहा है, सिवाय प्रेयसी/ पत्नी शालिनी के, किसी को उसकी चिंता नहीं, लौट आने का इंतज़ार नहीं।

सरिता निर्झरा की 'गहना' में वेश्या का अन्तर्मन और अंतर्द्वंद्व है। पूर्वांचल (मेदिनीपुर) की तेरह वर्षीय बच्ची शहर में घरेलू कामकाज के लिए आती है और सोनागाच्छी की बदनाम गलियों में 'गहना' बन पहुँच जाती है- गहना जिसे हर कोई कुछ देर के लिए अपने शरीर पर पहनना चाहता है। तेईस वर्षीय देह व्यापार से जुड़ी युवती नहीं जानती कि प्रेम क्या है? अपने डाकिये ग्राहक के गलत पते का एक अवितरित प्रेमपत्र पढ़कर वह उस युवक अबीर की प्रेमिका अमू से अपना तादाम्य कर प्रेमी मन के विरह की तड़प को महसूसने लगती है। पत्रों के आदान-प्रदान का खेल भी चलता है और मिलन स्थल भी निर्धारित हो जाता है। लेकिन मन कहता है कि वह बाज़ारू है, वेश्या है, पर धोखेबाज़ नहीं हो सकती। प्रेम पाने का यह तरीका गलत है और अबीर से मिलने से पहले ही वह नवमी को दुर्गा माँ के विसर्जन के साथ ही अपना शरीर विसर्जित कर देती है।

सोनू यशराज की 'ठप्पा' की चिति को पंद्रह की उम्र में पता चलता है कि उसके शरीर में यूट्रेस नहीं है और उसकी जीवनधारा बदल जाती है, परिवार वालों का रवैया भी। एक एंजिबिशन में वह अपनी ग्यारह वर्ष पुरानी फोटो देखती है और फोटोग्राफर द्वारा ख़ूबसूरत कहे और माने जाने पर उसकी मनः स्थिति बदल जाती है, फोटोग्राफर शादी की बात करता है तो मन

झूम उठता है, सृष्टि की हर शै जादूभरी लगती है, प्रेम और सहृदयता उसे बेचारी के ठप्पे से मुक्त कर देते हैं।

उषा दशोरा की 'तुम्हारा रणवीर' मनोवैज्ञानिक चिंतन की पृष्ठभूमि लिए है। यह उस युवक की कहानी है जिसके बचपन को माता-पिता की अनबन, पिता की विवाहेतर प्रेम तथा बच्चे के प्रति स्नेह हीनता उसका बचपन ही कुचल देते हैं। वह एगोराफोबिया रोग से पीड़ित हो जाता है। पिता की मृत्यु के बाद वह स्थिति का सामना कर जैसे ही अपने मन की बात आभा के समक्ष रखता है, वह बहुत कुछ रोगमुक्त हो जाता है। कहानी में एक पंक्ति की आवृत्ति 'बरसों बाद किसी के पास साबुत लौट पाना मिथ्या व्याकरण है।' जीवन की सच्चाई भी है और कहानी के शिल्प को आवर्तक शिल्प का स्पर्श भी देती है।

श्रद्धा आढ़ा की 'एक बिरहन की बात' में दुख के सरोवर में छटपटा रही औरत की जात हैं। पति अगर सलोनी के पिता जैसा है तो पत्नी को लंबे समय तक मायके में बैठा प्रताड़ित करेगा और अगर पारो चाची के पति जैसा प्रेम में बावरा है तो गौतम बुद्ध की तरह वियोग की प्रताड़ना देगा, झुलसती धूप सा जीवन बना देगा और ससुराल वाले भी उसे हर अधिकार से वंचित ही रखेंगे। समाज का हाल यह है कि परित्यक्ता को विधवा की तरह बहिष्कृत रखेगा और सधवा की तरह व्रत त्योहार की अपेक्षा करेगा।

डॉ. ज्योत्सना मिश्र की 'रेन बो' एक धाकड़ नर्स की चुलबुली, समझदार, संवेदनशील बेटी की कहानी है। गर्भ ठहरने पर इंचार्ज डॉक्टर, रेजीडेंट डॉक्टर, ड्राईवर- सब से उसका नाम जोड़ा जाता है, लेकिन उसकी शादी एक मामूली सहायक कर्मचारी रघु से कर माँ साख बचा लेती है। वह चार साल हॉस्टल में रहकर नर्सिंग करती है। पति की किन्नर बहन की आर्थिक सहायता का बदला उसकी अगाध सेवा से चुकाती है। इसी बीच लेखिका रहस्य खोलती है कि किन्नर रघु को किन्नर समूह लेने आ धमकता है तो वह उसकी शारीरिक पूर्णता की बात कर उसे बचा लेती है, यहाँ तक कि उसके भाई के संसर्ग में

आ रघु जैसे बच्चे को भी जन्म देती है। तीन एक जैसे चेहरों की मुस्कान मानों सुंदर सतरंगे इंद्रधनुष का सृजन कर देती है।

गायत्री मनचन्दा 'पल दो पल का साथ' में लंदन के म्यूजियम में प्रेम की मूर्ति वेनिस के स्टेच्यू और स्त्री की स्थिति की बात करती है। यह प्रतिमा 100 या 200 बी सी पुरानी है, लेकिन स्त्री के लिए समाज में कुछ भी नहीं बदला। वह तब भी एक कोमोडिटी थी और आज भी उसकी वही स्थिति है। वह तब भी अपनी मर्यादा को मलिन होने से बचा रही थी और अब भी। लंदन आई भारतीय युवती और ब्रिटेन की स्त्री सब समान रूप में इस दर्द को झेल रही हैं।

प्रशांत बेवार की 'कनौता कैम्प से आई एक चिट्ठी' संकलन की लंबी कहानियों में से एक है। एक औरत का दर्द यहाँ इस प्रकार मुखरित हुआ है कि इसे स्त्री विमर्श की कहानी कह सकते हैं। उज्जैन की उच्चमध्यवर्गीय छाया अपनी पच्चासवीं वर्षगाँठ पर जयपुर में तीन दिन का कनौता कैम्प लगाती है। प्राकृतिक सान्निध्य और यहाँ के उन्मुक्त पल उसे तरोताजा कर देते हैं। वह गाती है, नाचती है, बतियाती है। तीन दिन जी भर कर जीवन जीती है। घर में पति और पुत्र केवल उसकी गलतियाँ बताते या उसकी बात काटा करते थे। संवाद की स्थिति कभी आ ही नहीं पाई और माँ/पत्नी के लिए उनके पास समय भी नहीं था। वह सिर्फ व्यवस्था थी और घर ऐसे रहा जैसे खंडहर में चमगादड़ भाग रहे हों। वापसी पर भी वह बस का लंबा रूट चुनती है, ताकि उस प्राकृतिक सौंदर्य का रसास्वादन ले सके। लेकिन बस दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो जाती है। कनौता में ही वह निमकी नाम से एक पत्र अपने घर, अपने को ही पोस्ट करती है। यह शायद उसका इस समय को शाश्वत बनाने का उपक्रम था। पत्र पढ़कर उसका छब्बीस वर्ष का बेटा भी अपराधबोध से भर जाता है। कहानी में संस्मरण शैली, पत्र शैली, आत्मकथात्मक शैली का सम्मिश्रण है।

ऐश्वर्य मोहन गोहराना की 'नई जमींदारी' में बड़ी जमींदारी को न सँभाल पाने की

विडम्बना और शहर में आई-रिक्शा भाड़े पर देने का काम खोलने का जिक्र है। आज जमीन माँ नहीं रही, संपति हो गई है। खेती को कबाड़ मानने वाले जड़ जमीं से ही कट रहे हैं। पूर्वी ठक्कर की 'मेरे खेत मेरे स्वजन' में परा शक्ति का जिक्र है।

विनोद पुरोहित की 'ये एक कुएँ की मौत नहीं है' में पाइप लाइन बिछ जाने और सरकारी नल के आ जाने से गाँव का कुआँ बेकार और बेहाल हो जाता है। कालांतर में उसे पूर दिया जाता है।

'यह महज एक कुएँ की मौत नहीं है, यह विश्वास की मौत है, यह कितने ही रिश्तों की मौत है। उस संस्कृति की मौत है।'

डॉ. पूनम सिन्हा श्रेयसी की 'कन्फेशन' अँधेरे-उजाले, प्रेम-घृणा के तिलिस्म की कहानी है। यहाँ मृत्यु की दहलीज पर खड़ी माँ बेटे के सामने कन्फेशन कर रही है। शोभा लिम्बू की 'कांछा दाज्यू' में नेपाल से काम-धंधे की खोज में भारत के सीमांत ग्राम में आए उस व्यक्ति का अंकन है, जो शरणदाता परिवार का भाई- बेटा और बच्चों का प्रिय मामू बन जाता है, सरकारी नौकरी और फिर पेंशन पाता है और यहीं का होकर रह जाता है।

घनश्याम आसूदानी की 'तीसरी उम्र' स्त्री जीवन के तीन पड़ावों को लेकर है। पहली उम्र मायके में बीतती है- बचपन- किशोरावस्था- जिसे नम्रता ने अपने गाँव के भरे-पूरे परिवार में, खुले- फैले घर में उत्सव- त्योहारों की मौज के साथ बिताया था। उम्र का दूसरा पड़ाव शादी, मुंबई के दो कमरों के घर में बीतता है। इस पड़ाव को भी मन वर्षों की मेहनत से स्वीकार पाता है। अब शादी के बाद बेटा उसे बंगलौर ले जा रहा है और वह सोचती है क्या उसके पास इतना वक्त बचा होगा कि वह उस नए शहर के नए घर को अपना बना सके। आज भी उसके मन में गाँव का घर, श्रावण में मनाया जाने वाला थधड़ी के त्योहार, तीजड़े और दीवाली रचे- बसे हैं।

पल्लवी गर्ग की 'मिन्नी का ढाबा' में प्रेस रिपोर्टर वान्या है। चुन्ना जी जैसे भद्र और आदर्श पुरुष हैं, जो आधी रात को सुनसान में अकेली छूट गई युवती के संरक्षक बन उसे

गुंडों से बचाते हैं, सही रास्ता दिखाते हैं और मनुष्य को मनुष्य बने रहने का संदेश देते हैं। मीडिया को भी मानवता के संरक्षकों को पहचानने की आवश्यकता है। मनीष समलैंगिक है। लेकिन समलैंगिकता बीमारी नहीं है, आज इसे समाज स्वीकारने लगा है।

डॉ. देव कन्या ठाकुर की 'भोजन माता' में दलित विमर्श है। पढ़ लिख कर दलित वंशीराम हैड मास्टर हो जाता है और लापरवाह पंडित खीसीराम चपरासी। प्रश्न यह है कि स्कूल की भोजन माता किस जाति की हो। दलित के हाथ का बना खाना स्वर्ण नहीं खाना चाहते और स्वर्ण के हाथ का बना खाना खाने के लिए दलित तैयार नहीं हैं। जबकि सर्किट हाउस जैसी जगहों पर फ्रंक्र नहीं पड़ता कि खाना किसने बनाया है।

'फुलकारी पर टँकी सुई' किसी लैला-मजनू या सोहनी-महिवाल की कहानी नहीं है। यह विभाजन की भेंट चढ़े जीतो और इन्द्र की पगला देने वाली विरह-गाथा है। वर्षों/दशकों जीतो शादी का लाल जोड़ा, फुलकारी और इन्द्र के पत्रों वाला ट्रंक पकड़ गुरदासपुर स्टेशन पर आती रहती है। पर उसकी यादों में जीवित इन्द्र कभी किसी 'पाकिस्तान एक्सप्रेस' या 'समझौता एक्सप्रेस' से नहीं लौटता। गाड़ी का हॉर्न शोक गीत बन जाता है, डिब्बों की आवाजें चीखों में बदल जाती हैं-

'यह रोना था उस पीढ़ी का, जिसके घर छीन लिए गए, जिनके नाम मजहब मुल्क बदल दिये गए और जिनके रिश्ते हमेशा-हमेशा के लिए सरहदों में दफन कर दिये गए।'

इन सीपियों में मोतियों जैसे सूत्र हैं:

1. स्त्री का सम्पूर्ण समर्पण पुरुष को अजब निश्चिंता देता है।
2. जीवन कभी पूर्ण नहीं होता, अधूरेपन से ही हम ज़िंदा हैं, पूर्णता तो मृत्यु है।
3. यह समाज असफल लोगों को पसंद नहीं करता। जो सफल नहीं वह काबिल भी नहीं।
4. हिय के आले में सूर्योदय के उजास सी की स्मृतियाँ ज़्यादा देर नहीं ठरहती, या तो वे अतीत की परछाइयों में अपना अस्तित्व खो देती हैं या फिर वर्तमान की जद्दोजहद उन्हें

लील लेती है।

5. सम्बन्धों की सीमाएँ अपनत्व तय करता है, निकटता नहीं।
 6. तमीजदार होने की बहस दरअसल अपने भीतर के जानवर को छुपाने की ज्ञानी कला है।
 7. जीवन का मज्जा तो बेग्रामर वाली असावधानियों में ही है। सावधानियों ने तो जीवन को बोरिंग ग्रामर दिया।
 8. दुनिया में बहुत कम कंधे इतने मजबूत होते हैं कि कोई औरत सर रखकर रो दे तो वे झुकें नहीं।
 9. खामोशियाँ कई दफा लोगों के बीच चाबियों का काम करती हैं।
 10. इंसान कितना भी बड़ा क्यों न हो जाए, बचपन की यादों से बड़ा नहीं हो पाता।
 11. दर्द का कोई व्याकरण नहीं होता, व्यथा की सीमाएँ नहीं होती।
 12. अंधकार केवल प्रकाश का अभाव नहीं, बल्कि विचारों के निकट मिथकीय क्षेत्र में जाने का एक साधन है।
 13. इंसान के भीतर अपने-अपने छोटे-बड़े द्वीप होते हैं, जो अँधेरा घिरते ही अपने विगत जीवन में किए गए सही-ग़लत को बारीकी से देख सकता है। कुकृत्य और ग्लानि किसी रोशनी में उजागर नहीं हो सकती हैं।
- स्थानीय भाषा का प्रयोग बाहुल्य अनेक रचनाओं में है। 'गहना' की भाषा में बंगाली, 'फुलकारी पर टँकी सुई' में पंजाबी, 'नई ज़मींदारी' में अलीगढ़ी, 'मिन्नी का ढाबा' में देहाती का पुट है। गीत और लोकगीत इन कहानियों में बिखरे हैं-
- ये दुनिया दोरंगी है
एक तरफ़ जिस्मों की क्रीमत रोटी से भी सस्ती है,
एक तरफ़ है सोना गाच्छी एक तरफ़ चौरंगी है।
बोलियाँ
'बाजरे दा सिट्टा वे अस्साँ तल्ली ते मरोड़आ
रूठड़ा जाँदा माही आसां गली विचचोन मोदिया।
प्रतीक अर्थवता को संपुष्ट करते हैं-'अल

अतश- अल अतश' के प्रवासी की व्यथा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। 'भोजन माता' में अखरोट के वृक्षों का प्रतीक है।

संकलन पूरे देश के कहानीकारों को स्पेस दे रहा है। दिल्ली, हिमाचल, यू. पी., एम. पी., राजस्थान, उत्तराखंड, गुजरात, झारखंड, बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र- सभी प्रान्तों के कहानीकार आपको 'सीपियाँ' में मिल जाएँगे। यहाँ प्रवास की त्रासदी और निर्मम, लौलुप रिश्तेदार हैं, विभाजन की विभीषिका से पगलाए, लूटे-पिटे लोग हैं, देहव्यापार से जुड़ी वेश्या की मन की भूख तथा वेदना है, मौन और पीड़ा है, गृहस्थ के झंझट हैं, नारी विमर्श और उत्पीड़न है, घरेलू और कामकाजी औरत है, झगड़े और समझौते हैं, शारीरिक और मानसिक दर्द है, थर्ड जेंडर का मौन और जीवट है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श, कृषक विमर्श, मनोविश्लेषण, परामनोविज्ञान, ग्राम्य-शहराती-प्रवासी जीवन- सब यहाँ समाहित हैं। हर कहानी में एक अलग कथ्य, अलग संवेदना, अलग समस्या, अलग परिवेश, अलग वर्ग, अलग रस, अलग संप्रेक्षण, अलग अभिव्यक्ति शैली है। ऐसे उत्कृष्ट चुनाव के लिए मनीषा जी निश्चय ही बधाई की पात्र हैं।

000

मानवीय संवेदनाओं के विविध रंग दीपक गिरकर

'सीपियाँ' कहानी संकलन का संपादन सुपरिचित साहित्यकार, कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ ने किया है। मनीषा जी ने इस संकलन की कहानियों का चयन और संपादन बड़ी कुशलता से किया है।

यह 'सीपियाँ' कहानी संकलन जीवन के विभिन्न अनुभवों से परिचय कराते हुए पाठक की अंतरात्मा को झकझोर देता है। कहानियों में यथार्थ है और कहानियों के पात्रों को जीवन की जो अनुभूति हुई है, उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति भी हुई है। कहानीकारों ने इन कहानियों में पात्रों के मनोविज्ञान को और उनके स्वभाव को अच्छी तरह से निरूपित किया है। इस कहानियों के संकलन में 17

कहानियाँ संकलित हैं।

गजाल जैगम की कहानी 'अल अतश-अल अतश' प्रवासी जीवन की त्रासदी, प्रेम, स्मृति और मानवीय प्यास का अत्यंत संवेदनशील चित्रण करती है। इराक के फुरात नदी तट पर लेटे नायक की स्मृतियों के माध्यम से लेखक ने घर, गाँव, शालिनी और बिछोह की पीड़ा को मार्मिक रूप से उकेरा है। कहानी में 'प्यास', 'नमक', 'फूल' और 'फुरात' जैसे प्रतीक जीवन की अधूरी इच्छाओं और भावनात्मक रिक्तता को गहन अर्थ प्रदान करते हैं। काव्यात्मक भाषा, प्रकृति के सजीव बिंब और हिन्दी-उर्दू मिश्रित शैली कहानी को विशिष्ट सौंदर्य प्रदान करते हैं। प्रवासी श्रमिकों के शोषण और परिवार के लिए किए गए उनके त्याग का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली है। कहानी का अंत पाठक के मन में गहरी टीस छोड़ जाता है। समग्रतः यह कहानी केवल एक प्रवासी की व्यथा नहीं, बल्कि घर, प्रेम और अपनेपन की अनंत प्यास का मार्मिक दस्तावेज है।

कथाकार सरिता निर्झरा की कहानी 'गहना' केवल सोनागाछी की एक वेश्या की कहानी नहीं है, बल्कि प्रेम, उम्मीद और त्याग की मार्मिक कहानी है। लेखिका ने गहना के चरित्र के माध्यम से दिखाया है कि हर इंसान के भीतर प्रेम और सम्मान पाने की इच्छा होती है, चाहे उसका जीवन कैसा भी हो। अमु और अबीर के पत्र कहानी को आगे बढ़ाते हैं और गहना के मन में प्रेम की एक नई दुनिया बना देते हैं। अंत में वह समझ जाती है कि किसी और के प्रेम पर अपना अधिकार जमाना सही नहीं है। इसलिए उसका त्याग कहानी को बहुत भावुक और यादगार बना देता है। कहानी की भाषा सरल, प्रभावशाली और वातावरण के अनुरूप है। हिन्दी और बांग्ला का मिश्रण इसे और अधिक स्वाभाविक बनाता है। कुछ जगहों पर वर्णन थोड़ा लंबा लगता है, लेकिन पूरी कहानी पाठक को अंत तक बाँधे रखती है। यह प्रेम, संवेदना और मानवीय मूल्यों को खूबसूरती से प्रस्तुत करने वाली एक प्रभावशाली कहानी है।

सोनू यशराज की कहानी 'ठप्पा' उस

सामाजिक मानसिकता पर तीखा प्रहार करती है, जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके व्यक्तित्व और कर्मों से अधिक उस पर लगाए गए सामाजिक 'ठप्पों' से तय होती है। लेखिका ने सहज और प्रवाहपूर्ण भाषा में नारी मनोविज्ञान, सामाजिक पूर्वाग्रहों, वर्गीय एवं लैंगिक भेदभाव तथा मानवीय संवेदनहीनता को प्रभावी ढंग से उभारा है। कहानी के पात्र स्वाभाविक हैं और कथानक सधा हुआ है। कहानी का सांकेतिक शीर्षक 'ठप्पा' उस मानसिकता का प्रतीक है, जो मनुष्य की स्वतंत्र पहचान और गरिमा को एक रूढ़ धारणा में बाँध देती है। प्रभावशाली अंत पाठक को भीतर तक झकझोरता है और कहानी समाप्त होने के बाद भी उसका प्रश्न मन में गूँजता रहता है। अपनी संवेदना, प्रतीकात्मकता और सामाजिक सरोकारों के कारण 'ठप्पा' एक विचारोत्तेजक और स्मरणीय कहानी बन जाती है।

उषा दशोरा की कहानी 'तुम्हारा रणवीर' अकेलेपन, स्मृतियों और मनुष्य के अंतर्मन में चलने वाले मानसिक संघर्ष की संवेदनशील मनोवैज्ञानिक कहानी है। कहानी का नायक अभिरंजन अपने दिवंगत पिता के अनप्रेषित प्रेम-पत्रों को लेकर उनकी मनोचिकित्सक प्रेमिका आभा के पास पहुँचता है। इसी प्रसंग से उसके भीतर दबे भय, तनाव और अतीत के अनसुलझे प्रश्न खुलने लगते हैं।

कहानी में अभिरंजन की माँ का अवसाद केवल एक पात्र की स्थिति नहीं, बल्कि संबंधों में उपजी संवादहीनता और भावनात्मक अकेलेपन का प्रतीक है। लेखिका ने संकेतात्मक शिल्प के माध्यम से कथा को बहुस्तरीय बनाया है, इसलिए इसका वास्तविक मर्म समझने के लिए पाठक को इसके मनोवैज्ञानिक और सांकेतिक अर्थों में उतरना पड़ता है। सरल, संवेदनशील भाषा और सूक्ष्म चरित्र-चित्रण से सजी यह कहानी बीते समय, स्मृतियों और रिश्तों की जटिलताओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। 'तुम्हारा रणवीर' पाठक को केवल एक कथा नहीं सुनाती, बल्कि उसे अपने भीतर झाँकने के लिए भी प्रेरित करती है।

श्रद्धा आढ़ा की कहानी 'एक बिरहन की बात' एक अत्यंत मर्मस्पर्शी और भावप्रधान रचना है। यह कथा हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि बिहारी के जीवन, उनकी साहित्यिक यात्रा तथा उनकी अंतःसंवेदनाओं को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करती है। लेखिका ने बिहारी के व्यक्तित्व, प्रेम, विरह और सृजनशीलता को संवेदनात्मक गहराई के साथ उकेरा है। कहानी में विरह की पीड़ा केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं रह जाती, बल्कि वह काव्य-सृजन की प्रेरणा बनकर पाठक के हृदय को गहराई से स्पर्श करती है। प्रेम, संवेदना और कलात्मक अभिव्यक्ति का सुंदर समन्वय इस रचना को प्रभावशाली और स्मरणीय बनाता है।

डॉ. ज्योत्सना मिश्रा की 'रेनबो' अस्पताल की पृष्ठभूमि पर आधारित एक संवेदनशील कहानी है, जिसमें प्रेम, विश्वासघात, करुणा, स्वीकार्यता और मानवीय रिश्तों के विविध रंग उभरते हैं। चंचल स्वभाव की किरण, डॉक्टर शुभम के छल और रघु के निस्वार्थ प्रेम के माध्यम से कहानी जीवन के उतार-चढ़ाव और मानवीय संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। रघु का उदार और सहृदय व्यक्तित्व कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है। वहीं थर्ड जेंडर का प्रसंग कथानक को सामाजिक सरोकारों से जोड़ते हुए लैंगिक पहचान और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को भी स्पर्श करता है। कहानी का अंतिम दृश्य, जिसमें बच्चा आकाश की ओर देखकर 'रेनबो' कहता है, संघर्षों के बाद जीवन में लौटती आशा, स्वीकार्यता और नए आरंभ का सशक्त प्रतीक बन जाता है। सरल, प्रवाहपूर्ण भाषा और रोचक कथानक से सजी यह कहानी पाठक को यह संदेश देती है कि प्रेम, विश्वास और अपनत्व ही जीवन के वास्तविक इंद्रधनुष हैं।

गायत्री मनचंदा की कहानी 'पल दो पल का साथ' दो अपरिचित स्त्रियों के क्षणिक सान्निध्य के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं और मन के सूक्ष्म स्पंदनों को अभिव्यक्त करने वाली एक प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक कहानी है। ब्रिटिश म्यूजियम के अहाते में

घटित यह कथा बाहरी घटनाओं से अधिक पात्रों के अंतर्मन में घटित होती है, जहाँ अनकही अनुभूतियाँ और साझा भावनाएँ दोनों स्त्रियों को एक अदृश्य भावनात्मक सूत्र में बाँध देती हैं। यह कहानी यह स्थापित करती है कि कभी-कभी जीवन के कुछ क्षणिक संबंध भी मन पर स्थायी छाप छोड़ जाते हैं। अपनी मनोवैज्ञानिक गहराई, संवेदनशील प्रस्तुति और सधे हुए शिल्प के कारण यह कहानी पाठक के मन में लंबे समय तक बनी रहती है।

प्रशांत बेबार की कहानी 'कानोता कैम्प से आई चिट्ठी' अपने सशक्त कथ्य, जीवंत परिवेश और रहस्यात्मक शिल्प के कारण एक प्रभावशाली कहानी बनकर उभरती है। लेखक ने परिवेश को मात्र पृष्ठभूमि न रखकर उसे कथा का सक्रिय पात्र बना दिया है, जिससे कहानी का वातावरण पाठक को अंत तक बाँधे रखता है। कहानी की दूसरी प्रमुख विशेषता इसकी रहस्यात्मकता है, जो आरंभ से अंत तक पाठक की जिज्ञासा बनाए रखती है। घटनाओं का क्रम धीरे-धीरे खुलता है और कथा को रोचकता के साथ मनोवैज्ञानिक गहराई भी प्रदान करता है। कहानी का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री-मन की जटिलता का सूक्ष्म चित्रण है। लेखक यह रेखांकित करते हैं कि स्त्री का अंतर्मन अथाह है, जहाँ दबी हुई इच्छाएँ, अधूरी आकांक्षाएँ और अनकही भावनाएँ समय के साथ भी समाप्त नहीं होतीं, बल्कि अवसर मिलने पर नए अर्थों में सामने आती हैं।

ऐश्वर्य मोहन गहराना की कहानी 'नई ज़मींदारी' आधुनिक समाज में बदलते शोषण के स्वरूप का सशक्त चित्रण करती है। कहानी बताती है कि पारंपरिक ज़मींदारी भले समाप्त हो गई हो, लेकिन उसकी जगह अब कॉर्पोरेट तंत्र, नौकरशाही और प्रभावशाली वर्ग की नई ज़मींदारी ने ले ली है। लेखक ने अपने कानूनी और कॉर्पोरेट अनुभवों के आधार पर दिखाया है कि आज शोषण बल प्रयोग से नहीं, बल्कि नियमों, कानूनों और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की आड़ में होता है। यथार्थवादी कथ्य, सधी हुई भाषा और तीखे सामाजिक सरोकारों के कारण यह कहानी

समकालीन व्यवस्था की विसंगतियों को प्रभावी ढंग से उजागर करती है। 'नई ज़मींदारी' पाठक को बदलते समय में शोषण के नए चेहरों पर गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित करती है।

पूर्वी ठक्कर की 'मेरे खेत मेरे स्वजन' एक प्रभावशाली हाइब्रिड कहानी है, जिसमें सामाजिक सरोकार और थ्रिलर का रोमांच सहज रूप से एक-दूसरे में गुंथे हुए हैं। लेखिका ने कथा का ऐसा वातावरण रचा है कि खेत मानो पीताभ छाया बनकर मनुष्य के साथ चलने लगते हैं। यह केवल भूमि की कथा नहीं, बल्कि मनुष्य और प्रकृति के उस आत्मीय, अटूट और जीवंत संबंध की कहानी है, जिसे आधुनिक विकास की अंधी दौड़ लगातार विस्मृत करती जा रही है। रोचक कथानक, सशक्त प्रतीक और संवेदनशील प्रस्तुति इस कहानी को विशिष्ट बनाते हैं तथा अंत तक पाठक की उत्सुकता बनाए रखते हैं।

विनोद पुरोहित की कहानी 'ये एक कुँए की मौत नहीं है!' अपने कथ्य, सरोकार और प्रभावशाली ट्रीटमेंट के कारण समकालीन हिन्दी कहानी की उल्लेखनीय रचना बन जाती है। यह कहानी केवल एक कुँए के समाप्त हो जाने की कथा नहीं, बल्कि जल-स्रोतों के सुनियोजित विनाश, पर्यावरणीय संकट और विकास के नाम पर प्रकृति के निरंतर दोहन का सशक्त रूपक है। लेखक ने अत्यंत प्रभावी ढंग से दिखाया है कि जल, जो समूचे जीवन का आधार है, आज मनुष्य की असीम लालसा, स्वार्थ और तथाकथित विकास की अंधी दौड़ का सबसे बड़ा शिकार बनता जा रहा है। प्राकृतिक जलस्रोतों का विनाश केवल पर्यावरण की क्षति नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के अस्तित्व पर भी गंभीर संकट है। कहानी इस विडंबना को भी उजागर करती है कि सत्ता, जिसका दायित्व संरक्षण का है, अनेक बार ऐसे विनाशकारी तंत्र की सहभागी बन जाती है। सरल किन्तु धारदार भाषा, यथार्थपरक प्रस्तुति और तीखे सामाजिक-पर्यावरणीय सरोकारों से संपन्न यह कहानी पाठक को केवल भावुक नहीं करती, बल्कि उसे आत्ममंथन के लिए भी विवश करती है।

'ये एक कुँए की मौत नहीं है!' अंततः चेतावनी देती है कि यदि जल-स्रोतों की यह मृत्यु नहीं रोकी गई, तो यह केवल एक कुँए की नहीं, बल्कि पूरी सभ्यता के भविष्य की मृत्यु होगी।

डॉ. पूनम सिन्हा 'श्रेयसी' की कहानी 'कन्फेशन' अपने अनूठे शिल्प और मनोवैज्ञानिक गहराई के कारण विशिष्ट बन जाती है। कहानी का आरंभ एक अध्ययन कक्ष और एक किताबी किरदार से संवाद के रूप में होता है, जो धीरे-धीरे पाठक को दाम्पत्य जीवन की जटिलताओं, निभाव और प्रेम के बीच मौजूद सूक्ष्म फाँक से रू-ब-रू कराता है। यह संवादात्मक संरचना कथा को केवल रोचक ही नहीं बनाती, बल्कि आत्मविश्लेषण और अंतर्मंथन का प्रभावी माध्यम भी सिद्ध होती है। यह कहानी एक अलग संवेदनात्मक मनःस्थिति की उपज है। लेखिका ने अत्यंत संवेदनशीलता से यह प्रश्न उठाया है कि क्या केवल साथ निभा लेना ही प्रेम है, या प्रेम के लिए भावनात्मक उपस्थिति और आत्मीयता भी उतनी ही आवश्यक है। कहानी का कन्फेशन किसी एक पात्र की स्वीकारोक्ति भर नहीं, बल्कि उन अनकहे सचों का उद्घाटन है, जिन्हें दाम्पत्य जीवन में अक्सर शब्द नहीं मिलते। सहज भाषा, कसावयुक्त कथानक, प्रतीकात्मक शिल्प और रोचक कथा-प्रवाह के कारण 'कन्फेशन' पाठक को अंत तक बाँधे रखती है। यह कहानी प्रेम, संबंधों और आत्मस्वीकृति के अनेक आयामों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है और पढ़ने के बाद भी लंबे समय तक मन में बनी रहती है।

शोभा लिम्बू की कहानी 'कान्छा दाज्यु' सीमांत जीवन, पारिवारिक रिश्तों और मानवीय संवेदनाओं की गहन पड़ताल करने वाली एक मर्मस्पर्शी कहानी है। 'कान्छा दाज्यु' में शोभा लिम्बू ने पात्रों का बारीक मनोविश्लेषण कर के कहानी को भावपूर्ण और जीवंत रूप में प्रस्तुत की है। नेपाली समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रची गई यह कथा रिश्तों की आत्मीयता, त्याग और संघर्ष को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करती है। शीर्षक में प्रयुक्त 'कान्छा दाज्यु'

केवल एक संबोधन नहीं, बल्कि स्नेह, विश्वास और अपनत्व का प्रतीक बनकर पूरी कहानी में उपस्थित रहता है। लेखिका ने पात्रों के मनोभावों, सामाजिक परिस्थितियों और जीवन की विषमताओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। कहानी यह रेखांकित करती है कि आर्थिक अभाव, सामाजिक दबाव और बदलते समय के बीच भी मानवीय रिश्तों की गरमाहट मनुष्य को जीवित रखती है। भाषा में स्थानीय संस्कृति की सहज सुगंध है, जो कथा को विश्वसनीय और प्रभावशाली बनाती है। संवेदनशील कथ्य, सशक्त चरित्र-चित्रण और भावपूर्ण शिल्प के कारण 'कान्छा दाज्यु' पाठक के मन में गहरी छाप छोड़ती है। यह कहानी केवल एक व्यक्ति की कथा नहीं, बल्कि उन अनगिनत लोगों के जीवन का प्रतिनिधित्व करती है, जिनके लिए रिश्ते ही सबसे बड़ी पूँजी हैं।

घनश्याम आसूदाणी की कहानी 'तीसरी उम्र' वृद्धावस्था की दहलीज पर खड़ी स्त्री के मनोभावों, स्मृतियों और भविष्य को लेकर उपजे असमंजस का अत्यंत संवेदनशील चित्रण करती है। यह केवल बुढ़ापे की कहानी नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर परिस्थितियों से समझौता करते हुए स्वयं को पुनः गढ़ने वाली स्त्री की जिजीविषा का मार्मिक आख्यान है। कहानी की नायिका नम्रता विवाह के बाद अपने गाँव के विशाल पुश्तैनी घर से निकलकर शहर के छोटे से फ्लैट में आती है। प्रारंभिक असहजता के बाद वह नई परिस्थितियों को स्वीकार कर लेती है और जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेती है। पति की मृत्यु के बाद जब उसे बेटे के पास बेंगलुरु जाना पड़ता है, तब वह जीवन के एक और परिवर्तन के सामने खड़ी होती है। यही उसकी 'तीसरी उम्र' की शुरुआत है, जहाँ स्मृतियाँ, अकेलापन, भविष्य की अनिश्चितता और नए परिवेश को स्वीकार करने की चुनौती एक साथ उपस्थित हैं।

पल्लवी गर्ग की कहानी 'मिन्नी का ढाबा' मानवीय संवेदनाओं, आत्मीय रिश्तों और जीवन की अप्रत्याशित विडंबनाओं को अत्यंत सहजता से प्रस्तुत करने वाली

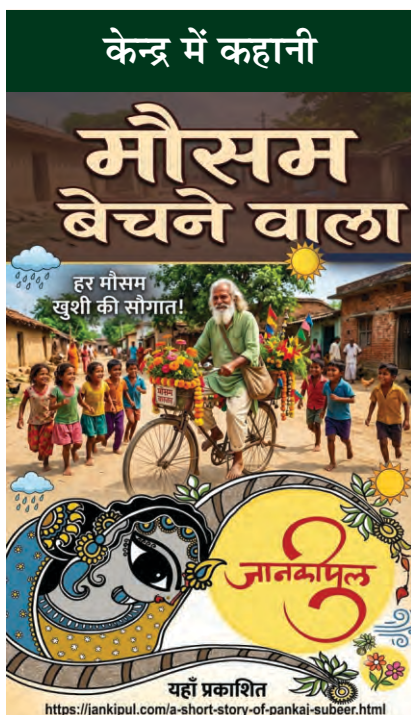
प्रभावशाली कहानी है। कहानी को लेखिका पल्लवी गर्ग ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। कथा की शुरुआत एक साधारण-सी घटना से होती है, जब यात्रा के दौरान वाशरूम जाने के कारण वान्या की बस छूट जाती है। यहीं से 'मिन्नी का ढाबा' केवल एक ठहराव का स्थान नहीं, बल्कि जीवन को नई दिशा देने वाला भावनात्मक पड़ाव बन जाता है। ढाबे के मालिक चुन्नाजी का पितृतुल्य स्नेह कहानी का सबसे उज्ज्वल पक्ष है। एक अनजान युवती की सहायता करते हुए वे यह सिद्ध करते हैं कि रक्त-संबंधों से परे भी आत्मीय रिश्ते जन्म ले सकते हैं। दूसरी ओर, मनीष के समलैंगिक होने का सत्य कहानी को समकालीन सामाजिक यथार्थ से जोड़ता है। लेखिका ने इस विषय को बिना किसी सनसनी या पूर्वाग्रह के अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेम में असफल होने के बाद वान्या का अवसाद और फिर परामर्श (काउन्सलिंग) के माध्यम से स्वयं को सँभालना मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को भी रेखांकित करता है। कहानी का अंतिम दृश्य, जब छह वर्ष बाद वान्या पुनः मिन्नी के ढाबे पर लौटती है और चुन्नाजी को उसमें अपनी दिवंगत बेटे मिन्नी की छवि दिखाई देती है, अत्यंत मार्मिक और भावपूर्ण बन पड़ा है। यह प्रसंग बताता है कि जीवन में कुछ मुलाकातें क्षणिक होकर भी स्थायी संबंधों का रूप ले लेती हैं। सरल भाषा, रोचक कथानक, संवेदनशील चरित्र-चित्रण और समकालीन सामाजिक सरोकारों के कारण 'मिन्नी का ढाबा' केवल एक कहानी नहीं, बल्कि विश्वास, अपनत्व, मानसिक संबल और मानवीय करुणा का भावपूर्ण दस्तावेज बन जाती है।

देवकन्या ठाकुर की कहानी 'भोजन माता' एक अनूठी, मार्मिक और सामाजिक चेतना से संपन्न कहानी है। यह कथा मिड-डे मील योजना में कार्यरत एक दलित महिला के माध्यम से भारतीय समाज में आज भी विद्यमान जातिगत भेदभाव की कड़वी सच्चाई को उजागर करती है। जब सवर्ण बच्चों को यह पता चलता है कि भोजन एक दलित स्त्री ने

बनाया है, तो वे उसे खाने से इनकार कर देते हैं। यह घटना केवल एक महिला का अपमान नहीं, बल्कि मनुष्यता, समानता और संवैधानिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न है। लेखिका ने अत्यंत सहज और प्रभावी शैली में दिखाया है कि बच्चों के मन में जन्म से भेदभाव नहीं होता, बल्कि समाज और परिवार द्वारा बोए गए संस्कार उन्हें विभाजित करते हैं। कहानी जातिवाद की विडंबना पर तीखा प्रहार करते हुए मानवीय संवेदना, श्रम के सम्मान और सामाजिक समरसता का संदेश देती है। अपनी यथार्थपरक प्रस्तुति और विचारोत्तेजक कथ्य के कारण 'भोजन माता' समकालीन हिन्दी कहानी की एक प्रभावशाली रचना बन जाती है।

डॉ. गीतू धवन की कहानी 'फुलकारी पर टकी हुई सुई' एक ऐसी मार्मिक रचना है, जिसमें अंतहीन प्रतीक्षा किसी सूने, सुख दुपट्टे पर काढ़ी गई फुलकारी की तरह बारीकी से बुनी हुई है। कहानी में फुलकारी केवल कढ़ाई नहीं, बल्कि स्मृतियों, प्रेम, विरह, उम्मीद और स्त्री-जीवन के मौन संघर्षों का सशक्त प्रतीक बन जाती है। टकी हुई सुई उस समय का बिंब है जो जैसे किसी अधूरे रिश्ते, अपूर्ण स्वप्न या लौटकर आने की आस में ठहर गया हो। लेखिका ने अत्यंत संवेदनशील और काव्यात्मक शैली में प्रतीक्षा की उस पीड़ा को स्वर दिया है, जो शब्दों से अधिक मौन में अभिव्यक्त होती है। कहानी का भाव-संसार पाठक को भीतर तक स्पर्श करता है और यह अहसास कराता है कि कुछ प्रतीक्षाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं, वे जीवन की बुनावट में फुलकारी के रंगों की तरह हमेशा के लिए दर्ज हो जाती हैं। यही प्रतीकात्मकता, भाव-सघनता और कलात्मक शिल्प इस कहानी को विशिष्ट और स्मरणीय बनाते हैं।

ये कहानियाँ एक व्यापक जागरूकता की विचारोत्तेजक कहानियों का संग्रह है, जिसमें हमारे समय का यथार्थ ध्वनित होता है। इस संग्रह की कहानियाँ पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती हैं।



(कहानी)

मौसम बेचनेवाला

समीक्षक : रेखा भाटिया

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : जानकी पुल, वेब पत्रिका

<https://jankipul.com>

रेखा भाटिया

शार्लिट, नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका

मोबाइल- 704-975-4898

ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

अभी हाल ही में पंकज सुबीर की लिखी कहानी 'मौसम बेचने वाला' जानकी पुल में प्रकाशित हुई। कहानी की शुरुआत बहुत रोचक है। खिड़की से बाहर एक फेरीवाला गीत गाकर सामान बेच रहा है, जैसे कोई शास्त्रीय गायन में गीत गा रहा हो। 'एक रुपये में सावन ले लो 555, दो में लो बरसातें 55 तीन रुपये में झर-झर, झर-झर बूँदों की सौगातें 555 कहानी का नायक संदीप गीत सुनकर चकित रह जाता है, क्योंकि बाहर फेरीवाला न फल बेच रहा है, न सब्जी, न ही कोई घर की जरूरतों का सामान। वह बेच रहा है मौसम।

संदीप एक शिक्षक है। शहर से गाँव के एक स्कूल में पदस्थ हुआ है। संदीप की जिज्ञासा जागती है। वह चपरासी सुरेश से फेरीवाले के बारे में पूछता है। सुरेश उसे बताता है कि यह फेरीवाला पागल है। कुछ सालों से अपनी टूटी-फूटी सायकल सजाकर हफ़्ते, महीने-दो महीनों में आता है। गाना गाकर क्या बेचता है किसी को कुछ पता नहीं। गाँव में आज तक किसी ने उससे कुछ भी नहीं खरीदा है। एक बार सुरेश उससे 'धूप का ताप' खरीदना चाहता था लेकिन उस फेरीवाले ने उसे जवाब दिया था, धूप का ताप खरीदने के लिए उसे फेरीवाले के साथ धूप का ताप लेने कहीं और जाना पड़ेगा, क्योंकि फेरीवाला कहता है वह सिर्फ़ एजेंट है ! यहीं से कहानी पाठकों के मन पर गहरी छाप छोड़ती है। शुरुआत से ही कहानी पर छाया एक रहस्यवाद इसे दिलचस्प बनाता है।

संदीप हर रोज़ शहर से गाँव आता है, गाँव आने-जाने में उसके तीन-चार घंटे व्यर्थ हो जाते हैं। उसे लगता है उसकी आधी जिंदगी आने-जाने में और आधी इस उजड़े गाँव में बीत रही है। वह तबला बजाता है और कविताएँ लिखता है लेकिन अब व्यस्त एवं थका देने वाली जिंदगी से वह बहुत खीजने लगता है। 'जब दिमाग में चिंताएँ लदी हों, मन शौक के लिए तैयार नहीं हो पाता है। शौक असल में तो निश्चित, फुरसती और उन्मुक्त मन का शगल होते हैं।' यहाँ रचनाकार की कलम संदीप की मनःस्थिति को भली-भाँति पकड़ती है।

कहानी में फेरीवाले के नए-नए रूप प्रकट होते हैं। फेरीवाले के व्यक्तित्व की कई परतें खुलती जाती हैं। वह केवल मौसम बेचने वाला व्यक्ति नहीं रह जाता, बल्कि जीवन, प्रकृति और मनुष्य के संबंधों पर विचार करने वाला दार्शनिक और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि वाला पात्र बनकर उभरता है। जिनके द्वारा कथाकार मानव जीवन के उन नैतिक मूल्यों और संस्कारों को पाठक के समक्ष रखता है, जो अब जीवन से कहीं न कहीं विलुप्त होते जा रहे हैं। जिन्हें खोकर इंसान क्या-क्या खोता जा रहा है ? सोचना और समझना अब बहुत अनिवार्य है! 'चप्पल या जूता पहनने से धरती के साथ हमारा संपर्क टूट जाता है। हमारे और धरती के बीच इन्सुलेशन आ जाता है। धरती हमारे अंदर की नकारात्मकता को खींच लेती है...'।

हर बार फेरीवाले के व्यक्तित्व को और भी थोड़ा करीब से जानकर संदीप पहले से अधिक विस्मय में डूब जाता है ! मौसम बेचने वाला अपनी भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता है, वह नंगे पैर घूमता है लेकिन उसे विज्ञान का गहरा ज्ञान है। लेकिन उस आदमी ने अपना नाम भी हटा दिया है, कारण पूछने पर वह कहता है- 'मैंने अपना कुछ नाम नहीं रखा है, नाम रखने से ही सारी समस्याएँ पैदा होती हैं। नाम से ही तो 'मैं' पैदा होता है !' वह अपना नाम 'मौसम बेचने वाला' बताता है। ऐसा क्यों है, संदीप पहले से अधिक उलझता जाता है ! कुछ ऐसे प्रयोग कहानी में पाठक की जिज्ञासा को बढ़ाते जाते हैं। लेखक ने कहानी की क्रिस्सागोई को इस तरह विस्तार दिया है, जो पाठक को कहानी से जोड़कर धीरे-धीरे स्वयं का आत्ममंथन करने पर विवश करती जाती है। कहानी लिखने का अंदाज़ बहुत प्रभावशाली है। कहीं-कहीं कहानी का रहस्यात्मक वातावरण पाठक को निर्मल वर्मा की कहानियों की याद दिलाता है।

पंकज सुबीर ने पाठक और प्रकृति को साथ जोड़ने के लिए एक ऐसी कहानी लिखी है जो पाठक को इंसान और प्रकृति के रिश्ते को एक नए दृष्टिकोण से समझने के लिए प्रेरित करती है। यह संकेत करती है, मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव का प्रकृति से संबंध जैसे-जैसे बदलता गया। विकास ने बाजारवाद और उपभोक्तावाद को जन्म दिया। पहले मानव ने

कुछ आदर्श स्थापित किये थे, मानव प्रकृति को पूजता था क्योंकि उसे पता था, वह प्रकृति पर पूरी तरह निर्भर है। वह प्रकृति का उपभोग और हनन नहीं करता था वरन प्रकृति से अनुमति माँगकर अपनी जरूरत भर का प्रकृति से पाता था ! वह प्रकृति की देखभाल करता था, उसका सम्मान और संरक्षण करता था। मुनाफ़ाखोरी और बढ़ते लालच से धीरे-धीरे मानव ने वन और पहाड़ काटने शुरू किए। इससे सृष्टि में असंतुलन होने लगा। इस असंतुलन से मौसम बिगड़ने लगे। अब सरकारें और प्रणाली अंधाधुंध इस कृत्य में ऐसी ताक़तों का साथ दे रही हैं जो उन्हें ख़रीद लेते हैं। विरोध करने पर ऐसी ताक़तें हिंसक हो उठती हैं और...

वे इस पूरे परिवर्तन को पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में देखने का आग्रह करते हैं। यहाँ कहानी केवल एक फेरीवाले की कथा नहीं रह जाती, बल्कि मानव सभ्यता, विकास और प्रकृति के बदलते संबंधों पर गंभीर विमर्श बन जाती है। एक चेतना बन जाती है। एक संवेदनशील लेखक मनुष्य जाति, समाज और विश्व की गंभीर समस्याओं की सूक्ष्मता से जाँच-परख और विश्लेषण कर उन पर बारीकी से प्रकाश डालता है। यह कठिन काम वह दो किरदारों की बातचीत से करवा लेता है, यह लेखक की परिपक्वता को दर्शाता है।

मौसम बेचने वाले के गीतों माध्यम से पंकज सुबीर ने मौसमों के उत्तम गीत कविताओं के रूप में लिखे हैं। इनकी शब्दावली बहुत विस्तृत है। हर मौसम के बीतने के साथ जब प्रकृति एक नया रूप ले लेती है, उसकी ख़ूबसूरती को बहुत सुंदर शब्दों में बाँधा है- 'वर्षा बीत गयी है और वर्षा के बूढ़े हो जाने के निशान के रूप में चारों तरफ काँस के सफ़ेद-रूपहले फूल दिखाई पड़ रहे हैं। यह शरद ऋतु का समय है।'

आगे रचनाकार जीवन में खुशी के मूल्य को समझाते हैं- 'जहाँ रहो वहीं खुश रहो। यह इंतज़ार मत करो कि जब अपने मन की जगह पहुँचूँगा तभी खुश रहूँगा ! खुशी तो उन जगहों में जीने में होती है।' इस लंबी कहानी के लिए पंकज सुबीर ने कई मूल्यवान और सुंदर

उपमाएँ लिखी हैं और सम्पूर्ण कहानी में उनका बहुत ख़ूबसूरत प्रयोग किया है। जिन्हें पढ़ने के बाद वह लंबे समय तक पाठक के जहन में रहती हैं। 'समस्या तो यहाँ सबकी एक ही है, सबके अंदर के मौसम बुझ गए हैं।'

अंत में एक भावुक और मार्मिक वार्तालाप में मौसम बेचने वाला संदीप को उसकी ज़िम्मेदारी महसूस करवाता है कि उसे जो अमूल्य विरासत मिली है, उसकी रक्षा करना भी उसका मौलिक कर्तव्य है। जिसे पढ़कर महसूस होता है, जीवन में यह हम सब की भी मौलिक ज़िम्मेदारी है केवल संदीप जैसे किरदार की कहानियों में नहीं !

कहानी केवल पर्यावरण पर गहरा सन्देश नहीं देती है। वरन मनुष्य और प्रकृति के रिश्तों में आई नीरसता और दूरी से प्रकृति के प्रति मनुष्य की नीरसता, अवहेलना और आधुनिक विकास मॉडल पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है। जिस अंधी दौड़ में मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है, उसकी मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं और उसके भीतर के मौसम सूखते जा रहे हैं। यह प्रयोग बहुत सफल रहा है।

मौसम बेचने वाला कौन था ? मौसम बेचने से उसका प्रयोजन क्या था ? क्या वह सपने बेचता है, उम्मीदें बेचता है या जीवन की सीख ! शिक्षा बेचता है या किसी तरह की जागरूकता फैलाना चाहता है ? या कहीं उसका उद्देश्य कुछ और तो नहीं था ! कहानी पढ़ने के बाद इस रहस्य से पर्दा उठता है। जो चौंकाता है। कहानी एक मोड़ पर अचानक समाप्त हो जाती है। कहानी का अंत कुछ ऐसा है जिस पर बहस की जा सकती है ? कहानी का अंत सुखद हो या दुखद हो उस विकल्प पर लेखक का पूर्ण अधिकार है, वह स्वतंत्र है कि वह कौन सा विकल्प रखना चाहता है !

संदीप का किरदार, उसकी सोच, हालात, परिस्थितियाँ जिन्हें लेखक ने खुद ख़ूब जिया है और बख़ूबी तराशा है। फेरीवाले का रहस्यमयी किरदार इस कहानी का एक मुख्य बिंदु और जान है। जैसे-जैसे मौसम बेचने वाले से पाठकों परिचय बढ़ता जाता है, उसका चरित्र भीतर की जागृति का स्वर बनकर उभरता है और देर तक गूँजता रहता

है। पात्रों का चयन यथार्थ और कल्पना का बेजोड़ संगम है। मौसम इस कहानी का मुख्य नायक है और प्रकृति नायिका !

कहानी के मध्य भाग में दार्शनिक विमर्श कभी-कभी इतना विस्तृत हो जाता है कि कथानक की गति थोड़ी धीमी पड़ती है, यद्यपि यही विमर्श कहानी के वैचारिक स्वरूप को भी गहराई देता है और पंकज सुबीर की इस कहानी में बाह्य जागरूकता और भीतरी जाग्रति जगाने की सुगंध आती है। यह कहानी केवल पढ़ी जाने वाली नहीं वरन अनुभव की जाने वाली रचना है। इस कहानी के लिए विषय को और स्थितियों को समझने के लिए लेखक ने गहन शोध और ख़ूब मेहनत की है कहानी की भाषा बहुत रोचक और कवितामय है, शिल्प बहुत तराशा हुआ है, जिससे कहानी की निरंतरता शुद्ध हवा-सी बहती है। पंकज सुबीर ने यथार्थ के साथ प्रकृति को जादुई तरीके से घोला है।

पंकज सुबीर ने कोई बड़ा व्याख्यान दिए बिना, बिना शोर के सरकार और प्रणाली को कटघरे में खड़ा किया है। लालच और ताक़त हमेशा से ही हिंसक रही हैं तब मानवता उसका सामना करने के लिए हथियार नहीं उठती वरन् अपने हौसले और मनोबल से जन-जन को जोड़ते हुए जन आंदोलन से मानवता की मशाल लेकर प्रकृति और मानव जाति के हितों की रक्षा करती है।

अपने लेखन से पंकज सुबीर सामाजिक, राजनैतिक और वैश्विक समस्याओं को उजागर कर व्यंग्यात्मक शैली में बहुत प्रभावी तरीके से दुनिया का ध्यान खींचते हैं। उनका यह कार्य और प्रयास अति सराहनीय है। जीवन सन्देश तो कई कहानियाँ देती हैं लेकिन यह कहानी जीवन जीना सिखाती है। प्रकृति और अपने भीतर के मौसमों की ओर लौटने के लिए प्रेरित करती है। इस कहानी को सिर्फ़ पढ़ा नहीं वरन अनुभव किया जा सकता है। समकालीन हिंदी साहित्य में 'मौसम बेचने वाला' कहानी उसके सन्देश, मूल्यों, दर्शन और वैचारिक ऊँचाई के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय रहेगी।

पुस्तक समीक्षा



(उपन्यास)

स्टेलमेट

समीक्षक : रेखा राजवंशी

लेखक : दीपक गिरकर

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

रेखा राजवंशी

1, ली प्लेस, वेस्ट पेनेंट हिल्स,

एन एस डब्ल्यू 2125, ऑस्ट्रेलिया

मोबाइल- +61403116301

ईमेल- rekha_rajvanshi@yahoo.com.au

दीपक गिरकर का उपन्यास 'स्टेलमेट' सिर्फ एक रोचक कहानी ही नहीं है बल्कि पाठकों के भीतर अनेक प्रश्न छोड़ जाता है। 160 पृष्ठों का यह उपन्यास समाज के जटिल स्वरूप, अनेक सामाजिक और मानसिक संघर्षों के ताने-बाने विश्लेषित करता कुछ गंभीर प्रश्न खड़े करता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में ऐसे कथानकों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, जो प्रेमकथा के आकर्षण को बनाए रखते हुए सामाजिक यथार्थ, नैतिक प्रश्नों, मनोवैज्ञानिक संघर्ष और आध्यात्मिक आत्ममंथन को समान गंभीरता से प्रस्तुत कर सकें। दीपक गिरकर का उपन्यास 'स्टेलमेट' इसी श्रेणी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास पाठकों को इस निष्कर्ष पर छोड़ देता है कि जीवन वास्तव में किसी शतरंज के खेल से कम नहीं, जहाँ अनेक बार न तो पूर्ण विजय संभव होती है और न ही पराजय अंतिम सत्य होती है। मनुष्य परिस्थितियों, सामाजिक संरचनाओं, संबंधों और अपने अंतःकरण के बीच ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जिसे शतरंज की भाषा में 'स्टेलमेट' कहा जाता है।

उपन्यास का आरम्भ ही पाठक को चौंकाता है। कथा नाटकीय ढंग से जेल के वातावरण से प्रारम्भ होती है। नायिका माधवी क्रैदियों को भगवद्गीता का कर्मयोग समझा रही है। वह स्वयं दो वर्ष का कारावास भोग रही है और अब जेल में आध्यात्मिक संवादों के माध्यम से स्वयं को भी और दूसरों को भी आत्मिक शांति देने का प्रयास करती है। यहीं से कथा फ्लैशबैक में प्रवेश करती है और पाठक माधवी के जीवन की यात्रा का सहभागी बन जाता है। पाठक लगातार यह जानना चाहता है कि एक शिक्षित, संवेदनशील और आदर्शवादी युवती आखिर किन परिस्थितियों में जेल तक पहुँची। लेखक इस जिज्ञासा को बनाए रखने में सफल दिखाई देते हैं।

उपन्यास के प्रमुख पात्रों में माधवी, श्रीनिवासन (श्री)- माधवी का प्रेमी और बाद में पति, वेंकटेश्वर राव- माधवी का कॉलेज मित्र और छात्र राजनीति से जुड़ा महत्वाकांक्षी युवक वेंकटेश्वर राव, आरती- माधवी की घनिष्ठ सहेली। वह कॉलेज जीवन में माधवी और वेंकटेश्वर राव के साथ रहती है। तथा अन्य महत्वपूर्ण पात्र हैं माधवी का बेटा कार्तिक और उसकी बेटी अनु, और महर्षि सुब्बाराव।

माधवी का चरित्र इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है। वह पारंपरिक हिन्दी उपन्यासों की निष्क्रिय नायिका नहीं है। उसमें आत्मविश्वास है, बौद्धिक क्षमता है, नेतृत्व की योग्यता है और सामाजिक रूढ़ियों से प्रश्न करने का साहस भी। कॉलेज जीवन में उसका व्यक्तित्व केवल उसकी सुंदरता तक सीमित नहीं रहता; वह वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में अग्रणी है, छात्र राजनीति में भाग लेती है और अपने विचारों के कारण सम्मान अर्जित करती है। माधवी और श्रीनिवासन का प्रेम उपन्यास का भावात्मक केंद्र है। लेखक ने प्रथम आकर्षण, मित्रता, विश्वास और प्रेम के क्रमिक विकास को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। रसायनशाला में पहली मुलाकात, प्रयोगशाला के छोटे-छोटे प्रसंग, कॉलेज परिसर की मुलाकातें, पार्क में संवाद, झील के किनारे बिताए गए क्षण, इन सबका चित्रण भावुक अवश्य है, किन्तु कृत्रिम नहीं। लेखक ने उनके प्रेम को केवल शारीरिक आकर्षण नहीं बल्कि बौद्धिक निकटता और भावनात्मक विश्वास के रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि पाठक उनके साथ से भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है।

प्रेमकथा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि लेखक उसे सामाजिक यथार्थ से अलग नहीं होने देते। जाति, भाषा, आर्थिक विषमता और पारिवारिक प्रतिष्ठा जैसे प्रश्न इस प्रेम के सामने दीवार बनकर खड़े हो जाते हैं। श्रीनिवासन एक आर्थिक रूप से साधारण ब्राह्मण परिवार से है जबकि माधवी सम्पन्न कायस्थ परिवार से आती है। दोनों शिक्षित हैं, आत्मनिर्भर हैं और एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान भी, फिर समाज उनके संबंध को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाता। यह स्थिति भारतीय सामाजिक यथार्थ की विडम्बना को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से सामने रखती है। यही वह बिंदु है जहाँ उपन्यास व्यक्तिगत प्रेम से आगे बढ़कर भारतीय समाज की

संरचनात्मक समस्याओं पर टिप्पणी करने लगता है। 'स्टेलमेट' केवल दो प्रेमियों की स्थिति नहीं है। यह परिवारों की भी स्थिति है। माता-पिता अपने संस्कारों और सामाजिक प्रतिष्ठा से बंधे हैं, जबकि युवा पीढ़ी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रेम के अधिकार को स्वीकार करती है। कोई भी पक्ष पूरी तरह गलत नहीं है, किन्तु कोई भी पूरी तरह सही भी नहीं दिखाई देता। यही नैतिक जटिलता इस उपन्यास को साधारण प्रेमकथा से ऊपर उठाती है।

विवाहोपरान्त दोनों पात्रों का पारिवारिक जीवन, सामाजिक स्वीकार्यता की खोज, आर्थिक उत्तरदायित्व तथा बदलते संबंधों का चित्रण अत्यन्त विश्वसनीय बन पड़ा है। श्रीनिवासन के माता-पिता द्वारा अंततः माधवी को स्वीकार कर लेने वाला प्रसंग अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। इस दृश्य में लेखक ने किसी नाटकीय चमत्कार का सहारा नहीं लिया, बल्कि भारतीय परिवारों की भावनात्मक संरचना को बहुत स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। यह स्वीकार केवल एक बहू का नहीं, बल्कि प्रेम और मानवीय संवेदना का स्वीकार है।

अनु (अनामिका) उपन्यास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पात्र है। वह माधवी और श्रीनिवासन की बेटी है, जिसका जन्म जन्मजात मूक-बधिर अवस्था में होता है। उसके माता-पिता उसे प्यार से 'अनु' नाम देते हैं और उसके जीवन को सामान्य तथा सफल बनाने का संकल्प लेते हैं। बोल और सुन न पाने के बावजूद अनु असाधारण प्रतिभा, धैर्य और दृढ़ इच्छाशक्ति का परिचय देती है। वह शतरंज में गहरी रुचि लेती है और ग्रैंडमास्टर आरव और मंगला नगर में रहने वाले शतरंज कोच मुरुगन के मार्गदर्शन में उत्कृष्ट खिलाड़ी बनती है। आगे चलकर अनु दिव्यांग खिलाड़ियों के लिए आयोजित अंतरराष्ट्रीय शतरंज प्रतियोगिताओं में शानदार प्रदर्शन करती है और भारत के लिए स्वर्ण पदक जीतकर अपने माता-पिता तथा देश का नाम रोशन करती है। उसकी कहानी यह संदेश देती है कि शारीरिक सीमाएँ प्रतिभा, परिश्रम और

आत्मविश्वास के सामने बाधा नहीं बन सकती।

बाद में अनु की मृत्यु एक निर्मम हत्या के रूप में होती है। उसके साथ पहले दुष्कर्म और उसके बाद उसकी हत्या कर दी जाती है। इस घटना से माधवी और श्रीनिवासन का जीवन पूरी तरह बदल जाता है। श्री इस गहरे आघात से कभी उबर नहीं पाता और भीतर ही भीतर टूटता रहता है। अनु की हत्या के बाद माधवी दोषियों को सजा दिलाने का संकल्प लेती है और पूरे साहस के साथ कानूनी लड़ाई लड़ती है। उपन्यास का यह प्रसंग समाज में महिलाओं की सुरक्षा, न्याय व्यवस्था और अपराध के विरुद्ध संघर्ष का अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

अनु के साथ दुष्कर्म और हत्या का मुख्य षड्यंत्र महर्षि सुब्बाराव के आश्रम से जुड़ा होता है। महर्षि सुब्बाराव और उसका बेटा वेंकटेश मुनि अनेक प्रकार के दुष्कर्मों में लिप्त होते हैं। वेंकटेश मुनि को जेल में भेज दिया जाता है। अनु की हत्या की जाँच में डीएनए रिपोर्ट, फॉरेंसिक साक्ष्य, ऑडियो रिकॉर्डिंग और अन्य प्रमाणों के आधार पर सुब्बाराव के विरुद्ध मजबूत मामला बनता है। अदालत में ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनके कारण उसका प्रभाव और प्रतिष्ठा अब उसे बचा नहीं पाते। सुब्बाराव के आश्रम में वर्षों से महिलाओं के साथ यौन शोषण होता रहा था। पीड़िताएँ लंबे समय तक चुप रहीं परन्तु बाद में अनेक महिलाओं के सामने आने पर उसके विरुद्ध गंभीर आपराधिक मामले दर्ज किए जाते हैं और सुब्बाराव को सजा हो जाती है। बाद में उसके स्वास्थ्य को देखते हुए उसे छह महीने की पैरोल पर रिहा कर दिया जाता है। अपनी बेटी के साथ दुष्कर्म और हत्या की आग में जलती अनु उसके साथ मिलने की इच्छा व्यक्त करती है और साउंड प्रूफ कमरे में जाकर उसके दोनों हाथ काट देती है। थाने में जाकर अपना अपराध कबूल कर लेती है।

दीपक गिरकर की भाषा इस उपन्यास का सशक्त पक्ष है। संवेदनशील भाषा, प्रभावशाली चरित्र-चित्रण और भारतीय

सांस्कृतिक चेतना इसे समकालीन हिन्दी उपन्यासों में एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाने की क्षमता रखते हैं। उनकी भाषा सरल, सहज और संवादप्रधान है। प्रकृति-वर्णन हो, कॉलेज जीवन का चित्रण हो अथवा भावनात्मक संवाद- हर जगह भाषा चित्रात्मक है। अनेक स्थानों पर लेखक की काव्यात्मक बन जाती है, विशेषकर प्रेम और प्रकृति के प्रसंगों में। यही शैली पाठक को कथा से जोड़े रखती है।

उपन्यास का एक अत्यंत उल्लेखनीय पक्ष उसका आध्यात्मिक आयाम भी है। भगवद्गीता, रामचरितमानस, साई बाबा, आयुर्वेद तथा भारतीय पारिवारिक संस्कार केवल सजावटी तत्व नहीं हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य में धार्मिक या आध्यात्मिक संदर्भ अनेक बार उपदेशात्मक हो जाते हैं, किन्तु स्टेलमेट में ऐसा नहीं है।

इस प्रकार 'स्टेलमेट' प्रेम के माध्यम से मनुष्य की नैतिक यात्रा का उपन्यास है। यहाँ प्रेम है, संघर्ष है, परिवार है, समाज है, संस्कृति है और सबसे बढ़कर मनुष्य का अंतःसंघर्ष है। लेखक ने आरम्भिक अध्यायों में जिस संयम और संवेदनशीलता से कथा की नींव पाठक में आगे की कथा के प्रति तीव्र उत्सुकता उत्पन्न करती है। उपन्यास के मध्य और उत्तरार्द्ध में प्रवेश करते ही यह स्पष्ट होने लगता है कि लेखक की दृष्टि केवल प्रेमकथा कहने तक सीमित नहीं है। आगे चलकर जीवन की कठोर वास्तविकताओं से टकराता है। यहाँ से स्टेलमेट अपनी वास्तविक ऊँचाई प्राप्त करता है।

दीपक गिरकर का स्टेलमेट उपन्यास समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में एक उल्लेखनीय उपलब्धि कहा जा सकता है। यह उपन्यास प्रेम की पवित्रता, सामाजिक रूढ़ियों की कठोरता, पारिवारिक संबंधों की जटिलता तथा मनुष्य के आत्मसंघर्ष को अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। लेखक की सबसे बड़ी सफलता यह है कि वे पाठक को किसी निष्कर्ष के लिए बाध्य नहीं करते। वे केवल जीवन की जटिल परिस्थितियाँ हमारे सामने रख देते हैं।

लालित्यं शरणं ब्रज

ललित निबंध संग्रह



डॉ. गरिमा संजय दुबे

(निबंध संग्रह)

लालित्यं शरणं ब्रज

समीक्षक : गौरव गौतम

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

गौरव गौतम

वार्ड क्रमांक 43 उत्तम नगर,

रीवा (म.प्र.) 486001

मोबाइल- 6263610187

लालित्यं शरणं ब्रज' गरिमा संजय दुबे के निबन्धों का संग्रह है जो उनकी कृति 'समर्पयामि' के बाद उनके लालित्य लेखनी का विस्तार है जिसमें निरंतरता भी है और नवोन्मेषता भी। इस निबन्ध का शीर्षक भगवद्गीता के अंतिम अध्याय के 66वें श्लोक का स्मरण कराता है जिसमें श्रीकृष्ण अर्जुन की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि केवल मेरी शरण में आओ- मामेकं शरणं ब्रज। श्रीकृष्ण से ज्यादा लालित्य किसमें होगा जिनमें सभी कलाएँ विद्यमान हैं या ऐसा कहें कि सभी कलाएँ उनसे ही उद्भासित होती हैं। ललित निबन्ध विधा भी श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की तरह ही है जिसमें कल्पना और रागात्मकता है जिससे यह विधा विषय से जुड़ी रहकर भी स्वतंत्र होती है उससे बाँधती नहीं है।

यह कृति बतियाते हुए एक सांस्कृतिक यात्रा पर ले जाती है जहाँ पाठक पर्व की रम्यता, दूब की पावनता, कुश की कठोरता, हरसिंगार का विनय, अपराजिता की नीलिमा, मंजरी की सुगंध, आम की महक, रोटी के स्वाद, उत्सव की समृद्धि, लोक की जड़ में निहित चैतन्यता, कुंभ की आस्था, रात की धुन, पावस की फुहार, शरद की चाँदनी, नदी के बहाव, त्रिवेणी की लहर, बंशी के स्वर, राधा का समर्पण और कन्हैया से उनकी एकात्मकता, शिव के वैराग और लास्य आदि से परिचित ही नहीं एकरस भी होता है। निबंधों के कथ्य दृष्टि को बाँधने के साथ-साथ श्रवण और घ्राण से संबंधित इंद्रियों को भी सक्रिय कर देते हैं। पाठक वर्तमान में खड़े होकर अतीत को निहारते हुए भावी जीवन के लिए राह पाता है वह अपने परिवेश को 'देखने' में सक्षम हो जाता है। यह कृति संस्कृति के बिखरे हुए कणों को समन्वित करने का एक प्रयास है जो बताती है कि धरोहर भूतपूर्व नहीं बल्कि अभूतपूर्व होती है। अपने प्रकृति और परिवेश के जिन उपदानों पर व्यक्ति द्वारा पहले नोटिस भी नहीं लिया जाता रहा है इस कृति से गुजरकर वह उनके लिए संवेदनशील होंगे। उन्हें परखने में सक्षम होंगे।

उलटपंथी विचारधारा और औपनिवेशिक प्रभाव से ग्रसित मानसिकता ने भारतीय संस्कृति को 'बनाम' के रूप में देखा है जिसके कारण शैव बनाम वैष्णव के अनुरूप साहित्य को परखा गया है जिसे पालने पोसने का कार्य शिक्षा व्यवस्था द्वारा किया गया। गरिमा जी ने इस कृति में बताया है कि शिव और विष्णु विरोधी नहीं 'युग्म' हैं जो सृष्टि का पालन और संरक्षण करते हैं। 'उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ गोविंद' निबन्ध हरि-हर के आपसी संबंध को व्यक्त करने वाला है जिसका विस्तार 'दो यात्रा, दो बिंब, एक फल' निबन्ध में भी है जिसमें अमरनाथ और जगन्नाथ की यात्रा के बारे में बताया है जो आषाढ़ माह में शुरू होती है। 'उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ गोविंद' का कथ्य यह भी बताता है कि जीवन में प्रगति और उत्थान के लिए निरंतर जाग्रत रहने और प्रबोधन की आवश्यकता है।

प्रत्येक देश की संस्कृति अन्य देश से संवादरत होती है किंतु उसकी विशिष्टता भी होती है जिसे गरिमा जी ने 'तितिक्षा रूपी तृण: दूर्वा और कुश' में बताया है। दूर्वा की यत्र-तत्र-सर्वत्र व्याप्ति के कारण अंग्रेजी में उसे डेविल्स ग्रास कहते हैं, जबकि भारत में ऐसा कोई शुभ कार्य नहीं जिसमें दूर्वा का प्रयोग न होता हो। गणेश भगवान् को तो यह विशेष प्रिय है। इस निबन्ध में तुलसीदास, विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय के माध्यम से दूर्वा की महत्ता को रेखांकित किया गया है। यह निबन्ध यह भी बताता है कि भारतीय संस्कृति के केंद्र में चराचर जगत् है

केवल मानव नहीं। मानव का प्रकृति से द्वैत नहीं; अद्वैत का संबंध है। मानव, प्रकृति का हिस्सा है उससे अलग नहीं है। इस कृति में लेखिका ने हरसिंगार, अपराजिता जैसे फूलों के माध्यम से भारतीय परिवेश और भारतीय ज्ञान मीमांसा को जानने और परखने का उपक्रम किया है कि प्रकृति की हर शय में स्मृतियों की अनेक परत छुपी हुई है जिन्हें संवेदना के स्पर्श से अनावृत किया जा सकता है।

इस कृति का कुंभ यात्रा से सम्बन्धित 'आस्था, अनुभूति, अनुभव की त्रिवेणी: महाकुंभ' निबन्ध इस तरह से लिखा गया है कि इसका शब्द-शब्द भीतर समा जा जाने वाला है। पिछले शब्द की कुक्षी से निकला अगला शब्द जब वाक्य बनकर अपना अर्थ संप्रेषित करता है तब ऐसा लगता है कि त्रिवेणी के पावन तट पर खड़े होकर हम निहार रहे हैं। निबन्ध में त्रिवेणी के केवल बाहरी दृश्य का ही नहीं वरन् अनुभूति का वर्णन है जो भारतबोध को परिपुष्ट करता है। साथ ही जो लोग इसे समझने में अक्षम हैं उनकी विवशता का भी प्रकटीकरण इसमें है जिसे निम्न उद्धरण में देखा जा सकता है- 'मैंने करीब से देखा है, बहुत-बहुत कठिन, संयमित, अनुशासित जीवन। कभी भी कुछ भी भकोस लेने वाले, निद्रा के अधीन, आलसी, प्रमादी, क्रोधी, मोह से ग्रस्त हम गृहस्थ क्या साधेंगे इसे।'

पर्यटक और तीर्थाटन में जो भावगत अंतर होता है लेखिका ने उसे भी प्रस्तुत किया है जो आज के समय को आईना दिखाना है जो कि साहित्य का मूलभूत कार्य है कि यह समय और समाज को विवश करें कि वह अपनी संवेदना को टटोले। तीर्थ को लेकर जो 'लोक' में भाव है उसे गरिमा दुबे ने प्रस्तुत किया है जिसे सभ्यता की कालिमा लीलने को आतुर है। इसे निम्न उद्धरण में समझा जा सकता है- 'हम और आप तो तीर्थ में भी विश्राम और सुविधा ढूँढ़ते हैं, यह लोकधारा कुछ नहीं चाहती। बस अपनी माँ की गोद का स्पर्श चाहती है, उन्हें आपसे न कोई सुविधा चाहिए, न वे किसी कष्ट का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार यात्रा में उठाया गया कष्ट भी तप है,

केवल तीर्थ में पहुँच कर स्नान-दर्शन करना ही तीर्थ नहीं होता। पूरी यात्रा ही तीर्थ होती है, यह मानकर मीलों पैदल चलकर यात्रा करने का इतिहास रहा है, तभी तो दुधमुँह बच्चों को गोद में लेकर माँएँ पहुँच जाती हैं संगम, अशक्त बुजुर्गों को लेकर चलते हैं बेटा-बहू। धन्य है इनकी आस्था, धन्य है इनका भाव। सच पूछिए तो मुझे तो इन लोगों का दर्शन ही तीर्थ का फल मालूम हुआ।'

उपर्युक्त कथ्य एक दीप ज्योति की तरह है जो मानस की मलिनता को हटाने के लिए प्रेरित करता है कि हम लोक के वास्तविक रूप को समझ सके न कि अपनी पिछड़ी हुई नज़र से उसका अवलोकन करें। इस निबन्ध में कुंभ के बारह वर्ष के संदर्भ के में यह कथन कि 'प्रत्येक बारह वर्ष में नवीनीकरण का प्रयास भी, जागृत करने का प्रयास भी।' परंपरा के प्रवाह को समझने में मददगार है। ऐसे ही गंगा के प्रवाह के संदर्भ में गरिमा जी की यह टिप्पणी बड़ी सारगर्भित और सार्थक है कि 'यह तो नित्य नूतन और चिर पुरातन प्रवाह है। संशय भरा मन कहता है किंतु इसका अर्थ यह तो नहीं कि हम उसकी पवित्रता का दुरुपयोग करें, उसे मलिन करते रहें। गंगा का होना भारत का होना है, वह भारत की सुषुम्ना नाड़ी है जिसमें प्राण प्रवाहित होते हैं।'

गंगा से ऊर्जांचित होने के लिए हमें किन प्रयासों की आवश्यकता है उसे भी बिना हो-हल्ला और नारे के बिना व्यक्त किया गया है। श्री शंकराचार्य जी के श्री गंगा स्तोत्रम का उल्लेख, भीष्म प्रतिज्ञा आदि से जो अर्थ ध्वनित किया गया है वह प्रकारांतर से परंपरा से जोड़ने वाला है और रूढ़ि से अलगाने वाला है।

व्यक्ति-व्यंजक शैली में लिखे गए निबन्ध की भाषा प्रवाह युक्त है। विश्लेषण के बीच में सूत्र वाक्य का आना पढ़ने वाले को रोकता है और मनन करने को मजबूर करता है। एक ठहराव, आगे के पाठ को पढ़ने की गति देता है। भाषा की तरलता और छोटे वाक्य विचार को सहज और बोधगम्य बनाते हैं जो पाठक के मानस को संस्कारवान बनाने में सहायी है।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

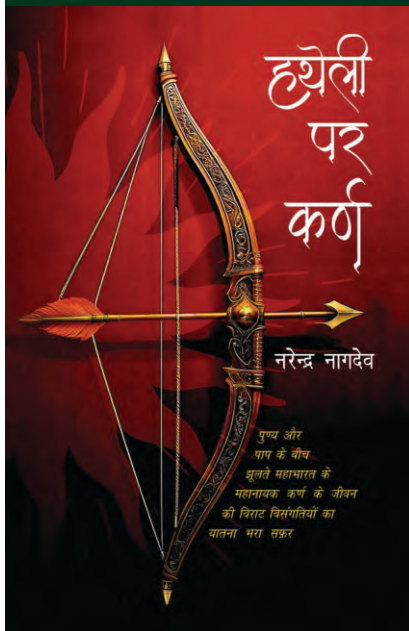
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 10 मार्च 2026

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा



(उपन्यास)

हथेली पर कर्ण

समीक्षक : हीरालाल नागर

लेखक : नरेन्द्र नागदेव

प्रकाशक : राजपाल एंड संस,
दिल्ली

हीरालाल नागर

बी-174/41 सी, सादतपुर विस्तार,
गली नं. 2, जीवन ज्योति स्कूल के पास,
नई दिल्ली-110090
मोबाइल- 9968551414

वेद, पुराण, उपनिषदों के अलावा रामायण और महाभारत में वर्णित महानायकों के चरित्र का जब आधुनिक संदर्भों में मूल्यांकन किया जाता है तो बहुत से भेद और मतभेद उभरकर सामने आ जाते हैं। कथाकार नरेन्द्र नागदेव का नया उपन्यास 'हथेली पर कर्ण' ऐसी ही औपन्यासिक कृति है, जो महाभारत के कृष्ण और अर्जुन के बाद सबसे ज्यादा प्रभावशाली पात्र कर्ण के चरित्र को देखती और परखती है। लेखक के नज़रिये से देखा जाए तो यह उपन्यास मनुष्य जीवन के पुण्य और पाप के बीच झूलते महाभारत के महानायक कर्ण के जीवन की विराट विसंगतियों के यातना भरे सफ़र की कथा है। यों तो कर्ण को लेकर कुछ अनसुलझी कहानियाँ हैं और जीवन के कुछ अव्यक्त पहलू जिनकी भिन्न-भिन्न दृष्टि से व्याख्या की जाती है। कथाकार नरेन्द्र नागदेव के पास कर्ण के चरित्र को लेकर मानवीय पक्ष प्रमुख है जो जन्म-मरण, पाप-पुण्य, जय और पराजय के बंधन से बँधा हुआ है। उपन्यासकार नरेन्द्र नागदेव कर्ण को इस जकड़े हुए चरित्र से मुक्त करना चाहते हैं। या उस मुक्ति की ओर ले जाना चाहते हैं, जिसकी लेखक कल्पना करते हैं, लेकिन इस पुस्तक के कर्ण भी महाभारत काल के उस पूरे परिवेश से बाहर निकल नहीं पाते। उन बंधनों से क्यों नहीं निकल पाते- कर्ण, लेखक ने बहुत सहज, आत्मीय और नैतिक व्याख्या प्रस्तुत की हैं। इसके लिए उन्हें चार रूपक गढ़ने पड़ते हैं- 'द्वार तो खुले नहीं', 'कह दो कि तुम नहीं', 'पाँसों में लिहाज नहीं' और 'हथेली पर पाप नहीं'। यह उपन्यास 'हथेली पर कर्ण' की व्याख्या के चार आधार स्तंभ हैं जिन पर उपन्यास की पूरी कथा टिकी हुई है। यहाँ भी लेखक अपने चिर-परिचित अंदाज में कथा-सौन्दर्य गढ़ते हैं और कर्ण के समानांतर उसके मित्र का चरित्र खड़ा करते हैं, जो इस उपन्यास का सूत्रधार है और कथावाचक भी। कहानी सत्ता परिवर्तन के बाद की है, जब पांडव हस्तिनापुर में रहने आ जाते हैं। सत्ता की बागडोर अब धृतराष्ट्र के हाथों में है, लेकिन महाभारत के नायक-खलनायक श्री कृष्ण यहाँ भी उपस्थित हैं। यद्यपि उनकी भूमिका समाप्त हो चुकी है और वे द्वारिका लौटना चाहते हैं, मगर जैसे ही वे गांधारी से विदा लेने पहुँचते हैं गांधारी उन्हें शाप दे देती है।

'हथेली पर कर्ण' एक प्रकार से सत्य की खोज में लिखा गया उपन्यास है। कर्ण के जन्म के बाद जितने भी सवाल पैदा हुए उनका एक-एक कर उत्तर ढूँढ़ा गया है। उपन्यास इन्हीं कुछ मानवीय तथा प्रकृतिस्थ परिस्थितियों की रोचक दास्तान है, जिसमें लेखक श्रीकृष्ण, अर्जुन, दुर्योधन, कुंती और अभिमन्यु को उलझा रखा है। लेखक महाभारत के युद्ध-काल से उपजे संत्रासों के सूत्र की तलाश करता है और मानवीय तथा अतिमानवीय कमजोरियों को उजागर करता है।

'कर्ण जब मुहल्ले में खेलने लायक हुआ, तब तक वह कर्ण से बड़ा हो चुका था और तमाम यातनाएँ भुगत चुका था। उसे सलाह देना उसका काम था।' व्यक्ति पर हमेशा गाँव, मुहल्ले और समाज के परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है। इन पड़ने वाले प्रभावों के कारण बालक के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कर्ण का बचपन भी सूत पुत्र होने के कारण पड़ोसी के पुत्रों के लड़कों से त्रस्त और संतस्त रहा। कर्ण का अनाम मित्र कहता है, 'देखो कर्ण। तुम्हें अपमानित करना, तुम्हें प्रताड़ित करना, उनका सबसे ज्यादा पसंदीदा खेल है, जिसे वे खेलेंगे। उनके इस खेल को सामाजिक मान्यता भी प्राप्त है।'

'श्राप और कर्ण का क्या सम्बंध था- बन्धु।' यह छोटा-सा सवाल, 'हथेली पर कर्ण' की पूरी कथा पर एक वृत्त की तरह तना हुआ है। लेकिन लेखक कथा को रोचक, प्रामाणिक और सुरुचिपूर्ण बनाता है- जिसे पढ़कर तथा देखकर एक कुतुहल होता है। यह माना कि लेखक आर्किटेक्ट है, वास्तुकार है, भवन-निर्माण कला में प्रवीण हैं, पर वे जब पांडव के हस्तिनापुर और वारणाव्रत नगर के नये भवनों के निर्माण में कुशल आर्किटेक्ट की भूमिका में आता है, तो वहाँ सब कुछ करना उन्हें आसान लगने लगता है। वहाँ उनका सूत्रधार के रूप में सामने खड़ा होता है और आगे की कथा का रास्ता खुल जाता है।

'कह दो कि तुम नहीं'- खंड में लेखक ने कर्ण के अंगदेश का अधिपति बनाये जाने के बाद

की कथा कही है। कर्ण तो चल देता है- अपनी सेना लेकर अंगदेश की राजधानी की ओर लेकिन उसको अपने मित्र की कोई चिन्ता नहीं होती। मित्र, जो इस कथा का सूत्रधार है और कुशल वास्तुकार। कर्ण का मित्र कथावाचक की भूमिका में कहता है, 'अंगदेश तो मैं जाता रहूँगा। जब कर्ण को मेरी सलाह की आवश्यकता होगी, जाऊँगा ही। उसके बड़े भाई की तरह जाऊँगा, लेकिन इस तरह उसका माताहत बनकर हरगिज नहीं।'।

कर्ण के पड़ोसी मित्र की खोज कर लेना और इस कथा के समानांतर एक चरित्र को खड़ा करना- लेखक की अपनी मौलिक सूझ-बूझ है। यह मित्र कथा में आगे चलकर पांडव नगर वरणाप्रत और हस्तिनापुर के भवनों के निर्माण का कार्य करता है। लेखक ने यहाँ पर कथा को जनतांत्रिक बनाने का कार्य किया है, जिसमें आम पाठक की रुचि का भी खयाल रखा गया है। वास्तुकारों, वास्तुविदों और भवन-निर्माण कलाओं के बीच क्या विरोधाभास हो सकते हैं, और क्या विसंगतियाँ हो सकती हैं, लेखक ने इसका बड़े ही दिलचस्प वर्णन किया है। वे लिखते हैं, 'रात होने पर ऐसे चहेते ठेकेदारों के साथ मद्यपान उनकी दिनचर्या होती थी। सच तो यह है कि वहीं पर तमाम कार्यों के आदान-प्रदान संबंधी निर्णय भी ले लिए जाते हैं। निर्माण की प्रक्रिया में क्या-क्या हैराफेरी की जाए, कि उनकी थैलियाँ भी भारी रहें और इनकी भी ये तमाम फ़ैसले यहीं ले लिए जाते थे। वातावरण में मद्य के अलावा षड्यंत्रों की गंध भी तैरती रहती थी।'।

सूर्य-पुत्र होने के कारण कर्ण को कुछ अपूर्व शक्तियाँ भी प्राप्त थीं। मानवीय गुणों से भरपूर। उसे श्राप मिलते गए, उनसे निवृत्त होने के लिए पुण्य कार्य भी करता गया और अपना जीवन बचाता गया। मगर पांडवों के प्रति उसका बैर-भार बना ही रहा। 'दुर्योधन जितना पांडव से वैर रखता है, उतना ही कर्ण भी नहीं रखता क्या? अगर इस बहाने दुर्योधन पांडवों को हस्तिनापुर का षड्यंत्र चला रहा हो, तो कर्ण क्या पूरे उत्साह से उसका साथ नहीं दे रहा होगा?'

पुरोचन के मुख से भी लेखक ने कहलवाया है कि कर्ण भी सत्ता हथियाने के लिए कौरवों या दुर्योधन का साथ देता है। पुरोचन जो शिल्पकार हैं और हस्तिनापुर में भवन निर्माण का ठेकेदार है- वह कहता है, 'अब कर्ण को क्या जरूरत है, दखल देने की? मुझे तो लगता है कि यह पूरी योजना से शुरू से शामिल है। यह ऊपर से जितना अच्छा दिखता है, उतनी ही इसके मन में खोट भी है।'।

लाक्षागृह निर्माण में भी दुर्योधन और कर्ण और उसकी पूरी खलमंडली का हाथ है, जिसमें पांडवों को जलाकर मार डालने का षड्यंत्र शामिल है। लेकिन पांडव बच निकलते हैं।

'हथेली पर कर्ण' अपने आप में एक स्वतंत्र कथा है, बेशक वह महाभारत ले ली गई है, लेकिन लेखक इस कथा के माध्यम से सामान्य जन प्रतिनिधियों को बताना चाहता है कि कर्ण अपनी मानवीय कमजोरियों की वजह से पराजित हुआ, जबकि उसके पास सैकड़ों वरदान थे। उसकी दानवीरता की कहानियों के बारे में लेखक ने जिक्र किया है। कुछ संचित पुण्य थे जो उसकी कमियों की वजह से सब छीन लिए गये। पर कर्ण अपना अपमान नहीं भूल पाता। अर्जुन ने उसका अपमान किया- जब गुरु द्रोणाचार्य के समक्ष अर्जुन उसे सूत पुत्र कहकर धनुर्विधा प्रतियोगिता में शामिल करने से इनकार कर देता है।

वह द्रोपदी के अपमान को नहीं भूल पाता जब द्रौपदी सूत पुत्र कहकर कर्ण को स्वयंवर में अपना वर चुनने से इनकार कर देती है। 'द्रोपदी को पता होना चाहिए था कि कर्ण का तीर भले ही मछली की आँख में नहीं लगा, लेकिन उसका तीर कर्ण के हृदय में बिल्कुल सही जगह पर लग गया और किसी दिन इस अपमान का पूरा बदला लेकर रहेगा।'।

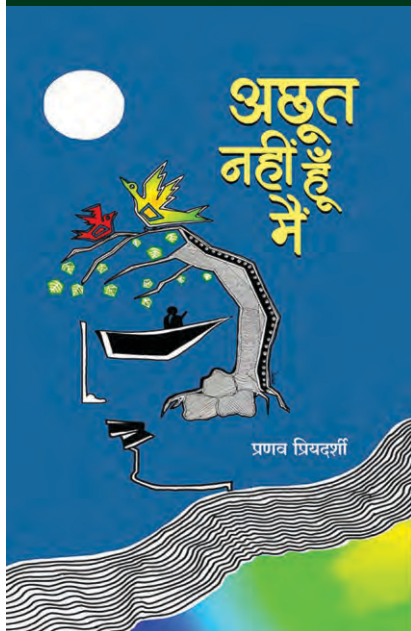
यह कथा महाभारत के पात्रों को अतीत से वर्तमान में ला खड़ा करती है और उनसे सवाल करती है। 'द्यूत-क्रीड़ा, मद्यपान, छल, प्रपंच और षड्यंत्र ये सभी कुछ राजसी तथा मानवीय गरिमा के प्रतिकूल आचरण हैं, अगर इन पर कंट्रोल नहीं किया तो निश्चित रूप से

आदमी का विनाश होगा। मानवता कलंकित होगी और सत्ता-मद एक दिन सारी शक्तियों को नष्ट कर देगा।'।

सूत्रधार जो कर्ण का पड़ोसी मित्र है और इस कथा का वाचक भी है। वह अंत तक महाभारत कथा के साथ रहता है। लेकिन वह अन्याय के साथ नहीं रहता। वह कहता है, 'वह मैं ही था, जो तब से तुम्हारी युवावस्था के एक-एक दिन तुम्हारे साथ तुम्हारे साथ की तरह, मार्गदर्शक बनकर, तुम्हारा रक्षक बनकर, वह मैं ही था, जो धनुर्विद्या में तुम्हारी हर उपलब्धि पर फूला नहीं समाता था। वह मैं ही था, जो सूत पुत्र कहकर अपमानित किए जाने पर स्वयं अपमान की आग में सुलगता... और... इस आज तुम्हारे पतन पर सर्वाधिक आहत मैं ही हुआ हूँ... और... इस वातायन से सामने नज़र आते सूर्य देवता को साक्षी मानकर घोषणा करता हूँ कि आज से मैं तुम्हारा भाई नहीं रहा।'।

सूत्रधार के माध्यम से ही द्रौपदी पर हुए अमानवीय कृत्य का लेखक विरोध दर्ज करता है। 'मैं जो भी ढो रहा था अपनी चेतना पर, हस्तिनापुर की सबसे घृणित घटना का बोझ, मैं भी झेल नहीं पा रहा था, अपनी ओर हिकारत से देखती सहस्र आँखों का रोष और आक्रोश।...और कितने दिन सँभाल पाता होश। मैं अवसाद में चला गया।'।

पुराणों तथा धर्मग्रंथों के पात्रों पर, उनके उदात्त चरित्रों पर उपन्यास लिखे गए हैं, बल्कि उनका नवीनीकरण भी किया है। इस उपन्यास के लेखक यह कार्य करते हैं। महानग्रंथों में जैसे रामायण, वेद उपनिषद और लोकगाथाओं के चरित्रों की सत्यता पर या उसकी मौजूदगी पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं खड़ा करते- शायद उनकी इमेज को तोड़ने के भय से। लेकिन अगर उस पात्र या चरित्र में मनुष्य-चेतना का कोई बिन्दु या कोई अन्तरर्द्ध व्यक्त होना चाहता है तो उसे भी अभिव्यक्त होना चाहिए। अगर यह पड़ताल केन्द्रीभूत सत्य में समाहित होती है तो यह लेखन लोकहित के लिए अत्यंत सार्थक और समीचीन है।



(कविता संग्रह)

अछूत नहीं हूँ मैं

समीक्षक : डॉ. कुमारी उर्वशी

लेखक : प्रणव प्रियदर्शी

प्रकाशक : रुद्रादित्य प्रकाशन

'अछूत नहीं हूँ मैं' की कविताओं में शब्दों से परे जो एक संसार है, उसकी छाया उतरती नज़र आती है। प्रणव प्रियदर्शी का रुद्रादित्य प्रकाशन से प्रकाशित यह काव्य-संग्रह कई यथार्थ रचता खूबसूरत कविताओं का संग्रह है। यह सच है कि कविता में ही जीवन के सब क्रिया व्यापार गुँथे हुए हैं, जिसका कवि मात्र उद्घाटन करता है। एक कवि कविता के माध्यम से जिनके समक्ष अभिव्यक्त होना चाहता है, वे रचना प्रक्रिया के दौरान चेतन-अचेतन मन में उसकी अभिव्यक्ति के दूसरे सिरे पर मौजूद होते हैं। उसकी संवेदनशीलता अलग तरह की होती है, वह देखता है फिर महसूस करता है, उस देखे हुए को विचारता है और किसी एक बिन्दु पर पहुँचकर अभिव्यक्ति के लिए छटपटाता रहता है। यह बेचैनी, तनाव और छटपटाहट ही उसे औरों से अलग करती है, उसे कवि बनाती है। यही उस कवि की रचनात्मकता के मुख्य स्रोत होते हैं।

इस संग्रह में शामिल बहुत सारी कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी हैं। इन कविताओं को जीवन की विसंगतियों को शब्द देने की ज़िद में कवि ने काफी खूबसूरती से रचा है। वर्तमान अँधेरे और हिंसक समय में प्रणव प्रियदर्शी 'कविता से उम्मीद' कविता में लिखते हैं कि ओस से भी ज़्यादा कोमल और आँसू से भी ज़्यादा खामोश अपने प्रेम को कहाँ रखूँ। आज के समय में मुझे उम्मीद है केवल कविता से, क्योंकि वह कोशिश करती है कि पत्थरों से भी निर्झर बहे और कवि का आत्म संघर्ष कविता में निहित है।

अपनी कविताओं में वर्तमान समय की कई चुनौतियों और युवाओं के अंतर्द्वंद्व को, प्रेम की जिजीविषा और उम्मीद को, कैरियर, घर, परंपरा, संस्कृति, उदारीकरण, बाज़ारवाद, बेरोज़गारी, पलायन सबको संजोकर रखने की, उन्हें रचना में स्थापित करने की कोशिश कवि द्वारा की गई है। साक्षी बन कर सारे समय को अतिक्रमित कर उन्होंने ज़माने के बेतरतीब

डॉ. कुमारी उर्वशी
द्वारा श्री रामायण पाण्डेय,
वृंदावन कॉलोनी, टैगोर हिल रोड,
चिरौंदी, रांची- 834006 (झारखण्ड)

व्यवहार से विचलित हुए बिना अपनी भीतरी शक्तियों से अपनी कोमलता को जिंदा रखने की कोशिश करते हुए कविता लिखने का कार्य किया है। कवि मानते हैं कि प्रेम अपना अनन्त रचता है और उसमें रमता है। प्रणव प्रियदर्शी की कविताएँ इस रचाव और रमाव का निस्संकोच उत्सव है।

कवि मानते हैं कि मनुष्य का अंतःकरण खो चुका है। आत्म संघर्ष आज के दिन में बीते जमाने की बात हो चुकी है। वर्तमान मनुष्य किसी भी शर्त पर पहचानहीनता की इस भीड़ में अपने बाजारूपन को और संभावनाओं को त्यागना नहीं चाहता। वह सामाजिकता से अनेक स्तरों पर टकराते हुए अपनी रफ्तार में आगे बढ़ रहा है और रुकने के मायने नहीं जानता है, क्योंकि उसका अनुभव है कि रुक जाना ही मर जाना है। लेकिन सवाल यह है कि हम चलकर आखिर कहाँ पहुँचना चाहते हैं। इस दौर में कवि आक्रान्त हुए बिना निजता के संरक्षण का आग्रह करती कविताएँ रचते हैं।

शीर्षक कविता 'अछूत नहीं हूँ मैं' में वह कहते हैं-

'मैं अपने चारों तरफ़ / एक नया संसार गढ़ता हूँ / प्रवीण कहते हैं मुझसे / आपकी बातें / सिर्फ़ सिद्धांत को छूती हैं / व्यवहार को नहीं / जबकि मैं निष्पक्ष होकर जानता हूँ / कि मेरी बातें / व्यवहार के पृष्ठ से उठकर / सिद्धांत के फ़लक पर चढ़ती हैं / शायद इसलिए / ऐसा हो पाता है कि / मुझे बहुत कुछ छूता है / मैं भी बहुत कुछ को छूता हूँ / मैं अछूत नहीं हूँ।'

वैश्विक मानव समाज और उसके अंतर्गत भारतीय मानव समाज जिस प्रकार के संकट में फँस गया है और अमानवीकरण की दिशा में दौड़ रहा है, वह भयावह है। पूँजीवादी साम्राज्यवाद पतनशीलता की चरम अवस्था में पहुँच गया है, भारत जैसे बहुत से देशों में सामंती मूल्य और संस्कारों की जड़ता ने इसे और गहरा दिया है।

मनुष्य प्रजाति और सम्पूर्ण पृथ्वी के ही विनाश की चिन्ता गहराने लगी है। यही वे स्थितियाँ हैं, जिनमें हम आम तौर पर मनुष्य और समाज तथा उसकी विभिन्न सत्ताओं की

संवेदनहीनता की शिकायत करते पाए जाते हैं। ऐसे में कवि को भी वर्तमान मनुष्य विरोधी यथास्थिति से मुक्ति और वैकल्पिक समाज व्यवस्था के बारे में सोचना और तय करना होता है। इसलिए वह लिखते हैं-

'विकास की लहर / शहर से चलकर / गाँव तक पहुँच गई है / इसलिए इस गाँव का / हर आदमी खुश है / लेकिन गाँव को दुख है / क्योंकि / इस विकास का अर्थ / आदमी को केवल / बाजारू चूल्हे में झोंकना है।'

इस संग्रह के लेखक के कवि होने के साथ-साथ पत्रकार होने की वजह से इस संग्रह की कविताएँ यथार्थ, संवेदना के साथ ही साथ सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से युक्त भी हैं। यह भी सच है कि कविताएँ यथार्थ, संवेदना और नूतन दृष्टि से ही बनती हैं। कविता, समय की सामाजिक ज़रूरत के अनुरूप अपनी दिशा और अपना स्वरूप ग्रहण करती है। कविता जीवन और समाज से निरपेक्ष नहीं होती, वह उसमें हस्तक्षेप करती है और अपने वैयक्तिक अभिव्यक्ति के दबावों के साथ सामाजिक दायित्वों की आवश्यकता के अनुसार भी ढलती है। '...तो शायद' कविता में कवि लिखते हैं-

'पास से गुज़रती हुई / पीड़ा की आवाज़ / यदि किनारे सुन पाते तो / नदी क्यों टूटती / क्यों बिखरती? / हवा अपनी कोशिशों में / मतलबी नहीं होती / तो अनुराग में / जलती हुई बाती क्यों बुझती? / परिस्थितियाँ बोलकर भी / चुप रह जाती हैं जिस तरह / यदि हम सुन पाते / इनकी अकुलाहटों को / तो शायद / जिंदगी इतनी / परेशान नहीं होती / दहशतों में डूबी हुई / ऐसी शाम नहीं होती!'

जिस व्यवस्था में मानव प्रजाति का तीन चौथाई से अधिक, तबाह हाल स्थितियों में जीने को विवश हो और शेष एक चौथाई लोग सुख-सुविधाओं के पहाड़ पर बैठे अमानवीय भोगवाद में लिप्त हों, वे कोई उन्नत सांस्कृतिक जीवन नहीं जी रहे हों, उस व्यवस्था के विरोध में जन जागरण अभियान आज ज़रूरत बन गया है। तभी कवि लिखते हैं-

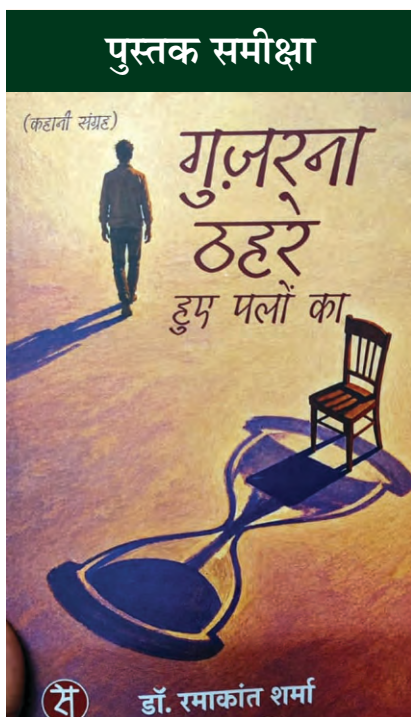
'मुझे दुख होता है / जब फटे-चिटे कपड़े

में / कोई युवती माँगती है भीख / कोई मैं अपने अबोध बच्चे को सीने से लगाए / दौड़ती है जूटे पत्तल की ओर / कचरा बीनता कोई किशोर / नशा में शांत करता है अपनी भूख / असफलता जब बदल जाती है / आत्महत्या में। / मैं अफसोस करता हूँ / जब बिना प्रलोभन के / नहीं सुनी जाती / किसी आदमी की पुकार / किसी घर के नौकर से / जब नहीं पूछा जाता / कि कहाँ है उसका घर और परिवार / कि किसी लड़की का बलात्कार / बनती है ख़बर बार-बार। / उपेक्षा के ऐसे विषैले दाँतों / के बीच दबे लोगों को ही / मैं इजाज़त देता हूँ / कि वे मुझे बताएँ / किसे कहते हैं सहिष्णुता / और क्या होती है राष्ट्रीयता!'

संग्रह में शामिल कई कविताएँ यह सत्यापित करती हैं कि इस समय में विद्यमान जनविरोधी व्यवस्था से मुक्ति का मार्ग श्रमजीवी जनगण की जागृति से होकर गुज़रता है। हमारे कवि और उनकी कविताओं ने इस दायित्व को स्वीकार किया है। कवि ने इसी दायित्वबोध के साथ कविताएँ रची भी हैं। अपनी कविताओं में उन्होंने तय किया है कि ज़रूरत है इसे केन्द्रीय धारा बनाने की और तमाम प्रकार के अवसरवाद तथा सुविधापरस्ती से मुक्त होने की। कविता फिर हाशिए पर नहीं जीवन के केन्द्र में होगी।

इस संग्रह की सभी कविताएँ अपने आसपास के माहौल को उकेरती हुई विस्तृत कैनवास पर उन्हें उतारती हैं। साधारण से साधारण लगने वाली घटना को भी उसकी गंभीरता में पहचानने वाले तथा पूर्ण अर्थवत्ता प्रदान करने वाले प्रणव जी असाधारण कवि हैं।

समय के यथार्थ को पहचान कर कविता में शब्द देकर पाठकों को निःशब्द कर देना कोई साधारण बात नहीं है। एक पाठक के तौर पर मैंने यह पाया कि इस संग्रह में समय के यथार्थ को बारीकी से उकेरने का प्रयास किया गया है। और कविताओं ने समय की सामाजिक ज़रूरत के अनुरूप अपनी दिशा और अपना स्वरूप ग्रहण किया है।



(कहानी संग्रह)

गुज़रना ठहरे हुए पलों का

समीक्षक : अंजु शर्मा

लेखक : डॉ. रमाकांत शर्मा

प्रकाशक : समृद्ध पब्लिकेशंस,
दिल्ली

अंजु शर्मा

402-श्री राम निवास, टट्टा निवासी
सीएचएस, पेस्टम सागर रोड नं.3,

चेम्बूर, मुंबई-400089

मोबाइल- 8879536294

ईमेल- anju.sharma@gmail.com

रमाकांत शर्मा का यह ग्यारहवाँ कहानी संग्रह है। कहानी कहने का उनका अपना तरीका है। कहानी की शुरूआत से ही पाठक को यह लगने लगता है कि कहानी कहीं ना कहीं उसकी या उसके आसपास के लोगों की जिंदगी से जुड़ी है। एक सामान्य सी दिखने वाली कहानी का अंत उसे चौंका देता है और कहानी को विशेष बना देता है। लगभग सौ कहानियाँ लिख चुके रमाकांत शर्मा की हर कहानी जीवन के नए अर्थ तलाशती दिखती है और इसीलिए कहानियों के विषयों में जबरदस्त विविधता नज़र आती है। उनकी कहानियों के बारे में वरिष्ठ साहित्यकार दामोदर खड़से की यह टिप्पणी एकदम खरी उतरती है कि 'रमाकांत शर्मा की कहानियाँ मानव मन की अतल गहराइयों में पहुँच कर पात्रों के सुख-दुख से संवाद करती हैं। यह काम आसान नहीं है, पर उनकी कहानी की सहज और स्वाभाविक कहन इसे आसान बना देती है।' 'अपनी बात' में रमाकांत शर्मा ने इस बात को रेखांकित किया है कि हर लेखक कहीं ना कहीं संवेदनशील होता है। उनकी कहानियों में यह संवेदनशीलता स्पष्टतः झलकती नज़र आती है जो पाठक को अपने साथ बहा ले जाने का मादूदा रखती है।

संग्रह की पहली कहानी 'बोरियाँ' घर में पड़ी पुरानी बोरियों जैसी मामूली चीज़ को लेकर बुनी गई एक सशक्त कहानी है। हम जिसे बेकार और फेंकने वाली चीज़ समझते हैं, वह किसी और के लिए कितनी उपयोगी हो सकती है, और वह भी किस वजह से, यह बात मन को झकझोर कर रख देती है। 'सुगो ताई' एक ऐसी औरत की कहानी है जो अपने गम भुलाकर हँसते-हँसते जिंदगी गुज़ारने में विश्वास रखती है। लेकिन, जब वह अपने लिए 'स्टैंड' ले लेती है तो इतनी दृढ़ता से उस पर क़ायम रहती है कि घर, परिवार और समाज को झुका कर ही दम लेती है। संग्रह की तीसरी कहानी 'पिघलता हुआ सच' इस सत्य को उजागर करती है कि जिस सच को हम जाने-अनजाने न तो देख पाते हैं और न ही स्वीकार कर पाते हैं या फिर स्वीकार करना ही नहीं चाहते, वह जब मोमबत्ती की तरह पिघलने लगता है तो मन ही नहीं, आत्मा तक को रोशन कर जाता है।

कहानी 'अठन्नियाँ' बचपन के मासूम प्रेम को और उसकी परिणति को एक बिलकुल नए अंदाज़ में पेश करती है। मिन्नी और राजू के बीच की कोमल भावनाओं को अठन्नियों के माध्यम से जिस तरह प्रस्तुत किया गया है, वह इस कहानी को नायाब बना देता है। आधुनिक पीढ़ी के लिए ऐसा भावनात्मक संबंध अजनबी हो सकता है, पर यह आज भी होता है हर उस भावुक मन के साथ, जो प्यार की गहराई को और उसकी भावनात्मक प्रखरता को महसूस कर लेता है। यह कहानी पाठक को एक मासूम प्रेम-कथा से सराबोर कर देती है। 'अफ़सोस' कहानी सुशिक्षित मध्य-वर्ग के जीवन की दास्तान है। विशेषकर, यह स्त्रियों के जीवन की जटिलता को बड़ी संजीदगी से सामने लाती है। समाज में ऐसे कितने ही उदाहरण मिल जाएंगे जिनमें स्त्रियाँ चुपचाप नारकीय जीवन जीती रहती हैं। पर, इस कहानी की नायिका कला भाभी जिस तरह उसका प्रतिकार करती हैं, वह स्तंभित तो करता है, पर कहीं से भी ग़लत नहीं लगता। इस तरह की कहानियाँ सामाजिक चेतना लाने और जीवन को नई दृष्टि से देखने के लिए बहुत ज़रूरी लगती हैं।

संग्रह की अन्य दो कहानियाँ 'अर्जेंट मीटिंग' और 'जमीर का क्या है', समाज में व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था से पर्दा उठाती कहानियाँ हैं। इन कहानियों को पढ़ते समय सरकारी कार्यालयों की कार्यप्रणाली और हर स्तर पर हो रहे भ्रष्टाचार के दंश आतंकित करते हैं। इस पर अंकुश लगाने के लिए जिन अधिकारियों को जिम्मेदारी सौंपी जाती है, जब वे ही इसमें लिप्त हो जाते हैं और अपने राजनीतिक आकाओं को खुश करने के लिए सरकारी पैसे यानी जनता के पैसे का ग़लत इस्तेमाल करने लगते हैं तो इस सड़ी-गली व्यवस्था से बाहर निकलने की उम्मीद कैसे की जा सकती है? 'केले वाला' दिल को छू लेने वाली कहानी है। रोज़ाना केले बेचने के लिए दरवाज़े पर अनचाहे आ खड़े होने वाले केले वाले से परेशान और उसे भविष्य में कभी न आने की ताकीद करने वाले पति-पत्नी जिस शिद्दत के साथ उसके अपने बन जाते हैं, यह बदलाव मन

को स्पर्श किए बिना नहीं रहता। ऐसे सूक्ष्म भाव ही किसी मामूली सी लगने वाली कहानी को ऊँचाइयाँ बख्शाते हैं।

राजनीतिक बहस जब छिड़ जाती है तो अपने-अपने राजनीतिक दल और नेताओं के पक्ष में लोग लड़ने-मरने तक को तैयार हो जाते हैं। तैश में उन्हें यह भी नहीं सूझता कि वे क्या कह रहे हैं, किससे कह रहे हैं और क्यों कह रहे हैं। बस उनका मकसद एक ही होता है कि वे सामने वाले के पक्ष के राजनीतिक दल और नेताओं को येन-केन-प्रकारेण बेकार और जनता का दुश्मन सिद्ध कर सकें। यह निरर्थक बहस इस हद तक चली जाती है कि दोस्त एक-दूसरे के साथ दुश्मनों का सा व्यवहार करने लगते हैं। 'अथश्री मितोरा कथा' ऐसे ही दो दोस्तों की कहानी है जो राजनीतिक बहस-बाजी के चक्कर में अपनी दोस्ती तक तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। यह स्थिति काल्पनिक नहीं है। राजनीतिक विचारधारा के चलते संबंधों के बीच पड़ती दरारों के अनेक उदाहरण हमें देखने को मिल जाएँगे। यह कहानी इस अर्थ में नए विषय के साथ महत्वपूर्ण कहानी बन जाती है जो पाठक को यह सोचने पर विवश कर देती है कि अलग-अलग राजनीतिक विचारधारा के चलते बहस इस हद तक ना चली जाए जहाँ अच्छे-खासे संबंधों के बीच खटास की नौबत आ जाए।

अपने बच्चों का भविष्य बनाने और उसे सुरक्षित करने के लिए माँ-बाप क्या कुछ नहीं करते। अपनी छोटी-बड़ी जरूरतों को कुर्बान करके भी उनकी यह कोशिश रहती है कि उनके जाने के बाद भी उनके बच्चों को कोई परेशानी न हो। कहानी 'बोधिवृक्ष' इस ज्ञात तथ्य को पुनर्प्रस्तुत करने वाली साधारण कहानी नहीं है। यह कहानी सिक्के के उस दूसरे पहलू को दिखाने-समझाने का प्रयास करती है जिसमें बच्चों के लिए अनावश्यक रूप से यह सब करने की जरूरत पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। जब ज्ञान-चक्षु खुलते हैं तो सोचने की दिशा बदल देते हैं। हर माता-पिता तक यह कहानी पहुँचनी चाहिए।

'मंजरी' इस सत्य को रेखांकित करती कहानी है कि सहज व्यवहार भी कभी असहज

स्थिति पैदा कर सकता है। मनोविज्ञान कहता है कि लोग एक-एक शब्द का अपने-अपने तरीके से जुदा अर्थ निकालते हैं। हर कोई चाहता है कि उसके साथ आदर और स्नेह के साथ सहज व्यवहार किया जाए, पर इसे समझना इतना आसान नहीं होता। अपने सेवानिवृत्त बाँस से मंजरी का सहज व्यवहार जब गलतफ़हमी पैदा करने लगता है तो उसका वही परिणाम होता है जो होना चाहिए था।

हम सभी ने निकट अतीत में कोरोना जैसी महामारी का दंश झेला है। उस समय की त्रासदी को कोई भी याद नहीं रखना चाहेगा। वह समय एक बुरा सपना नहीं था, ऐसा यथार्थ था जिसकी विभीषिका ने सभी को दहला दिया और जिसके परिणाम विश्व आज भी भुगत रहा है। पता नहीं, इसे कहानियों का विषय होना चाहिए भी या नहीं। पर, इस पर अनेक कहानियाँ लिखी गई हैं, 'भयभीत' भी उसी की एक कड़ी है। कहानी 'भयभीत' पढ़ते समय पाठक उस स्त्री की मनोदशा से गुजरने लगता है, जिसका पति और बेटा विदेश में हैं और वह कोरोना की वजह से अपने ही घर की कैद में नितांत अकेली है। खुद की चिंता तो है ही, विदेश में रह रहे अपने पति और बेटे की चिंता भी उसे भयाक्रांत किए हैं जो चाहकर भी ना तो उसके पास आ सकते हैं और ना ही वह उनके पास जा सकती है। इस पर, अपने आसपास का माहौल और दिन-प्रतिदिन घटती घटनाएँ उसे बुरी तरह भयभीत करके रख देती हैं। शुरुआत में ऐसा लगता है जैसे यह कहानी उस समय के डरा देने वाले माहौल का ब्योरा देने के लिए लिखी गई है। पर, रमाकांत शर्मा की लगभग हर कहानी के अंत की तरह इस कहानी का अंत भी पाठक की सोच से बिलकुल अलग निकलता है। यह कहानी भय पर विजय पाने का ऐसा रास्ता दिखाने वाली कहानी बन जाती है, जिसका मूल भगवद् गीता के संदेश में मिलता है। इस कहानी के लिखे जाने का यह सकारात्मक प्रयोजन आश्वस्त करने वाला बन जाता है।

किसी से नाराज होने पर सबसे पहला काम यह किया जाता है कि उससे बोलना बंद

कर दिया जाता है। वह सामने पड़ जाए तो उसे अनदेखा कर दिया जाता है। कई बार तो ऐसा होता है कि जिससे हम नाराज होते हैं उसे यह भी पता नहीं होता कि यह नाराजगी है किसलिए। ऐसे मामलों के मूल में अक्सर किसी दूसरे से कही-सुनी बात पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेने की गलती निहित होती है। सुनी-सुनाई बात सही है या नहीं, इसका पता तो तभी चल सकता है जब हम उस व्यक्ति से खुलकर बात कर लें जिसके बारे में सुनकर हम मन में मैल बिठा लेते हैं। लेकिन, 'अनबोला' आड़े आ जाता है और अच्छे-खासे संबंधों के टूटने का कारण बन जाता है। मन ही मन जलते-भुनते रहने का बुरा प्रभाव काम और सेहत पर भी पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए यह जरूरी है कि बात की तह तक पहुँचे बिना बोलना बंद नहीं किया जाए। यह कहानी इस बात को सहजता से पाठक के मन में उतार देती है और यही इसकी सफलता है।

जिंदगी में कुछ पल ऐसे भी आते हैं जिन्हें भरपूर जिया जाता है। ऐसे पल ठहरे हुए लगते हैं और मन करता है कि वे बस यूँ ही थमे रहें। आनंद के उन पलों में खोए हुए इस बात का भान भी नहीं रहता कि वक्त कभी थमता नहीं, कोई पल ठहरता नहीं, उसे गुजरना ही होता है। पर, आखिर क्यों नहीं ठहरता वह समय, जिसे वहीं रुक जाना चाहिए। इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'गुजरना ठहरे हुए पलों का' इसी भावना को व्यक्त करती हुई सुंदर कहानी है। यह हर पाठक को अपनी कहानी लग सकती है क्योंकि हरेक के जीवन में कभी ना कभी ऐसे पल आते ही हैं जब वह अपने प्रिय के साथ होता है। ऐसे समय में बस वे ही एक-दूसरे के साथ होते हैं, कोई गिला नहीं, कोई शिकवा नहीं, कोई संवाद नहीं, बस उन्हें पूरी सृष्टि थमी हुई लगती है।

इस कहानी संग्रह की हर कहानी पाठक से कुछ कहती हुई नज़र आती है। यह संदेश पाठक तक पहुँचता भी है और वह तन्मयता से पृष्ठ दर पृष्ठ पलटता चला जाता है। कहानी संग्रह के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।



(कहानी संग्रह)

गठरी और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : हरभजन सिंह मेहरोत्रा

प्रकाशक : काव्यांश प्रकाशन,
ऋषिकेश

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1,

नई दिल्ली- 110048

मोबाइल- 9868182835

ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

हिन्दी भाषा के साहित्य का वितान बहुत विस्तृत हैं क्योंकि इसमें लिखने वाले भारत के विभिन्न राज्यों, क्षेत्रों व इलाकों में रहने-बसने वाले हैं। वे अनेक प्रकार के काम-धंधे, रोजगार व नौकरी में व्यस्त होते हुए भी, विविध विधाओं में अनेकानेक प्रकार की साहित्यिक रचना करते हैं। जिस कारण उनके अनुभवों, पृष्ठभूमि व मान्यताओं की विविधता कारण हिन्दी साहित्य बहु-विषयक और बहु-आयामी प्रतीत होता है। कानपुर में रहने वाला, पेशे से इंजीनियर हरभजन सिंह मेहरोत्रा लंबे समय से हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दे रहा है। अब तक उसके सात उपन्यास, पाँच कहानी-संग्रहों के अलावा भी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हैं। प्रस्तुत कहानी-संग्रह 'गठरी और अन्य कहानियाँ' में उसकी कुल पाँच कहानियाँ शामिल हैं। शहरी मध्यवर्गीय परिवेश व चरित्रों से परिपूर्ण उसकी कहानियाँ के केंद्र में सामान्य व्यक्ति है। जिसकी बहुत बड़ी महत्त्वकांक्षाएँ नहीं हैं। परन्तु उस साधारण जीवन में कई बार ऐसा कुछ घटित हो जाता है, जो हैरान तो करता है, उस साधारण व्यक्ति के उस सामान्य परिस्थिति में लिया गया अचानक कोई निर्णय, उसके जीवन का रुख बदल देता है। उस समय अनजाने में सामने आई परिस्थिति व्यक्ति के जीवन की दशा और दिशा दोनों ही बदल के रख देती है। इस संग्रह के अध्ययन से यह बात अधिक स्पष्टता से समझ में आती है।

संग्रह की पहली कहानी 'अधोरी' आधुनिक युग में, शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय परिवारों द्वारा भी अपने स्वार्थ की पूर्ति के समक्ष किसी दूसरे के मासूम बच्चे की बलि देने जैसी प्रथा को स्वीकार करना और उसे व्यवहार में लाने के लिए हर संभव हथकंडे अपनाते देख, मन ग्लानि और घृणा से भर जाता है कि ऐसी अनुचित व गैरकानूनी प्रक्रियाएँ अभी भी हमारे 'कथित सभ्य समाज' में न केवल विद्यमान हैं बल्कि इसे समाज का रसूखदार व शिक्षित वर्ग भी मान्यता देता है। अपने बच्चे को बचाने के लिए जहाँ उर्वशी ने ऐसे अनुचित कार्य को अपनाने में अपने सामंती बाप व भाई की सहायता ली, वहीं उसके पति शेखर का मन भीतर से उसे कचोटता रहा। बलि देने जैसे कामों के लिए किसी गरीब परिवार का शिशु सबसे उपयुक्त रहता है। परन्तु जब गाँव के अधोरी ने सामंती सोच के परिवार के सामने रोते-बिलखते शिशु की बलि देने के लिए हाथ में गंडासा उठाया, तभी शिशु की गरीब व अशिक्षित माँ ने उस अधोरी से अपना बच्चा छीनते हुए उसे ऐसी जोरदार फटकार लगाई कि वहाँ मौजूद बाकी लोग भी सकते में आ गए। कहानी में शामिल दोनों माओं में से अशिक्षित माँ, उन सभ्य और शिक्षित विचारों के मुँह पर तमाचा लगाते हुए, अपने दम पर, अपने बच्चे को बचा ले गई।

कहानी 'अपराजिता' कहानी बहु-आयामी परतों में फैली हुई है। माँ के निधन के बाद, बाप के कठोर स्वभाव से डरी-सहमी अपराजिता दादी-नानी के पालन-पोषण के बीच भी एकदम अकेलापन महसूस करती। इस अकेलेपन में स्वयं डायरी लिखते हुए, वह डायरी विषय पर ही

शोध कार्य करने की ओर आकर्षित हुई। चर्च के पादरी द्वारा किसी अनाम की लिखी एक डायरी ने उसका परिचय स्वयं से करवाया। जिससे उसे पता लगा कि अनजाने में कही गई उसकी एक बात ने डायरी-रचयिता को बॉडी बिल्डर बनने के लिए प्रेरित किया। अधिक उत्साह के कारण अततः उस नौजवान की असमय ही मृत्यु हो गई। अपराजिता को यह जान कर बेहद दुख हुआ, उसी डायरी से उसकी बूढ़ी माँ की जानकारी मिलने पर वह उसे अपने घर ले आई। अब उसके घर में मार्केज की बूढ़ी माँ भी रहने लगी। इस कहानी का विषय बहुत खूबसूरत है। कहानी अनेक लेखकों की डायरियों की चर्चा करती है। उसने ईसाई धर्म के संदर्भों व प्रसंगों का अनुकूल चित्रण किया। क्रिसमस के सर्द मौसम में प्राकृतिक दृश्यों का उल्लेख कथानक का ही हिस्सा लगता है। एक डायरी किसी व्यक्ति की केवल निजी जीवन का चित्रण नहीं होती, बल्कि उसके सपनों, उदासी, अकांक्षाओं, कमजोरियों का भी लेखा-जोखा होती है। रचनाकार उसमें अपने अंदर-बाहर को उडेल कर रख देता है।

'तीन बुड्ढे' कहानी तीन व्यक्तियों की ऐसी कहानी, जो बचपन से जवानी तक साथ रहे। फिर अपने-अपने जीवन की रफ्तार में ऐसे खोए कि एक-दूसरे के लिए गुम से हो गए। बुढ़ापे में एक आयोजन पर वे तीनों मिले और अपनी पुरानी यादों के साथ अपने जीवन की अच्छी-बुरी घटनाओं को साझा करते हुए, फिर से खुद में खोने लगे। 'तेरे वरगी कोई नई' कहानी अविभाजित भारत में किशोरावस्था की मासूमियत से शुरू हुई एक प्रेम कहानी, जिसमें बड़े घर की अलहड़, चंचल केसरो, गरीब पर लायक हारुन के मन को भा गई। हारुन की कापियों से नकल मारते-मारते केसरो ने उसे अपनी हवेली में आकर पढ़ाने का आमंत्रण दे डाला। उस हवेली की भव्यता ने हारुन को भी सकुचा दिया। परीक्षा के दिनों में ही भारत का विभाजन हो गया। हिन्दूओं-सिखों को वहाँ अपने घर-बार छोड़ कर खाली हाथ निकलना पड़ा। मैट्रिक के कारण हारुन को उसके एक अध्यापक ने पुलिस में भर्ती

करवा दिया। विभाजन की विभीषिका दौरान भी हारुन को केसरो दिन-रात याद आती रही। वह कई बार उसकी उजाड़ पड़ी हवेली की ओर भी गया, परन्तु केसरो का कुछ पता न लगा। एक दिन एक चकलाघर में छपा मारने गए हारुन को कागज़-पत्र में अपने गाँव 'पिंड कोठा' की किसी फिरदौस बेगम का सर्टिफिकेट मिला। उसने वहाँ की मालिकन से इस बारे में पूछताछ की, उसने बात घुमाते हुए कहा कि यह लड़की बहुत पहले यहाँ से अपने आशिक के साथ भाग गई है। परन्तु हारुन अपने गाँव में इस नाम की किसी युवती के बारे में नहीं जानता था। उसने उत्सुकतावश अपने पुलिसिया होने का रौब डालते हुए उस युवती से मिलवाने का दबाव डाला। मालकिन ने जिस लड़की से उसे मिलवाया, उसे देख कर वह उसके वहाँ होने की कभी कल्पना नहीं कर पाया था, वह केसरो थी। जिस केसरो को वह दिन-रात अपने ख्वाबों में हँसते-खिलखिलाते, चंचलता से भागते देखता रहा, सामने खड़ी केसरो उसका अंशमात्र भी नहीं थी। केसरो ने उसे प्यार का वास्ता देते हुए अपने साथ ले जाने के लिए कहा परन्तु अपने सपनों की मल्लिका का यह हश्त्र देख सकते में आए हारुन ने, उस अनहोनी परिस्थिति में अपनी ड्यूटी निभाना अधिक उचित समझा। विभाजन में किसे कितना नुकसान पहुँचा, किसका कितना कुछ खो गया, किसके अपने मर गए, इन्हें आँकड़ों में नहीं बताया जा सकता। केसरो व हारुन जैसे कितने ही ऐसे किशोर व युवा रहे, जिनकी मासूम मुहब्बतें विभाजन की भेंट चढ़ गई। यह तो तथ्य ही है कि दुनिया के किसी हिस्से में कुछ भी हिंसात्मक दंगे-फसाद हो, उसका भुगतान औरत की देह को ही करना पड़ता है। अलहड़पन और चंचलता से आगे बढ़ती इस मासूम प्रेम कहानी के माध्यम द्वारा लेखक अमीरी-गरीबी से लेकर, बदलती परिस्थितियों में बदलते तेवरों को सहजता से प्रस्तुत करता है। परन्तु यह भी सच है कि प्रेम का दम भरने वाला हारुन, मुसीबत में पड़ी प्रेमिका का हाथ थामने की हिम्मत न करके, प्रेम में असफल हो गया। सच है, दोस्ती, अपनेपन और प्रेम

की असल पहचान मुसीबत के समय ही होती हैं। जो इसमें से साफ बच निकलता है, वह इन सभी में असफल सिद्ध होता है।

शीर्षक वाली कहानी 'गठरी' अपने आप में एक औपन्यासिक कृति है। जिसका केंद्रीय पात्र प्रीतम अपनी ज़मीर के ज़िंदा होने का प्रमाण देते हुए अपने अय्याश सामंती सोच वाले जमींदार बाप को छोड़ कर अनजाने राह की ओर चल दिया। उसने छोटी उम्र में ही अपनी समझदारी और परिश्रम के द्वारा अपने सेठ मालिकों की फैक्ट्रियों को लाभ पहुँचाया परन्तु कारोबारी और व्यवहारिक सोच में अपरिपक्व रहने के कारण अपने बड़े परिवार की ज़िम्मेदारी सँभालने में असफल रहा। अंत में उसने मौत को गले लगाना उचित समझा। जबकि कारोबारी और लाभ प्रवृत्ति के मालिकों ने सारी उम्र उसकी समझदारी के बल पर अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के बावजूद अपनी स्वार्थी सोच को आगे रखा। जिसके एवज में अधिकतर गरीब, भोला-भाला और योग्य व्यक्ति इस समाज में अपने ज़िम्मेदारियों को ईमानदारी से निभाने में सदा असफल रहता है। अपनी बच्ची 'सती' को सुरक्षित रखने के लिए उसे गठरी में बाँध कर उठाने वाला अंत में स्वयं क्रेन द्वारा पानी में से एक गठरी के रूप में बाहर निकाला गया।

लेखक के पास भाषा का प्रवाह बहुत अच्छा है। उसने प्रत्येक कहानी में उसके परिवेश व पात्रों के अनुरूप ही भाषा व शब्दों का इस्तेमाल किया। कठिन परिस्थिति का सामना करने वाले में जीत हमेशा साहस की होती है। अपने साधरण जीवन में वह तब कुछ असाधरण कर पाता है परन्तु सामान्यतः वह अवसर चूक भी जाता है। लेखक ने पंजाबी परिवेश की दोनों कहानियों में पंजाबी भाषा के उपयुक्त शब्दों द्वारा उन्हें व्यक्त किया, जिससे कहानियाँ अपने परिवेश में अधिक खिल कर साकार हो सकी। ये सभी घटनाएँ ऐसी हैं, जो समाज में कहीं न कहीं अवश्य घटित होते रहती हैं। हरभजन सिंह मेहरोत्रा ने अपने अनुभवों व कल्पना के माध्यम से कहानियों को कथानकों में ढाल कर प्रस्तुत किया है।

पुस्तक समीक्षा

भारत का स्वाधीनता-संग्राम और क्रांतिकारी



शैलेन्द्र चौहान

(इतिहास)

भारत का स्वाधीनता-संग्राम और क्रांतिकारी

समीक्षक : चंद्रमौलि चन्द्रकांत

लेखक : शैलेन्द्र चौहान

प्रकाशक : मंथन प्रकाशन, जयपुर

चंद्रमौलि चन्द्रकांत

प्रोफेसर, मानविकी संकाय,
राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान,
वारंगल, हनमकोंडा -506004,
तेलंगाना

ईमेल- chandramaulichandrakant@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम विश्व इतिहास के सबसे व्यापक और बहुआयामी राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों में से एक है। यह केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक आत्मसम्मान, आर्थिक स्वाधीनता और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना का दीर्घकालिक अभियान भी था। किंतु स्वतंत्रता के बाद इतिहास-लेखन की मुख्यधारा में इस विराट् आंदोलन का चित्र प्रायः कुछ प्रमुख नेताओं और घटनाओं तक सीमित होकर रह गया। परिणामतः असंख्य क्रांतिकारी, आदिवासी नायक, किसान-विद्रोही, महिला सेनानियाँ और प्रवासी भारतीयों का अप्रतिम योगदान राष्ट्रीय स्मृति के हाशिए पर चला गया। शैलेन्द्र चौहान की पुस्तक 'भारत का स्वाधीनता-संग्राम और क्रांतिकारी' इसी ऐतिहासिक विस्मृति के विरुद्ध एक गंभीर वैचारिक हस्तक्षेप है। यह पुस्तक इतिहास के किसी स्थापित आख्यान का प्रतिवाद मात्र नहीं करती, बल्कि भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की बहुवर्णी और बहुध्रुवीय संरचना को उसके समूचे वैभव के साथ पुनः प्रतिष्ठित करती है।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता इसका व्यापक ऐतिहासिक कालबोध है। लेखक ने स्वतंत्रता-संग्राम को केवल 1857 से 1947 तक सीमित नहीं रखा है। वे औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध प्रारंभिक प्रतिरोधों से लेकर आज़ाद हिंद फ़ौज तक फैले लगभग दो शताब्दियों के संघर्ष को एक अखंड ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। तिलका माँझी, बिरसा मुंडा और टंट्या भील जैसे आदिवासी जननायकों से आरंभ होकर 1857 के महासंग्राम, ग़दर आंदोलन, हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन, हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन, भगत सिंह और उनके साथियों की वैचारिक क्रांति, रासबिहारी बोस और अंततः नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में आज़ाद हिंद फ़ौज तक की पूरी यात्रा इस पुस्तक में एक सुसंगत ऐतिहासिक विकासक्रम के रूप में उपस्थित होती है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय स्वतंत्रता आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि दीर्घकालिक सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक और राजनीतिक संघर्षों का संचयी परिणाम थी।

पुस्तक का दूसरा महत्वपूर्ण गुण इसका वस्तुगत और लोकतांत्रिक चयन है। लेखक ने इतिहास की प्रचलित लोकप्रियता को चयन का आधार नहीं बनाया, बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन में वास्तविक योगदान को महत्व दिया है। इसीलिए पुस्तक में मंगल पांडे, रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, अशफ़ाक़ उल्ला खाँ, बटुकेश्वर दत्त और रासबिहारी बोस जैसे विख्यात क्रांतिकारियों के साथ-साथ योगेशचंद्र चटर्जी, बारिन्द्रनाथ घोष,

करतार सिंह सराभा, टंट्या भील, बिरसा मुंडा और तिलका माँझी जैसे अपेक्षाकृत कम चर्चित किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों को भी समान गरिमा के साथ स्थान दिया गया है। यह चयन बताता है कि लेखक इतिहास को सत्ता-निर्मित प्रतिष्ठा के आधार पर नहीं, बल्कि ऐतिहासिक भूमिका के आधार पर पढ़ते हैं।

इस संदर्भ में पुस्तक का महिला-केन्द्रित दृष्टिकोण विशेष उल्लेखनीय है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में महिलाओं की भूमिका प्रायः प्रतीकात्मक या सहायक रूप में प्रस्तुत की जाती रही है, जबकि इस पुस्तक में उन्हें संघर्ष की सक्रिय निर्माता और क्रांतिकारी चेतना की वाहक के रूप में देखा गया है। महिला क्रांतिकारियों का समावेश केवल प्रतिनिधित्व की औपचारिकता नहीं, बल्कि स्वतंत्रता-संग्राम की वास्तविक सामाजिक संरचना को समझने का प्रयास है। इससे यह स्थापित होता है कि भारतीय स्वतंत्रता किसी एक वर्ग, लिंग या समुदाय की उपलब्धि नहीं थी, बल्कि समूचे समाज के सामूहिक संकल्प और सहभागिता का परिणाम थी।

पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक योगदान यह है कि यह क्रांति की अवधारणा को व्यापक अर्थों में परिभाषित करती है। यहाँ क्रांति केवल सशस्त्र संघर्ष नहीं है। लेखक के लिए क्रांति विचार है, संगठन है, सांस्कृतिक पुनर्जागरण है, जन-जागरण है, सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा है और अन्याय के विरुद्ध मनुष्य की अदम्य नैतिक शक्ति भी है। इसीलिए पुस्तक में साहित्य, पत्रकारिता, संगठन, वैचारिक निर्माण और सामाजिक चेतना को भी स्वतंत्रता आंदोलन के अभिन्न अंग के रूप में देखा गया है। यह दृष्टि क्रांतिकारी आंदोलन को रोमांचक घटनाओं की शृंखला से ऊपर उठाकर ऐतिहासिक परिवर्तन की व्यापक प्रक्रिया में रूपांतरित कर देती है।

शैलेन्द्र चौहान का इतिहास-बोध उल्लेखनीय है। वे घटनाओं का वर्णन भर नहीं करते, बल्कि उनके भीतर सक्रिय वैचारिक

प्रवृत्तियों की पहचान भी करते हैं। उनके लिए मंगल पांडे, बिरसा मुंडा, भगत सिंह और सुभाषचंद्र बोस अलग-अलग समय के व्यक्तित्व अवश्य हैं, किंतु वे सब भारतीय प्रतिरोध की एक सतत परंपरा के वाहक हैं। इस प्रकार पुस्तक इतिहास को खंडित नहीं करती, बल्कि उसकी अंतर्धाराओं को जोड़ते हुए एक समग्र राष्ट्रीय आख्यान निर्मित करती है। पुस्तक की एक अन्य विशेषता इसकी जनपक्षधर इतिहास-दृष्टि है। लेखक इतिहास को शासकों की कथा नहीं बनने देते। उनके यहाँ किसान हैं, आदिवासी हैं, श्रमिक हैं, छात्र हैं, महिलाएँ हैं, पत्रकार हैं और वे असंख्य गुमनाम लोग भी हैं जिन्होंने अपने जीवन का सर्वस्व राष्ट्र को समर्पित कर दिया। इस प्रकार पुस्तक इतिहास को अभिजन-केंद्रित दृष्टिकोण से मुक्त कर जन-इतिहास की दिशा में ले जाती है। यह दृष्टि समकालीन इतिहास-लेखन की लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों से गहरे स्तर पर जुड़ती है।

इस पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इसमें स्वतंत्रता-संग्राम की विभिन्न धाराओं को परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक रूप में देखा गया है। गांधीवादी आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन, आदिवासी प्रतिरोध, प्रवासी भारतीयों का संघर्ष और सैन्य प्रतिरोध-इन सभी को राष्ट्रीय मुक्ति की साझा प्रक्रिया के रूप में समझा गया है। यह दृष्टि इतिहास की कृत्रिम द्वंद्वत्मकताओं से मुक्त होकर राष्ट्रीय आंदोलन की वास्तविक बहुलता को सामने लाती है।

लेखक की भाषा इस पुस्तक की एक अतिरिक्त शक्ति है। भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और तथ्यपरक है, किंतु उसमें वैचारिक ऊष्मा और राष्ट्रीय संवेदना का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। लेखक भावुकता का सहारा लिए बिना पाठक के भीतर स्वतंत्रता-संग्राम के प्रति सम्मान और जिज्ञासा उत्पन्न करने में सफल होते हैं। यही कारण है कि पुस्तक शोधार्थियों, विद्यार्थियों, अध्यापकों और सामान्य पाठकों-सभी के लिए समान रूप से उपयोगी बन जाती है।

समकालीन संदर्भों में इस पुस्तक की

प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। ऐसे समय में जब इतिहास को संकीर्ण वैचारिक आग्रहों के अनुसार पुनर्परिभाषित करने की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, यह कृति स्मरण कराती है कि भारत की स्वतंत्रता विविधताओं के सम्मान, साझा संघर्ष और सामूहिक बलिदान का परिणाम थी। रामप्रसाद बिस्मिल और अशफ़ाक़ उल्ला ख़ाँ की मित्रता, भगत सिंह का वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बिरसा मुंडा का आदिवासी स्वाभिमान, टंट्या भील का जनप्रतिरोध और सुभाषचंद्र बोस का अदम्य राष्ट्रबोध-ये सभी मिलकर भारतीय राष्ट्रवाद की बहुलतावादी आत्मा का निर्माण करते हैं। पुस्तक इसी व्यापक राष्ट्रीय चेतना को पाठक के सामने रखती है।

वस्तुतः 'भारत का स्वाधीनता-संग्राम और क्रांतिकारी' इतिहास की पुनर्रचना से अधिक राष्ट्रीय स्मृति के पुनर्संगठन का कार्य करती है। यह बताती है कि स्वतंत्रता केवल सत्ता-परिवर्तन नहीं थी; वह मनुष्य की गरिमा, सामाजिक न्याय, समानता, आत्मनिर्णय और सांस्कृतिक स्वाधीनता की स्थापना का विराट स्वप्न भी थी। इस दृष्टि से यह पुस्तक अतीत का स्मरण भर नहीं, वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक वैचारिक दस्तावेज़ है।

समग्रतः शैलेन्द्र चौहान की यह कृति भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की बहुध्रुवीय संरचना, उसके वैचारिक विकास, उसके सामाजिक विस्तार और उसकी मानवीय ऊँचाइयों को समझने की दृष्टि प्रदान करती है। इसमें इतिहास का तथ्य है, विचार की गंभीरता है, राष्ट्रीय स्मृति का विस्तार है और उपेक्षित नायकों को उनका उचित स्थान दिलाने का ईमानदार प्रयास भी। इसीलिए यह पुस्तक केवल क्रांतिकारियों का परिचय-संग्रह नहीं, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की बहुआयामी चेतना का एक महत्वपूर्ण वैचारिक दस्तावेज़ है, जो इतिहास को अधिक व्यापक, अधिक लोकतांत्रिक और अधिक मानवीय परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए प्रेरित करती है। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि और स्थायी प्रासंगिकता है।



(उपन्यास)

सुलगती औरत का शौर्यनामा

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : सूर्यकांत नागर

प्रकाशक : अद्विक पब्लिकेशन,
दिल्ली

दीपक गिरकर

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,

इंदौर- 452016, मप्र

मोबाइल- 9425067036

ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

'सुलगती औरत का शौर्यनामा' वरिष्ठ साहित्यकार सूर्यकांत नागर का तीसरा उपन्यास है। यह उपन्यास एक संघर्षशील युवती रुचि के जीवन-संघर्ष का बहुआयामी और संवेदनशील आख्यान है। सामाजिक यथार्थ की ठोस भूमि पर निर्मित यह कृति केवल एक युवती के निजी जीवन की कथा नहीं, बल्कि समकालीन भारतीय समाज में स्त्री-अस्मिता, पारिवारिक विघटन, कार्यस्थल की राजनीति, जातिगत पूर्वाग्रह, आर्थिक विषमता तथा नैतिक मूल्यों के संघर्ष का सशक्त दस्तावेज है। व्यक्तिगत अनुभवों और सामाजिक यथार्थ का ऐसा संतुलित समन्वय इस उपन्यास को एक प्रभावशाली सामाजिक यथार्थवादी कृति के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

उपन्यास की केंद्रीय शक्ति इसकी नायिका रुचि है। वह परिस्थितियों की शिकार होकर भी स्वयं को पीड़िता तक सीमित नहीं रखती, बल्कि प्रत्येक संकट को आत्मविकास के अवसर में बदल देती है। माँ की असामयिक मृत्यु, पिता का पुनर्विवाह, सौतेली माँ का उपेक्षापूर्ण व्यवहार, घर छोड़ने की विवशता, झूठे आरोप, कार्यस्थल की ईर्ष्या, सामाजिक असुरक्षा तथा प्रेम और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच उत्पन्न द्वंद्व- इन सभी परिस्थितियों से जूझते हुए उसका व्यक्तित्व निरंतर अधिक परिपक्व, आत्मनिर्भर और दृढ़ बनता जाता है। उसका आत्मसम्मान, नैतिक साहस और संघर्षशीलता उसे समकालीन हिन्दी उपन्यासों की उल्लेखनीय नायिकाओं की पंक्ति में खड़ा करते हैं।

सूर्यकांत नागर के कथा-साहित्य की एक विशिष्ट विशेषता उनके पात्रों की जीवन-सापेक्षता है। उनके पात्र केवल घटनाओं को आगे बढ़ाने वाले माध्यम नहीं हैं, बल्कि अपने समय, समाज और परिस्थितियों के जीवंत प्रतिनिधि हैं। वे संघर्ष करते हैं, टूटते हैं, सँभलते हैं और अंततः अपने जीवन-मूल्यों के सहारे आगे बढ़ते हैं। कथाकार अपने पात्रों से केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं, बल्कि गहरी रागात्मक आत्मीयता के साथ जुड़ते हैं। यही कारण है कि उनके पात्र कृत्रिम नहीं लगते, बल्कि पाठक के अपने परिवेश के लोग प्रतीत होते हैं। यह आत्मीयता ही उनके कथा-संसार को विश्वसनीय और आत्मस्पर्शी बनाती है।

उपन्यास का आरंभ अत्यंत मार्मिक है। करवा चौथ के दिन माँ की आकस्मिक मृत्यु पूरे कथानक की भावनात्मक आधारभूमि निर्मित करती है। इसके बाद पिता का अकेलापन, पुनर्विवाह और परिवार के भीतर बदलते संबंध भारतीय मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं को विश्वसनीय ढंग से उद्घाटित करते हैं। सौतेली माँ मालती और उसकी बहन के माध्यम से कथाकार उन मनोवृत्तियों को रेखांकित करते हैं, जहाँ संपत्ति, अधिकार और भविष्य की असुरक्षा पारिवारिक संबंधों की आत्मीयता पर भारी पड़ने लगती है।

उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष कार्यस्थल का यथार्थ है। निजी महाविद्यालय की जड़ हो चुकी पुस्तकालय व्यवस्था, निष्क्रिय कर्मचारी, परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध और रुचि द्वारा पुस्तकालय के आधुनिकीकरण का प्रयास इस कृति को केवल पारिवारिक कथा बनने से बचाता है। यहाँ आधुनिक कार्यसंस्कृति, संस्थागत राजनीति और परिवर्तन के विरोध की प्रवृत्ति का सशक्त चित्रण हुआ है। प्रधान पुस्तकालयाध्यक्ष मुद्गल का चरित्र उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है, जो स्वयं निष्क्रिय रहते हुए भी कर्मठ और नवोन्मेषी व्यक्तियों की सफलता से असहज हो उठते हैं।

रुचि और अमित के संबंध उपन्यास में कोमल मानवीय संवेदना का स्पर्श जोड़ते हैं। दोनों के बीच बौद्धिक निकटता के आधार पर विकसित प्रेम स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होता

है। किंतु जाति, सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक हैसियत के कारण उत्पन्न अवरोध भारतीय समाज की गहरी मानसिक संरचना को उजागर करते हैं। उपन्यास का यह पक्ष प्रेम के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ की कठोरता को भी समान रूप से अभिव्यक्त करता है।

कथानक में अनेक समकालीन सामाजिक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उभरते हैं—महिलाओं की सुरक्षा, झूठे पुलिस प्रकरण, नशे का बढ़ता जाल, शिक्षा का व्यवसायीकरण, परीक्षा व्यवस्था की विसंगतियाँ, संस्थागत भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव तथा प्रभावशाली वर्ग के दोहरे नैतिक मानदंड। इन विषयों को कथाकार ने आरोपित रूप में नहीं, बल्कि कथा-प्रवाह के स्वाभाविक अंग के रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उपन्यास कहीं भी विचारप्रधान होकर बोझिल नहीं होता, बल्कि निरंतर पाठकीय रुचि बनाए रखता है।

उपन्यास का चरमोत्कर्ष अत्यंत सार्थक और प्रभावशाली है। सेठ घनश्यामदास का वास्तविक चेहरा उजागर होना तथा रुचि का आत्मसम्मानपूर्ण निर्णय पूरी कथा को एक ऊँचे नैतिक धरातल पर स्थापित करता है। रुचि का यह विश्वास कि 'मनुष्य का चरित्र उसके कर्मों से बनता है' केवल उसका व्यक्तिगत निष्कर्ष नहीं, बल्कि पूरे उपन्यास का केंद्रीय जीवन-दर्शन बनकर उभरता है। इस एक विचार के माध्यम से कथाकार जाति, सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक अहंकार पर तीखा प्रहार करते हैं।

यह उपन्यास केवल बाह्य संघर्षों की कथा नहीं है, बल्कि एक स्त्री के आंतरिक विकास, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की यात्रा भी है। परिस्थितियाँ उसे बार-बार परखती हैं, किंतु पराजित नहीं कर पातीं। उसके भीतर विद्यमान साहस, धैर्य और नैतिक दृढ़ता उसे प्रत्येक संकट से उबरने की शक्ति प्रदान करते हैं। यही कारण है कि रुचि का चरित्र किसी एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि संघर्षशील भारतीय स्त्री की सामूहिक चेतना

का प्रतीक बन जाता है।

कथाकार ने जीवन के गहन अनुभवों और मानवीय मूल्यों को अत्यंत सहजता और कलात्मक संयम के साथ कथा में समाहित किया है। ये विचार कहीं भी उपदेशात्मक नहीं बनते, बल्कि पात्रों के अनुभवों, संवादों और परिस्थितियों से स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित होते हैं। परिणामस्वरूप पाठक केवल कथा का आस्वाद ही नहीं लेता, बल्कि जीवन, समाज और मानवीय मूल्यों के संबंध में गंभीर आत्मचिंतन के लिए भी प्रेरित होता है।

समग्रतः यह उपन्यास संघर्ष, स्वाभिमान, ईमानदारी और मानवीय गरिमा की विजय का प्रेरक आख्यान है। अपनी प्रभावशाली कथावस्तु, सशक्त नायिका, विश्वसनीय चरित्र-चित्रण, सामाजिक सरोकार और जीवन-मूल्यों के कारण यह कृति समकालीन हिन्दी के सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों में विशिष्ट स्थान पाने की पूर्ण क्षमता रखती है।

सूर्यकांत नागर की लेखन-कला का मूल आधार जीवन के यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। वे साधारण जीवन की घटनाओं के माध्यम से सामाजिक अंतर्विरोधों और मानवीय संघर्षों को प्रभावशाली ढंग से उभारते हैं। उनके पात्र जीवन से जुड़े, विश्वसनीय और मनोवैज्ञानिक रूप से विकसित प्रतीत होते हैं। शिल्प की दृष्टि से उनका कथा-विन्यास संतुलित और रोचक है। वे घटनाओं, चरित्रों और संवादों का ऐसा संयोजन करते हैं कि कथानक स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता है और पाठक की रुचि बनाए रखता है।

उनकी भाषा सहज, प्रवाहपूर्ण, संप्रेषणीय और साहित्यिक गरिमा से युक्त है। संवाद पात्रानुकूल हैं तथा विचार कहीं भी उपदेशात्मक न होकर कथा के भीतर स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होते हैं। यही लेखन-कौशल उनके कथा-साहित्य को प्रभावशाली, विश्वसनीय और पाठक के मन में दीर्घकाल तक स्मरणीय बनाए रखता है। सूर्यकांत नागर एक सशक्त और रोचक उपन्यास रचने के लिए बधाई के पात्र हैं।

000

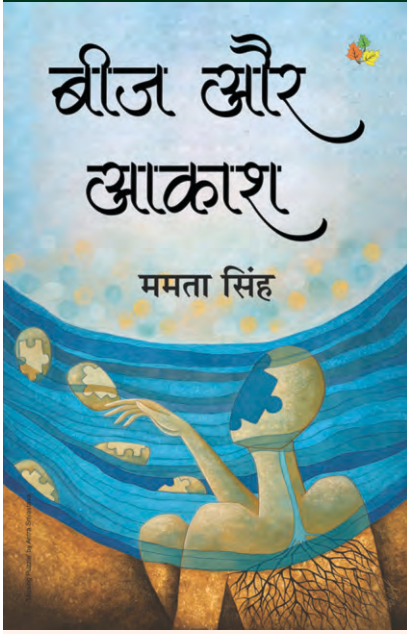
लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़ कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना जरूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अतः कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com



(उपन्यास)

बीज और आकाश

समीक्षक : उर्मिला शिरीष

लेखक : ममता सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मग

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

उर्मिला शिरीष

503, आर्चिड, रुचिलाईफ स्केप, जाटखेड़ी

होशंगाबाद रोड भोपाल, म.प्र. 462047

मोबाइल- 9303132118

ईमेल- urmilashrishi@hotmail.com

ममता सिंह का उपन्यास 'बीज और आकाश' पढ़कर लगा कि स्त्रियाँ आत्मनिर्भर हो गई हैं। उनकी दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है लेकिन उनकी अभी भी अनदेखी अनेक दुनिया हैं, जहाँ वे आज भी संघर्ष कर रही हैं, अपने सपनों के लिए, अपने परिवार के लिए, अपने प्रेम के लिए! बाजारवाद के दौर में लगता था स्त्री की देह ही अनेक रूपों में बेची जा रही है। लेकिन परिवार चलाने के लिए स्त्रियाँ अपनी कोख का व्यापार कर रही हैं, यह जानकार आश्चर्य नहीं बल्कि दुःख होता है। मातृत्व की कामना हर स्त्री के मन में स्वाभाविक रूप से होती है। जो स्त्रियाँ माँ नहीं बन पाती हैं उनके लिए संतान पाने के कई रास्ते भी खुले, जिन्होंने धीरे-धीरे संतान प्राप्ति के साथ-साथ व्यवसाय का रूप धारण कर लिया। जैसे सरोगेसी मदर भी एक व्यवसाय था/है। आईवीएफ तकनीक से बच्चा पाने का सुख जहाँ निःसंतान दंपतियों को मिला वहीं इस तकनीक ने भी अच्छे खासे व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। स्त्रियाँ मजबूरी में या पैसा कमाने की आकांक्षा में अपने ओबुलेशन (अंडाणुओं) को बेचकर परिवार चलाती हैं या किसी अन्य व्यवसाय की तरह इससे जुड़ जाती हैं। तन्वी की कहानी भी एक ऐसी ही मजबूर औरत की कहानी है। सागर और तन्वी प्रेम विवाह करते हैं। जैसा कि आम भारतीय परिवारों में होता है, शादी के बाद बच्चे पाने की ख्वाहिश वो भी इस हद तक माँग करना कि यदि बच्चा नहीं हो रहा है तो स्त्री को बाँझ मान लेना। बाँझ स्त्री की परिवार में कोई जगह नहीं होती। हर जगह एक अशुभ स्त्री मानकर उसे अपमानित और उपेक्षित किया जाता है। तन्वी भी इसी लांछना का शिकार होती है। अंततः वह आईवीएफ तकनीक द्वारा जुड़वा बच्चे पैदा करती है। धीरे-धीरे जुड़वा बच्चों की परिवार का बोझ बढ़ता जाता है। उसका पति सागर बच्चों की जिम्मेदारियों से प्रायः अलग हो रहा है। तब तन्वी को लगता है कि क्यों न वह भी अंडाणु बेचकर पैसा कमाकर अपने परिवार के लिए पैसा और दूसरों को बच्चे का सुख दे सकती है।

बाद में वह स्वयं इस व्यापार से जुड़ जाती है, 'तन्वी ने जब पहली बार अपना अंडाणु (ओबुलेशन) बेचा और एक परिवार को बच्चा मिला, तो उसके भीतर एक अनजानी शक्ति जाग उठी। कई डाक्टरों से मुलाकात का मिलसिला बढ़ा। उनमें से कोई उसे समझाते, ये विज्ञान है, वरदान है, इसे तमाम निःसंतान दम्पति की सेवा समझो और ये सोने की खान भी है। इसे आईवीएफ, डोनर, सरोगेसी सबको एक पैकेज भी बनाया जा सकता है।'

'धीरे-धीरे तन्वी के मन में एक व्यवसायिक समीकरण बनने लगा। उसने सोचा डॉक्टर आईवीएफ तकनीक पर लाखों रुपये लेते हैं और महिला को बस कुछ हजार थमा देते हैं तो क्यों न मैं ही पुल बनूँ।'

लेकिन बाद में तन्वी इन तमाम व्यवसाय वाली चीजों को छोड़कर मातृत्व की तरफ लौट जाती है, 'वर्षों बाद उसी शहर में एक छोटा सा मातृत्व केन्द्र खुला, बिना बोर्ड, बिना विज्ञापन के वहाँ न कोई पैकेज था न सौदा। सिर्फ़ उन औरतों के लिए एक ठिकाना था, जो माँ बनने या न बनने के बोझ से थक चुकी थीं।'

दूसरी स्त्री करिश्मा और राज की कहानी है। राज के किन्नर निकलने पर करिश्मा को गहरा आघात पहुँचता है। राज की माँ उसे अपना वंश बढ़ाने के लिए अपने साथ रखती है और आईवीएफ तकनीक के द्वारा ही बच्चा पा लेती है। राज का दर्द आत्महीनता में बदल जाता है। राज का पराये बच्चे को स्वीकारने-अस्वीकारने वाला द्वंद्व बेहद दर्दनाक है। अंत में वह राजी बनकर अपने किन्नर समाज में लौट जाती है।

तीसरी स्त्री मोनिका है जो विवेक से प्रेम करती है। दोनों प्रेम विवाह करते हैं लेकिन विवेक

दूसरी लड़की से प्रेम करने लगता है और उसके साथ दुबई चला जाता है। मोनिका भी दुबई जाती है जहाँ विवेक उससे मिलने आता है। वह भारत लौटकर भी आ जाता है। वह मोनिका के पास लौटना चाहता है पर मोनिका अब उसके साथ नहीं रहना चाहती है। मोनिका का यह अस्वीकार उसके स्त्री अभिमान की ही परिणति है।

तीनों स्त्रियों का संघर्ष, प्रेम, पुरुषों (पतियों) के साथ उनके भावनात्मक संबंधों का जुड़ना-बिछुड़ना बेहद दुःखद प्रसंगों के साथ गुजरना होता है। घर-बाहर की ज़िम्मेदारियों को निभाती स्त्री की संघर्ष यात्रा को कोई भी पुरुष उस स्तर पर समझ ही नहीं सकता जिस स्तर पर वह उसको जीती है।

तीनों स्त्री पात्रों की यह संघर्ष गाथा बेहद मर्मस्पर्शी है। स्त्रियाँ चाहे वे गाँव की हो या महानगरों की अपने भावनात्मक संबंधों को बहुत ईमानदारी के साथ निभाना चाहती हैं मगर पुरुष अपने शौक को, अपने सपनों को पूरा करने के लिए बड़ी आसानी से उन्हें किनारे करके आगे निकल जाता है। बड़ी खूबी के साथ इस उपन्यास में ममता सिंह ने आज के संदर्भों और परिवेश के साथ उनकी बदलती हुई छवियों को रेखांकित किया है। ये तीनों स्त्रियाँ हमें अपने आसपास की ही जान पड़ती हैं।

उपन्यास में जहाँ तन्वी और सागर के प्रेम के प्रसंग आते हैं वे काफी रोचक हैं। उनका प्यार ऐसे ही परवान चढ़ता है, जैसे इस उम्र के युवाओं का प्रेम। आश्चर्य कि तन्वी को शिद्दत से प्यार करने वाला सागर अंत में उससे दूर चला जाता है और अपने काम में व्यस्त हो जाता है। यह ज़्यादातर पुरुषों के लिए सामान्य बात होती है कि अगर स्त्री अपने मन से कुछ करे तो उसका परिणाम भी वही भुगते।

उपन्यास की भाषा में संगीत की रूमनियत, प्रवाह, मन को छूने वाली कोमलता और काव्यात्मकता है। यह एक पठनीय उपन्यास है जो स्त्रियों की एक अलग दुनिया को उजागर करता है।

000



(निबंध संग्रह) विचार और समय 2

समीक्षक : दीपक गिरकर
लेखक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र
466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल- +91-9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

'अमेरिका की सरकार और सोशल मीडिया कई कंपनियों और व्यापारियों पर जोर डाल रही है कि वे अपने कर्मचारियों को नौकरियों से न हटाएँ। कई तरह की वित्तीय सहायता भी दे रही है। कोरोना के थमते ही हर देश में बेरोज़गारी बढ़ जाएगी।' संदर्भित पंक्तियाँ प्रवासी वरिष्ठ साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा के लेख संग्रह 'विचार और समय भाग- 2' के एक लेख 'बायलॉजिकल युद्ध के लिए देशों को तैयार रहना पड़ेगा' की कुछ पंक्तियाँ हैं। उक्त पंक्तियाँ कोरोना महामारी के बाद उभरने वाली भयावह सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की ओर संकेत करती हैं। इन पंक्तियों में केवल तत्कालीन संकट की चिंता नहीं, बल्कि महामारी के दूरगामी प्रभावों- बेरोज़गारी, आर्थिक अस्थिरता और रोज़गार-

संकट के प्रति एक सजग साहित्यिक चेतावनी भी निहित है। इस पुस्तक 'विचार और समय भाग-2' में सुधा ओम ढींगरा के लोकहित के ज्वलंत मुद्दों पर 25 लेख संकलित हैं। इस पुस्तक का शीर्षक 'विचार और समय' अत्यंत सार्थक है।

इस पुस्तक के लेख में लेखिका ने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक क्षेत्र के विषयों जैसे बढ़ती बेरोज़गारी, आर्थिक मंदी, सोशल मीडिया, हिन्दी और युवा पीढ़ी, दोहरी मानसिकता, दोहरे मापदंड, नैतिक मूल्य, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, पर्यावरण, प्रकृति से छेड़छाड़, सकारात्मक सृजन और अन्वेषण, कटरपंथी और वामपंथी, तानाशाही सरकारें, युद्ध, मुफ्त सुविधाएँ, क़बीला सोच, पितृसत्तात्मक सोच, घरेलू हिंसा, अवसाद और आत्महत्या, समाज में बढ़ती हिंसा और बच्चों की असुरक्षा इत्यादि विषयों पर गहरे विश्लेषण के साथ तर्कसम्मत, व्यावहारिक और ठोस चिंतन बहुत ही मुखर ढंग से प्रस्तुत किए हैं।

सुधा जी का चिंतन किसी एक भूगोल या समाज तक सीमित नहीं, बल्कि वैश्विक मानवीय सरोकारों से गहराई से जुड़ा हुआ है। कैलिफोर्निया की विनाशकारी आग में झुलसते लोग हों, यूक्रेन में युद्ध की विभीषिका के बीच दम तोड़ते मासूम बच्चे और स्त्रियाँ, गाजा में उजड़कर बेघर हुए लोग हों या बांग्लादेश में पीड़ित हिंदू। उनकी लेखनी हर मानवीय पीड़ा के प्रति समान रूप से संवेदनशील है। उनके लेखन में सीमाओं, धर्मों और देशों से परे मनुष्य और उसकी पीड़ा केंद्र में दिखाई देती है। 'किसी मर्द का हाथ उठाने से पहले' लेख में लेखिका ने लिखा है- 'अमेरिका में हर वर्ष 558000 औरतें घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। जिसमें 329000 हाईस्कूल से भागी हुई होती हैं यानी अमेरिका के आँकड़ों अनुसार अशिक्षित।' इससे स्पष्ट होता है कि पुरुष-प्रधान समाज, उसका वर्चस्व और उसकी मानसिकता देश तथा परिवेश के अनुसार भले ही कुछ रूप बदल ले, किंतु मूलतः उसकी प्रवृत्ति लगभग एक-सी ही है। यही कारण है कि दुनिया के किसी भी कोने में स्त्री पूरी तरह

सुरक्षित और स्वतंत्र नहीं है। चाहे वह विकसित देश की महिला हो या विकासशील देश की। पितृसत्तात्मक सोच, भेदभाव और उत्पीड़न के अलग-अलग रूपों का सामना उसे करना पड़ता है। उनकी लेखनी इसी वैश्विक स्त्री-पीड़ा की समानता को रेखांकित करते हुए यह प्रश्न उठाती है कि विकास और आधुनिकता के तमाम दावों के बावजूद स्त्री की मुक्ति अभी भी अधूरी क्यों है?

'यह समय अनिश्चितता का है...' लेख में सुधा जी ने लिखा है- 'अमेरिका में भारतीय मूल के लोगों में यहाँ की सरकार की नित नई घोषणाओं ने असुरक्षा की भावना बढ़ा दी है। ऐसे में सोशल मीडिया पर झूठी-सच्ची तरह-तरह कि अफवाहें भारतीय समुदाय में और भी असंतोष बढ़ा रही हैं। स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चे बंदूकें ले कर आने लगे हैं और कई भारतीय बच्चे इसका शिकार हुए हैं।'

प्रवासी समुदाय पहले ही अपने अस्तित्व, पहचान और भविष्य को लेकर अनेक स्तरों पर चुनौतियों से जूझता रहता है। ऐसे में सरकारी निर्णयों से उपजा संशय उनके भीतर भय और बेचैनी को और बढ़ा देता है। लेखिका की चिंता केवल प्रवासी भारतीयों तक सीमित नहीं है। उनकी दृष्टि अमेरिकी समाज में बढ़ती हिंसा और बच्चों की असुरक्षा की ओर भी जाती है। यहाँ लेखिका की संवेदनशील दृष्टि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे किसी घटना को केवल समाचार की तरह दर्ज नहीं करतीं, बल्कि उसके पीछे छिपे मानवीय भय और सामाजिक संकट को पहचानती हैं। इन प्रसंगों के माध्यम से लेखिका आधुनिक समाज की उस विडंबना को सामने लाती हैं, जहाँ तकनीकी और आर्थिक प्रगति के बावजूद मनुष्य का जीवन भय, हिंसा और असुरक्षा से मुक्त नहीं हो पाया है।

000

दीपक गिरकर

28-सी, वैभव नगर,

कनाडिया रोड, इंदौर- 452016, मप्र

मोबाइल- 9425067036

ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com



(कहानी संग्रह)

पर छवि कहाँ समाय

समीक्षक : कोमल रामचंदानी

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

पुस्तक की शीर्षक कहानी 'पर छवि कहाँ समाय' कला के सामाजिक सरोकारों को बहुत गहराई से रेखांकित करती है। लेखिका ने यहाँ बड़ी ही सशक्त तरीके से यह स्थापित किया है कि कला का उद्देश्य केवल सुंदर और नयनप्रिय होना नहीं है, बल्कि उससे कहीं अधिक है। सच्ची कला वही है जो दूसरों की पीड़ा को महसूस करे और उसे दूर करने का साहस करे। भौतिक सफलता और प्रसिद्धि से परे जाकर, कलाकार का दायित्व समाज के उस हिस्से की ओर देखना भी है जिसे सभ्य समाज अक्सर देखना नहीं चाहता। इसी भाव को लेखिका ने नियति के हाथों देह-व्यापार की ओर धकेली गई स्त्रियों की मार्मिक व्यथा के माध्यम से बहुत ही सजीवता

से उकेरा है। उनकी पीड़ा, उनकी बेबसी और उनके भीतर की मनुष्यता का चित्रण इतना जीवंत है कि पाठक विचलित हुए बिना नहीं रहता। यह कहानी केवल एक कहानी नहीं, बल्कि सभ्य समाज से एक मार्मिक अपील है- कि हम अपनी आँखें न फेरें, और इस पीड़ा को दूर करने के प्रयासों में अपनी भूमिका निभाएँ।

कहानी 'मलंग' में संसार और रचनात्मक स्वतंत्रता में मेल बैठाना कितना दुष्कर कार्य है, इसे बहुत सुंदरता के साथ बताया है। कोई भी चेतना संपन्न व्यक्ति जो समाज के नियम से न चलना चाहे, उन्हें सामाजिक दायरे में जीने के लिए अपना मलंगपन त्यागना ही पड़ता है। कहानी का मुख्य किरदार एक दार्शनिक सा व्यक्तित्व है, जिसे हर व्यवस्था से विरोध है, जिसकी अनुशासन से परे एक बेफ़िक्री, मौज की दुनिया है, जो स्वतंत्रता का पक्षधर है, जिसके अनुसार कोई भी बंधन नैसर्गिकता को मार देता है। लेखिका एक प्रश्न के साथ पाठक को उद्वेलित कर देती हैं कि दुनिया के सफलता के जो नियम-क़ानून हैं, उन्हें छोड़कर कोई अपनी कला, अपने चिंतन के साथ जीना चाहे, तो क्या यह समाज उनके लिए व्यवस्था नहीं कर सकता।

कहानी 'जो हुकुम मेरे आका' एआई के नकारात्मक प्रभाव को बताती है। मशीनों द्वारा जिस गति से इंसान को विस्थापित किया जा रहा है, उसके दुष्प्रभाव को दर्शाती है। आज के डिजिटल बदलाव के युग में डिजिटलीकरण और मानवीय संवेदनाओं के बीच संतुलन बैठाना बेहद ज़रूरी है। तकनीक मनुष्य के लिए है, मनुष्य तकनीक के लिए नहीं.. यह अनमोल सीख हमें यह कहानी देती है। सब एक क्लिक पर प्राप्य हो, पर मन में संवेदनाएँ ही न हों, तो क्या यह सफलता है प्रगति है? इस प्रश्न के साथ यह कहानी हमें छोड़ती है। 'लकी चार्म बारिश' महज़ एक हल्की-फुल्की प्रेम कहानी नहीं, बल्कि दो युवा हृदयों में पनपते मासूम अहसासों की बेहद निश्छल दास्तान है। एक तरफ़ जहाँ लेखिका गंभीर व भारी-भरकम संदेश देती रचनाओं पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं, वहीं

दूसरी ओर इस सहज सादगी से भरी युवा प्रेम की कोमल भावनाओं को भी उतनी ही बारीकी और न्याय के साथ पिरोती हैं। यही कलात्मक संतुलन पाठकों को उनकी लेखनी का कायल बना देता है।

कहानी 'मुझे वापस लौटना है' सिर्फ एक कहानी नहीं, एक परिवार के अधूरेपन के पूरे होने की मार्मिक दास्तान है। लॉकडाउन के सन्नाटे में जब पूरी दुनिया थम सी गई थी, तब एक पिता को जेल से कुछ दिनों की छुट्टी मिलती है। सालों बाद वह अपने घर लौटता है, अंदर उसकी पत्नी, बेटा और बेटी हैं। मन में एक अजीब सी झिझक है- क्या परिवार उसे अब भी उसी तरह अपनाएगा? इतने सालों की दूरी के बाद उनका आगे का जीवन कैसा होगा? घर के अंदर बिखरी खामोशी धीरे-धीरे प्यार में बदलती है। और कहानी का सबसे दिल को छू लेने वाला मोड़ तब आता है जब बेटी को सच्चाई पता चलती है- जिन दरिदों से उसकी अस्मिता को बचाने के लिए उसके भाई ने हत्या की थी, उस अपराध को उसके पिता ने अपने सिर ले लिया था। इस एक सच के सामने आते ही सारे गिले-शिकवे, सारी झिझक आँसुओं में बह जाती है। वह क्षण, जब पूरा परिवार बिना कुछ कहे फिर एक हो जाता है, कहानी का सबसे खूबसूरत मोड़ है।

इस संग्रह को पढ़ते हुए मुझे सबसे अच्छा यह लगा कि ये कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते पाठक सिर्फ उन्हें पढ़ता नहीं, जीता भी है। हर कहानी के बाद एक ठहराव आता है, एक सोच, जो हमें यह याद दिलाती है, कि साहित्य का काम सिर्फ मनोरंजन नहीं पाठक को अधिक संवेदनशील बनाना, उसे बेहतर मनुष्य बनाना भी है। न तो यह सिर्फ भारी भरकम संदेशों की किताब है, ना सिर्फ हल्की-फुल्की कहानियों की... अद्भुत संतुलन है, बिल्कुल हमारे जीवन जैसा, कहीं गहरा.. कहीं सरल। तो इस गागर में सागर पुस्तक को अवश्य पढ़ें..।

000

कोमल रामचंदानी

92-93 गोयल नगर, कनाड़िया रोड, इंदौर

452016, मप्र

मोबाइल- 9993671899



(कहानी संग्रह)

गुनगुनी धूप

समीक्षक : प्रकाश कान्त

लेखक : तनुजा चौबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट

कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र

466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

कवि-कथाकार तनुजा चौबे का पहला कथा संग्रह है- 'गुनगुनी धूप!' इसके पूर्व उनका कविता संग्रह 'देहरी पर सजे ख्वाब' आ चुका है। तनुजा चौबे शहरी मध्यवर्गीय जीवन की रचनाकार हैं। उनकी अधिसंख्य रचनाएँ इसी वर्ग के विविध जीवनानुभवों से निकली हैं।

जहाँ तक मध्यवर्ग का संबंध है, शहरी जीवन की सामाजिक संरचना का एक बड़ा हिस्सा इसी वर्ग का है। नौकरी, शिक्षा और अन्य व्यवसायों में सक्रिय यही वर्ग रहा है। इधर के सालों में इसका तेजी से विकास एवं विस्तार हुआ है और अभी भी जारी है। भारतीय मध्यवर्ग संसार का लगभग सबसे बड़ा मध्य वर्ग माना जाने लगा है। औद्योगिक प्रगति ने इस विकास को तेज गति दी है।

शैक्षिक सुविधा एवं अवसरों का सर्वाधिक और सर्वप्रथम लाभ इसी ने उठाया है। कहना चाहिए कि शहरों में शिक्षा का विस्तार और मध्यवर्ग का विकास करीब-करीब साथ-साथ चले हैं। गाँवों से आए समुदाय ने शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं का लाभ उठाकर काम-काजी, नौकरी पेशा वर्ग में रूपांतरण किया है। आज कई क्षेत्रों में यह वर्ग सक्रिय है। इसकी अपनी आशा-निराशा, महत्वाकांक्षा, इच्छाएँ रही हैं। मौजूदा विकास के विराट संयंत्र के मुख्य कल-पुर्जे इसी वर्ग के हैं। सृजन के सभी क्षेत्रों में यही वर्ग सक्रिय है।

शहरी जीवनानुभव का लेखन मुख्य रूप से मध्यवर्गीय जीवनानुभव तक सीमित नहीं होता। हालाँकि, प्रधानता उसमें उसकी होती है। तनुजा चौबे की संग्रह की 24 कहानियाँ इसी अनुभव की कहानियाँ हैं। अपने लेखन को लेकर वे मानती हैं कि वह 'सही-गलत के कठोर दायरे' से बाहर है। जिसमें 'जीवन के हर पड़ाव की पीड़ा और खुशी दोनों की मिली-जुली संवेदनाएँ' मौजूद हैं। संग्रह की अधिसंख्य कहानियाँ स्वाभाविक रूप से अपने आस-पास घटित घटनाओं से प्रेरित हैं। यूँ भी आम तौर पर ज्यादातर रचनाओं का मूल स्रोत और स्थाई प्रेरणा बिंदु उसका 'आस-पास' ही हुआ करता है। इन कहानियाँ में जैसे कि संग्रह की भूमिका में कहा गया है, 'लेखिका के अंतर्मन की टीस' है और ये पाठक की 'संवेदना को छूने वाली' हैं। (सच्चिदानंद जोशी)

आज के तेजी से बदलते मध्यवर्ग के कई रंग और शेड हैं। संग्रह की कहानियों का वर्ग आम शिक्षित और बँधी-बँधाई नौकरी करनेवाला है। कहानियों में लेखिका के अनुसार एक तरफ़ा प्रेम है, कहीं कच्ची उम्र की शैतानियाँ, कहीं मासूम दैहिक छल! 'कच्ची धूप', 'जाम का पेड़' में किशोर वय की मासूमियत है लेकिन 'दया का दंश' में अपने ही कारण ठगे जाने का बोध! 'अंधा कौन', 'भाजा' स्त्री के दैहिक शोषण और अवैध संबंधों की बात करती हैं। उनमें श्रमजीवी परिवारों का संघर्ष, चिंताएँ और सफलताएँ भी शामिल हैं। (अंधेरे से उजाले की ओर) आम

पारिवारिक संबंधों में आने वाली दरारें, बेबनाव, उपेक्षा, तिरस्कार की बात भी ये कहानियाँ करती हैं। विशेष कर, मुखौटे का दर्द, वसीयतनामा, जर्जर दीवारों के रिश्ते, रिश्तों की गरिमा, विश्वास की जड़ें इत्यादि! रोज़गार के संकट को 'किन्नर' जैसी कहानी अलग तरह से रेखांकित करती है। जबकि, 'अक्षमता' दैहिक रूप से प्राकृतिक अक्षमताओं के बीच भी अपने आत्मगौरव को बचाए रखने की कहानी है। तनुजा चौबे का यह पहला कथा संग्रह है लेकिन उसकी कुछेक कहानियों में वे अनुभूतियों की महीन संरचनाओं को बचा पायी हैं। स्थूल ब्योरों के साथ सामान्यतः विशेष समस्या नहीं रहती, महीन संरचनाओं को सही तरह से साध पाना ही अमूमन मुश्किल हुआ करता है। लेकिन तनुजा चौबे 'अंतहीन अनुभूति', 'विश्वास की जड़ें' जैसी कहानियों में यह कर पायी हैं। 'रिश्तों की गरिमा' कहानी में यह बिलकुल अलग तरह से हुआ है।

यह स्वाभाविक ही है कि उनकी 'चूड़ियों की खनक' जैसी कहानियाँ स्त्री के स्वाभिमान की बात करती हैं। विशेषकर आज के मध्यवर्गीय पारिवारिक संरचना में एक काम-काजी स्त्री के स्वाभिमान की! जबकि 'रंगों में उलझा जीवन' और 'तुम भी चलो ना...' संवेदना के अलग धरातल की कहानियाँ हैं। 'साझा सुख' बहू पर एकाधिकार चाहने की अलग कहानी है। 'जर्जर दीवारों के रिश्ते' बच्चों के बड़े हो जाने पर माँ-पिता की चिंता करने के मधुर एहसास की कहानी है। 'कच्ची धूप' में किशोर मनोविज्ञान है। कई कहानियाँ रिश्तों की गरिमा और कड़वाहट-टूटन की बात करती है। प्रेम अलग-अलग तरह से छाया है। किशोर वय का प्रेम, एक तरफ़ा प्रेम, वंचना का शिकार प्रेम तथा दाम्पत्य प्रेम। इत्यादि!

000

प्रकाश कान्त

155 एलआईजी, मुखर्जी नगर, देवास

455011, मप्र

मोबाइल- 9407416269

ईमेल- prak.kant@gmail.com



(यात्रा वृत्तांत)

घर बैठे घुमक्कड़ी

समीक्षक : प्रकाश कांत

लेखक : ब्रजेश कानूनगो

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

एक आदमी आखिर कितना घूम सकता है! घूमने-देखने के लिए अनंत है और आदमी के पास क़दम दो छोटे! भले ही इन छोटे क़दमों से वह चन्द्रमा तक पहुँच गया हो! बहरहाल, ब्रजेश कानूनगो की पुस्तक 'घर बैठे घुमक्कड़ी' एक प्रकार से दुनिया घुमाने का काम करती है। ब्रजेश भाई का लेखन एकाधिक विधाओं तक फैला हुआ है। कविता, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य के अति रिक्त उन्होंने यात्रा-संस्मरण भी लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनका अलग प्रकार का काम है। पुस्तक के शीर्षक में हलका-सा विट है लेकिन उसमें सम्मिलित आलेखों की प्रकृति गम्भीर प्रकार की है। पुस्तक में शामिल छियांसठ आलेखों को उन्होंने 'दुनिया को जानने में कुछ नोट्स' कहा है। पुस्तक के प्रारम्भ में दूसरों के यात्रा संस्मरण, पुस्तक इत्यादि उन स्रोतों की चर्चा है जो संसार जानने के रहे हैं। इंटरनेट की सुविधा हो जाने से इनमें ट्रेवल ब्लॉगिंग, यू-ट्यूब जैसे साधन भी जुड़

गए। इन सब की विस्तार से चर्चा की गई है।

निश्चय ही पुस्तक विभिन्न ब्लॉगों की सामग्री का सामान्य संकलन-भर नहीं है। साठ से अधिक ब्लॉगों में आई विविध प्रकार की सामग्री को एक सुनिश्चित दृष्टि से एक ऐसी पुस्तक को आकार दिया गया है जो विभिन्न महत्वपूर्ण स्थलों से परिचित करवाने के साथ-साथ लगभग एक समग्र यात्रा का बोध भी करवाती है। अपनी इस पुस्तक में ब्रजेश एक ज़रूरी तैयारी के साथ नज़र आते हैं। विभिन्न ट्रेवल ब्लॉग का अध्ययन करते समय उन्होंने अन्य स्रोतों का भी ध्यान रखा है। स्वयं भले ही गए न हों लेकिन एक यात्री की दृष्टि और अपेक्षा को बुनियाद में रखा है। उनके अपने वर्णन में आवश्यक किस्म की तार्किकता तथा वैज्ञानिक समझ है।

विभिन्न ब्लॉगों से ली गई सामग्री में कई सारी चीज़ें हैं- ग्रहों का निर्माण, धरती पर बिखरे इन्द्रधनुष, साइकिल-यात्रा, विभिन्न स्थानों के खान-पान, रहन-सहन, स्लम्स, जीवित ज्वालामुखी, ग्लोबल वार्मिंग से डूबते देश, इथोपिया की जनजातियाँ, पद यात्राएँ, पनामा नहर, पहले परमाणु बम का शिकार हिरोशिमा, ईरान की प्राचीन भूमिगत जल प्रणाली, घाना के बाज़ार, कंगारू-पेंग्विन, करेंसी नोटों की दुकानें वगैरह! अकेली पुस्तक सुदूर अतीत से वर्तमान और पृथ्वी के एक से दूसरे कोने की न सिर्फ़ यात्रा करवाती है बल्कि पाठक के बौद्धिक एवं भावनात्मक आस्वाद को गहरा भी करती है और उसे विस्तार भी देती है।

हिन्दी में निजी तौर पर यात्रा-संस्मरण लिखे जाते रहे हैं लेकिन यह पुस्तक एक साथ पचासों महत्वपूर्ण तथा अलग-अलग स्थानों की यात्रा करवाती है। निश्चय ही पुस्तक से गुज़रना एक अलग यात्रा-सुख से गुज़रना भी है!

000

प्रकाश कान्त

155 एलआईजी, मुखर्जी नगर, देवास

455011, मप्र

मोबाइल- 9407416269

ईमेल- prak.kant@gmail.com

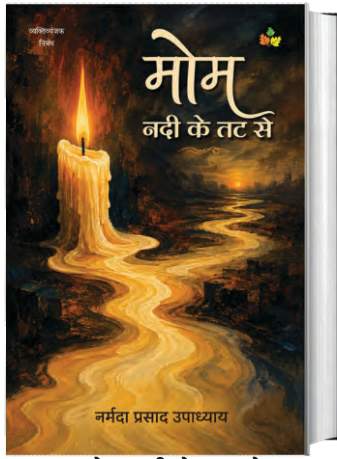
शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें



प्रेम का आंतरिक भूगोल

भालचन्द्र जोशी

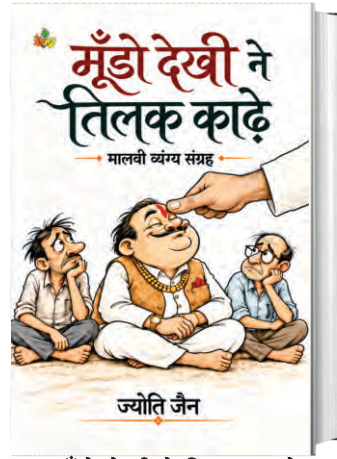
प्रेम का आंतरिक भूगोल
आलेख संग्रह
संपादक - भालचन्द्र जोशी
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-68-3



मोम नदी के तट से

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

मोम नदी के तट से
निबंध संग्रह
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-012-0



मूँडो देखी ने तिलक काढ़े

मालवी व्यंग्य संग्रह

ज्योति जैन

मूँडो देखी ने तिलक काढ़े
मालवी व्यंग्य संग्रह
ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2027
ISBN 978-93-7905-026-7

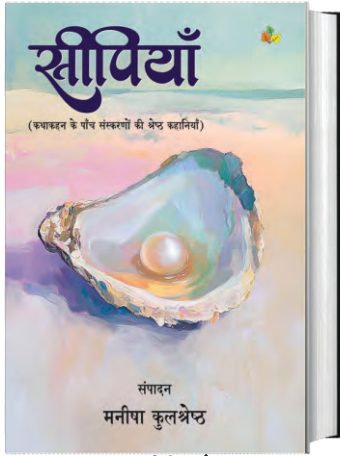


मिस्ड कॉल

कहानी संग्रह

डॉ. यशोधरा भटनागर

मिस्ड कॉल
कहानी संग्रह
डॉ. यशोधरा भटनागर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-008-3



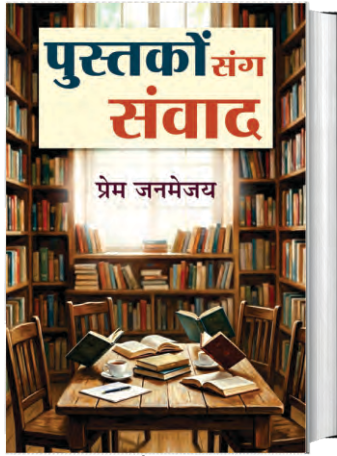
सीपियाँ

(फ़राख़न के चार संस्करणों की भेड़ कहानियाँ)

संपादन

मनीषा कुलश्रेष्ठ

सीपियाँ
कहानी संकलन
संपादक- मनीषा कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-36-2



पुस्तकों संग संवाद

प्रेम जनमेजय

पुस्तकों संग संवाद
समीक्षा संग्रह
प्रेम जनमेजय
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-484-5

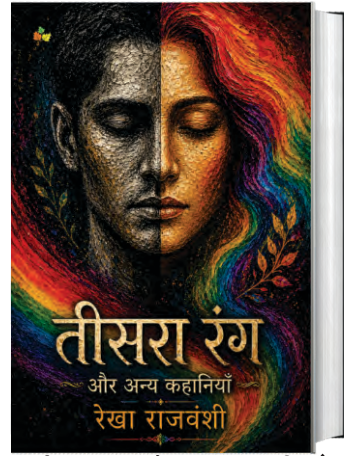


पंकज सुबीर का साहित्य : एक अनुशीलन

(शोध ग्रंथ)

डॉ. वर्षा गजानन पाटील

पंकज सुबीर का साहित्य- एक
अनुशीलन, शोधग्रंथ
डॉ. वर्षा गजानन पाटील
मूल्य- 600 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-56-0

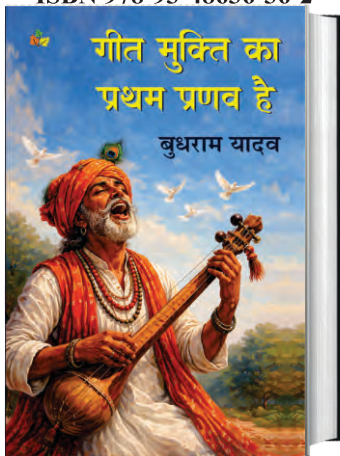


तीसरा रंग

और अन्य कहानियाँ

रेखा राजवंशी

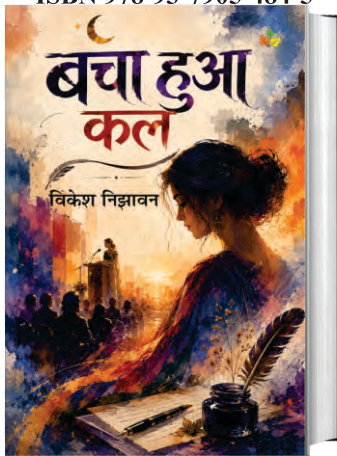
तीसरा रंग और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
रेखा राजवंशी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-015-1



गीत मुक्ति का प्रथम प्रणव है

बुधराम यादव

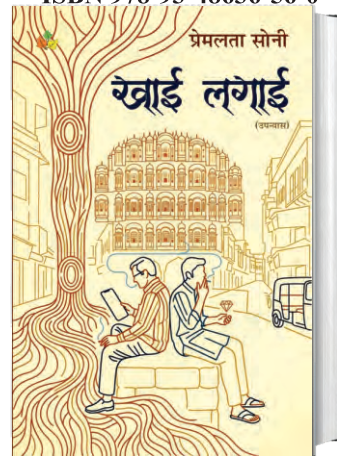
गीत मुक्ति का प्रथम प्रणव है
गीत संग्रह
बुधराम यादव
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-291-9



बचा हुआ कल

विकेश निगम

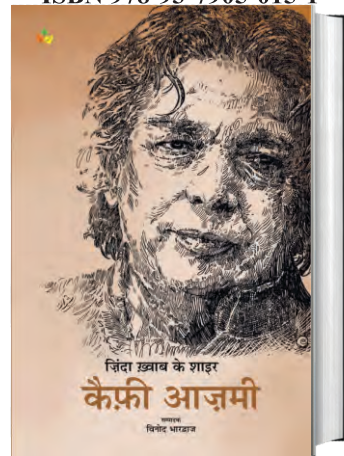
बचा हुआ कल
कहानी संग्रह
विकेश निगम
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-007-6



ख़ाई लगाई

(उपन्यास)

ख़ाई लगाई
उपन्यास
प्रेमलता सोनी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-594-1



कैफ़ी आजमी

जिंदा ख़ाब के शायर

जिंदा ख़ाब के शायर कैफ़ी आजमी
आलेख संग्रह
संपादक विनोद भारद्वाज
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-074-8

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शाँप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेंसमेट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372

मोबाइल +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580

ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com

+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac

https://www.facebook.com/shivna.prakashan

https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations

amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JYJGSM2CEV



ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्र पर आयोजित कार्यक्रम



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।



सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2026-27 का शुभारंभ वरिष्ठ न्यायाधीश श्रीमती स्वजश्री सिंह, समाजसेवी श्रीमती अरुणा राय तथा डाइट की प्राचार्य डॉ. अनीता बड़गुर्जर भालेराव की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।

If Undelivered Please Return to :

P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लेक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।